सदाचार, वेदवाद,
मनोविज्ञान और नव-निर्माण
का
मासिक पत्र
वर्ष १ अंक ८
जून, १९६६ ई०
देश में वार्षिक मूल्य चार रुपये
दो वर्ष का मूल्य सात रुपये
तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपये
एक प्रति ४० पैसे
विदेश में दस शिलिंग वार्षिक

संचालक और सम्पादक
राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक कार्यालय
आर्य समाज मन्दिर
सीताराम बाजार, देहली-६

प्रार्थना

मूल लेखक—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनुवादक—श्री रामानन्द "दोषी"

मेरी रक्षा करो विपद में
नहीं प्रार्थना है यह मेरी
केवल यह हो
डरूँ नहीं मैं विपदाओं से

दुःख ताप से व्यथित चित्त को
नहीं सांत्वना दो-तो भी क्या
केवल यह हो
जय पाऊँ मैं दुख ताप पर

अगर सहायक जुटे न कोई
तो ऐसा हो
टूटे नहीं कभी बल मेरा

होती रहे अगर क्षति मेरी
पाता रहूं सदा वंचना
तो भी यह हो
हार न अपने मन में मानूं

मेरी रक्षा करनी तुमको
यह तो नहीं प्रार्थना मेरी
केवल यह हो
मैं अपने ही बल पर तैरूँ

मेरा भार न बाँटा तुमने
नहीं सांत्वना दी तो भी क्या
केवल यह हो
अपना भार ढो सकूँ खुद ही

सुख के दिन में
शीश झुकाकर
चीन्ह तुम्हारा मुख लूंगा मैं

किन्तु दुःख की रात घिरे जब
मुझे वंचना मिले जगत से
तब बस यह हो
संशय नहीं करूँ मैं तुम पर

❀ ओ३म् ❀

मधुर-लोक

जून, सन् १९६६ ई०

आचारः परमो धर्मः

भारत-राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में चरित्र के अधःपतन पर आज सर्वत्र ही भारी चिन्ता प्रगट की जा रही है। बाजार में, सरकार में, घर-बार में, सभी स्तरों पर भारी स्वार्थपरताओं, पद-लिप्साओं और आपा-धापियों के नग्न एवं गन्दे रूप दृष्टि-पथ में आ रहे हैं। तथा कथित धार्मिक समुदायों में भी ढंग के स्थान पर ढोंग ही विराजमान है, राजनीति के खिलाड़ी जनता को भड़काकर, बहकाकर, डरा-धमका कर, नैतिक मूल्यों की हत्या करके और राष्ट्र को हानि पहुँचाकर भी, अपने स्वार्थों की सिद्धि करने में कोई संकोच नहीं करते। इससे बढ़कर चिन्ता की बात और क्या होगी कि हमारे धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक नेता एक ओर तो अपने व्यक्तिगत जीवन का कोई ऊंचा और अनुकरणीय उदाहरण जनता के सामने प्रस्तुत नहीं करते, दूसरी ओर वे छात्र-वर्गों को भी पथ-भ्रष्ट करते हैं और उनको बहका-फुसलाकर राष्ट्र के जीवन में नई-नई उलझनें पैदा करते रहते हैं।

राजनीति के खिलाड़ियों से हमें कोई आशा नहीं है। उनके जीवन की आधार-भूमि बहुत ही कच्ची है। अपने स्वार्थों के लिये तो वे जल्दी-जल्दी ही टोपियां, चेहरे, चोगे और पार्टियां बदलते रहते हैं। पौराणिक पक्षों के लोग अभी कूप-मण्डूकता से मुक्त नहीं हो सके। ईसाई और मुहम्मदी भाई विदेशी विचार-धाराओं में आसक्त, आबद्ध हैं। यदि आपस के झगड़ों से ऊपर उठ सकें, तो जोशीले और बुद्धिवादी आर्य समाजी भाई ही भारत राष्ट्र को चारित्रिक दिवालिये—पन से बचा सकते हैं। सर्वहित की अमोघ-भावना, मत, पन्थ के आग्रह से रहित विश्व-बन्धुत्व का भाव, सहृदयता और त्याग, तप एवं बलिदान का जैसा उत्तम उपदेश वेदों में तथा महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में है, वैसा और कहीं नहीं है। जरूरत है कर्मयोगी साधकों की। क्या कोई समय की पुकार को सुनकर आगे बढ़ेगा?

राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक का व्यवहार धर्म

१. मधुर-लोक का प्रकाशन प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में होता है। यदि किसी ग्राहक को महीने की बीस तारीख तक भी अंक न मिले, तो सूचना मिलने पर दूसरा अंक भेजा जायेगा।

२. मधुर-लोक का एक वर्ष का मूल्य चार रुपए, दो वर्ष का मूल्य सात रुपए और तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपए है।

'मधुर-लोक' के आजीवन ग्राहक

३. जो सज्जन एक सौ रुपये भेजकर मधुर-लोक के ग्राहक बनेंगे, उनको 'मधुर-लोक' के सभी अंक और विशेष-अंक, तब तक मिलते रहेंगे, जब तक कि 'मधुर-लोक' निकलता रहेगा। यदि किसी कारण-वश 'मधुर-लोक' दस वर्ष से पहिले ही बन्द हो जायेगा, तो आजीवन सदस्यों को उनका पूरा धन लौटा दिया जायेगा।

४. 'मधुर-लोक' में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि सामग्री—सम्पादक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये। लेखों के सम्पादन, संशोधन और प्रकाशन या अप्रकाशन का अधिकार सम्पादक को है।

५. प्रबन्ध विषयक पत्र, वार्षिक मूल्य तथा विज्ञापन आदि का धन—प्रबन्धक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये।

६. उत्तर के लिए जवाबी कार्ड या पत्र भेजिये।

७. मधुर-लोक में विज्ञापन छपवाने की दर—

एक पृष्ठ ४०.००	चौथाई पृष्ठ १५.००
आधा पृष्ठ २५.००	पृष्ठ का आठवां भाग १०.००

८. वर, वधू, उपदेशक, पुरोहित, अध्यापक या चपरासी की आवश्यकता के विज्ञापन का शुल्क—५.००

९. विशेष अंकों की विज्ञापन दर पृथक् होगी।

१०. विशेष बातों का निश्चय पत्र-व्यवहार से कीजिए।

निवेदक :—प्रबन्धक, मधुर-लोक

आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

आपके ही गीत, आपके ही यज्ञ

लेखक– श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतो उद्वंशमिव येमिरे ॥
ऋ० १।१०।१

हे प्रभो ! (गायत्रिणः) गायक लोग (त्वा) तेरी महिमा के गीत (गायन्ति) गाते हैं। (अर्किणः) जप, तप और यज्ञ, याग आदि करने वाले (अर्कम्) तुझ पूजनीय की (अर्चन्ति) अर्चना, स्तुति, प्रार्थना और उपासना कर रहे हैं। (शतक्रतो !) हे अनन्तोपकारक भगवन् ! (ब्रह्माणः) आपके भक्त ज्ञानी लोग (त्वा) आपकी पवित्र सत्ता को (वंशम्-इव) झंडे के बाँस के समान (उत्) ऊपर ही ऊपर श्रेष्ठ और उच्चतर (येमिरे) निश्चित् करते हैं, वर्णन करते हैं।

गायक लोग आपकी महिमा के गीत गा रहे हैं। याज्ञिक लोग नाना प्रकार यज्ञों द्वारा आपका पूजन और अर्चन कर रहे हैं। ब्राह्मण आपके पवित्र नाम को, आपकी पवित्र सत्ता और महत्ता को, विजय-पताका के समान उठाय उठाय चल रहे हैं।

हे चराचर जगत् के उत्पादक, पालक और पोषक प्रभो ! गायक तेरी महिमा के गीत गा रहे हैं। वायु की सरसराहट, झरने की कल-कल ध्वनि, बादल की गड़गड़ाहट, वर्षा की रिम-झिम-रिम-झिम, बिजली की कड़क, मोर की केका-ध्वनि, पक्षियों के चहचहे, शेर की दहाड़ और हाथी की चिंघाड़ ये सब तेरी महिमा के गीत ही तो हैं। कवि के गीतों का विषय तू है। ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, सन्त महात्मा सभी एक स्वर में गा रहे हैं—'तू है। तू है। तू है। तू ही तू। तू ही तू।''

हे निरन्तर क्रिया शक्ति के अतुल-भंडार ! सर्वाधार प्रभो ! कर्मयोगी लोग तेरा ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना कर रहे हैं। अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, उन्होंने एकमात्र तुझ ही अपना लक्ष्य बना रखा है। योगी लोग समाधि के द्वारा तुझे पाना चाहते हैं। वीर क्षत्रिय युद्ध-क्षेत्र में मर कर, अथवा मारकर, तुझे पाना चाहते हैं। व्यापारी भी तुझे स्मरण करते हैं। मनुष्यता तुझ सच्चे स्वामी की ओर प्रस्तो है। तेरी आराधना से सबने अपने-अपने जीवन को पवित्र पवित्रतर, तथा पवित्रतम बनाया है। साधकों ने अपने सम्पूर्ण जीवन-व्यापार और कार्य-कलाप को तेरे ही यज्ञ याग, जप-तप, सन्ध्या पूजा का रूप दे डाला है।

हे सर्वत्र विद्यमान्, महान से महान भगवन् ! ज्ञानी लोग तेरे पवित्र नाम का झंडा उठाय उठाय घूम रहे हैं। तेरे ही नाम की अलख जगाते फिरते हैं। तेरे ही नाम के जय जयकार करते विचर रहे हैं। तेरे पवित्र नाम, तेरी पवित्र सत्ता और तेरी पवित्र महत्ता को उन्होंने अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दे रखा है।

हे दयानिधे ! हमें भी ऐसा बल और ऐसी शक्ति प्रदान करो, जिससे हम भी तेरी महिमा के गीत गा सकें। हमारा जीवन शुद्ध और शान्त हो। यज्ञ कर्मों का अनुष्ठान और तेरी स्तुति, प्रार्थना उपासना करते हुए हमारा जीवन सफल हो जाये। तेरे पवित्र नाम को अपनी जीवन नैया का चप्पू बनाकर हम संसार सागर से पार हो जायें। तेरे पवित्र नाम की पताका को फहराते हुए हम अपने जीवन संग्राम में पूर्ण विजय को प्राप्त कर सकें।

हे प्रभो ! हमारी वाणी में वह बल नहीं है, जिससे आपकी महिमा का वर्णन हो सके। हमारे शब्दों में वह सूक्ष्म और तात्त्विक अर्थ गाम्भीर्य नहीं है, जो आपके यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए अपेक्षित है हमारा वाग्वैभव अत्यन्त अल्प है, हमारा शब्द भंडार बहुत ही थोड़ा है,

(शेष पृष्ठ ५ पर)

नमूना-- कृपया ...

ऐश्वर्य प्राप्ति

लेखक— श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह

देव सवितः प्रसव यज्ञं,
प्रसव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः
पुनातु वाचस्पतिर्वाचं न स्वदतु ॥
यजु० ३०। १

मन्त्र में (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए तीन साधन बतलाये गये हैं।

१—(सवितः देवः) सविता देव (यज्ञम्) यज्ञ को (प्रसुवः) सुप्रेरणा-सुसम्पादन कर। (यज्ञ-पतिम्) यज्ञपति को (प्रसुवः सुनिष्पन्न कर।

२—(दिव्यः) दिव्य (केतपूः) ज्ञानशोधक (गन्धर्वः) गन्धर्व (नः) हमारे (केतम्) ज्ञान को (पुनातु) पवित्र करे।

३—(वाचस्पति) वाणी का पति (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वादिष्ट करे।

(सवितु) नाम सृजक और प्रेरक का है। प्रभु संसार की रचना करता है और रचना करके सृष्ट सृष्टि का संचालन करता है। अतः परमात्मा सविता है। शरीर का रचयिता और संचालक होने से आत्मा सविता है। सौर-मण्डल या सृजक और प्रेरक होने से सूर्य सविता है। सन्तान का उत्पादक और प्रेरक होने से पिता सविता है। शिष्यों के जीवनों का सम्पादक और प्रेरक होने से आचार्य सविता हैं। राजा प्रजा और राष्ट्र का संचालक होने से, परिव्राट् (विश्वनायक, नेता, संन्यासी) सविता है। जो भी रचयिता और संचालक है, वही सविता है।

यज्ञ धातु जिससे यज्ञ शब्द सिद्ध होता है, "देव पूजा संगतिकरण दानेषु-सत्कार, संगतिकरण और दान" राष्ट्र में राष्ट्र देवों का सम्मान तथा नागरिकों का संगतिकरण (संगठन) होता है और नेता व नागरिक राष्ट्र हित के लिये स्वाहा = स्व + आ + हा = स्व का पूर्ण दान, त्याग = स्वार्थ त्याग करते हैं। अतः राष्ट्र को यज्ञ कहते हैं। जहाँ भी सत्कार, संगतिकरण और स्वाहा हो, वह यज्ञ है। इसी भाव से यज्ञ = परमात्मा, आत्मा, ब्रह्माण्ड, राष्ट्र, शरीर, अग्नि-होम, श्रेष्ठतम कर्म, गृहस्थ इत्यादि।

गन्धर्व = गं + धर्व = वाणी + धारक = उपदेशक धर्म-प्रचारक।

वाचस्पति = वाचः + पति = भाषा का पति — अध्यापक, शिक्षक।

अब मन्त्र के अर्थ पर पुनः विचार कीजिये।

१—(देव सवितः) दिव्य नेतः! (यज्ञम्) राष्ट्र को (प्रसुव) सुप्रेरणा-सुसम्पादन कर। (यज्ञ-पतिम्) राष्ट्रपति, सम्राट् को सुप्रेरणा-सुसम्पादन कर।

२—(दिव्यः केतपूः गन्धर्वः) दिव्य बुद्धिशोधक उपदेशक (न केत) हमारी बुद्धि को (पुनातु) परिष्कृत करे।

३—(वाचस्पतिः) शिक्षक (नः वाचम्) हमारी वाणी को (स्वदतु) स्वादिष्ट बनाये।

सौभाग्य वृद्धि के लिए प्रथम साधन है दिव्य नेता, जो वेदवित्, वेदाचारी, नीति-निपुण, कर्म-कुशल विजयशील और स्वाहाकारी हो। ऐसे दिव्य नेता के नेतृत्व में ही आर्यावत में पुनः एक आदर्श, वैदिक आर्य राष्ट्र का पुनर्जन्म हो सकेगा। ऐसा दिव्य नेता ही पुनः एक आदर्श आर्य सम्राट् की स्थापना कर सकेगा। वीर धर्मात्मा सम्राट् ही तो राष्ट्र, धर्म, संस्कृति और प्रजा का सुरक्षण करता है। सम्राट् विहीन राज्य तो अनाथ राज्य होता है। अनाथ राज्य में सुख वृद्धि कैसी?

ऐश्वर्य वृद्धि का दूसरा साधन है दिव्य और बुद्धि परिष्कर्ता उपदेशक, जो प्रचार द्वारा जनता की बुद्धियों का परिष्कार करके, राष्ट्र के समस्त नागरिकों को निर्भ्रम, निर्भ्रान्त और मेधावी बनाये। भ्रम और भ्रांति में फंसी हुई जनता राष्ट्र रक्षण और राष्ट्र वर्धन कर ही नहीं सकती।

सर्वोदय का तीसरा साधन है—विद्वान्,

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सौन्दर्य

लेखक—मुनि देवराज "विद्यावाचस्पति" गुरुकुल झज्जर

बड़ी भारी बात मनुष्य के लिए है कि वह जाने कि सौन्दर्य क्या पदार्थ है। कैसे उसकी प्राप्ति होती है। क्योंकि इसको बिना जाने अनेक मनुष्य अन्धकार में, अज्ञान में पड़े रहने से कष्ट उठाते हैं। कितने ही मनुष्य सौन्दर्य प्राप्ति के उचित उपायों को न जानते हुए कृत्रिम सौन्दर्य करके मनुष्यों के बीच में मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं परन्तु उसमें आसक्ति से रजोगुणी अवस्था में पड़कर इन्द्रियों की शिथिलता सम्बन्धी मनः शैथिल्य सम्बन्धी अनेक दुरवस्थाओं में पड़कर उस कृत्रिम सौन्दर्य से जो स्थिरता से रहने वाला नहीं था, जिसको स्थिर रखने के कोई उपाय न किये गये थे या अस्थिरता, असन्तोष, अधीरता वा अविश्वास के कारण पुस्तकों से धर्मात्मा मनुष्यों के उपदेशों से, अनेक आचरणों को देखने से और कभी-कभी प्रबोधक अपने अन्तरात्मा की आवाज को भी ध्यान में न लाने से अथवा प्रकृत्यनुगामी पुरुषों के चाकचक्य के दिखाने से, कृत्रिम रूप रंग वाली वस्तुएं दिखाकर अफ्रिकादि देशों की आकृष्ट होने वाली असभ्य जातियों के व्यक्तियों की तरह आकृष्ट होने से जो उन उपायों को न कर सके जिनसे वे युवा और वृद्धावस्था में भी स्वाभाविक सौन्दर्य के कारण सुन्दर बने रहते वे प्रारम्भिक कष्ट को देखकर घबरा जाते हैं और स्थिर सौन्दर्य को प्राप्त करने से वंचित रहते हैं, तथा अपनी अन्तिम अवस्था में अर्थात् वृद्धावस्था में सुरूप बनने का प्रयत्न करने पर भी कुरूप रहने से अपनी पूर्वावस्थाओं को याद कर करके कि हमने क्यों उस अवस्था में अमुक अमुक पुरुष के कथनों पर ध्यान न दिया क्यों कुछ तपश्चर्या का जीवन व्यतीत न करके उन शक्तियों का सम्पादन न कर लिया जिससे इस समय भी शरीर से उपयोग ले सकता है और किसी प्रकार की ग्लानि का पात्र न बनता। प्रत्येक पदार्थ जो मनुष्य ने प्राप्त करना होता है, उसके लिए उसे परिश्रम या तप करना पड़ता है। बिना परिश्रम या बिना तप से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता।

सौन्दर्य को भी यदि प्राप्त करना है तो उसके लिए तप की आवश्यकता है। बिना तप से मिला धन स्थिर नहीं रहता, शीघ्र ही हाथ से निकल जाता है। उसी धन पर मनुष्य का स्वत्व होता है जो उसने तप से कमाया है। तप से प्राप्त वस्तु को स्थिर रखने के लिए भी तप ही चाहिये। बिना तप के धन स्थिर नहीं रह सकता। मनुष्य बड़ा तप करके एक नहर खोदकर लाता है और प्रत्येक वर्ष उसकी सफाई के लिए हजारों रुपये खर्च करने पड़ते हैं, केवल इसलिए कि नहर अपने वास्तविक स्वरूप में रहे। यदि ऐसा न किया जाय तो नहर बिलकुल खराब होकर एक पहाड़ी नाले के समान हो जाय। कई स्थानों में कुए खोदे जाते हैं और आवश्यकतानुसार समय-समय पर सबको मरम्मत करनी पड़ती है। यह सब तप से ही होता है। सारा जल सिंचन विभाग इसलिए है कि मनुष्य, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि पानी पी सकें और अन्न की उत्पत्ति करने में परस्पर सहायक होकर अन्न लाभ करके जीवन निर्वाह करें। सब जानते हैं कि खेतों से जो अन्न पैदा होता है, जिसे खाकर सब आनंदित होते हैं, उसमें कृषक का रात दिन का कितना तप लगा होता है। मुख में रोटी को डालने के लिए भी तप की आवश्यकता है। जबतक हाथ से रोटी का टुकड़ा तोड़कर मुख में नहीं ले जाया जाता तब तक मुख में रोटी भी नहीं पड़ती। न चबाये तो पेट में नहीं जाती। इन सब से यह जाना जाता है कि संसार में छोटे से छोटा भी ऐसा कार्य नहीं जिसे तप की आवश्यकता न हो। बिना तप के

: क तिनका भी इधर से उधर हिल नहीं सकता। जब यह बात है, तो जानना चाहिए सौन्दर्य भी तप के बिना नहीं मिलता। जो लोग बिना तप के सौन्दर्य की प्राप्ति समझते हैं तो वे भूल में हैं। प्रत्येक मनुष्य जिसे सौन्दर्य समझता है उसमें तप दिखाई तो देगा, बनावट से जो सौन्दर्य दिखाया जाता है उसमें भी तप है, परन्तु प्रश्न केवल इतना ही है कि क्या वह वास्तविक सौन्दर्य है।

वास्तविक सौन्दर्य प्रकृति के द्वारा अन्दर से प्राप्त होता है, ऊपर से नहीं। संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का यही प्रयत्न हो रहा है कि वह सुन्दर बने। जिस पदार्थ में सौन्दर्य नहीं है उस पदार्थ की स्थिति नहीं रह सकती वह अवश्य नष्ट हो जायगा। संसार में जो हमें पदार्थों का नाश होना प्रतीत होता है वह वस्तुतः उनका नाश नहीं है परन्तु अपने पहिले भद्दे रूप को, छोड़कर दूसरा सुन्दर रूप धारण करना है। यह रूप कभी-कभी पूर्व रूप से सुन्दरता में अधिक प्रतीत होता है और कभी-कभी कम। इसका यही कारण है कि हमें रूप का सौन्दर्य देखना नहीं आता। पदार्थ की आन्तरिक और बाह्य अवस्थाओं के सम्बन्ध से जिस अवस्था में वह रूप दीख रहा है, उस अवस्था में उस पदार्थ का वही रूप होना चाहिए, वही सुन्दर रूप है दूसरा नहीं। हमारी बुद्धि में किसी पदार्थ का जो सुन्दर से सुन्दर रूप हो सकता है वह होता है। उसको अपने लक्ष्य में रखकर हम उस पदार्थ की सुरूपता या कुरूपता का निर्णय करते हैं। इससे चाहे कैसा भी सुन्दर कोई पदार्थ क्यों न हो वह अपनी सुन्दरता में अपूर्ण ही प्रतीत होता है। किसी भी पदार्थ का सुन्दर से सुन्दर स्वरूप क्या हो सकता है यह दिखाया नहीं जा सकता वह बुद्धि ही में रहता है।

अतएव कितनी भी सुन्दर कोई वस्तु क्यों न हो, मनुष्य उसकी सुन्दरता को अपूर्ण ही समझता है और अहर्निश अपनी बुद्धि के अनुसार उसे सुन्दर बनाता रहता है। परन्तु अन्तिम से अन्तिम सौंदर्य उसमें न ला सकने के कारण हार कर किसी एक अवस्था में ही वस्तु को सुन्दरता की पराकाष्ठा कर लेता है। बहुतों ने तो नए-नए रूप का धारण करना ही रमणीयता या सौन्दर्य कहा है "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।" क्योंकि किसी वस्तु के साथ जब परिचय बहुत बढ़ जाता है तो वह हृदय में आल्हाद को उत्पन्न करने वाला नहीं रहता। जब वस्तु की नई-नई प्राप्ति होती है तब वह विशेष आल्हाद को देती है और ज्यूँ-ज्यूँ वह उपयोग में या मेल में आने लगती है त्यू-त्यूँ उसकी ओर से मन हटता जाता है और आनन्द की प्राप्ति उससे रुकती जाती है। यदि वह वस्तु जिससे नया-नया प्रेम हुआ है कुछ समय के लिए अप्राप्य हो जाय, तो फिर प्राप्त होगी तो अतिशय आह्लाद को देगी। यही हाल मनुष्योंमें मित्रता के सम्बन्ध में देखा जाता है। जब दो मनुष्य नये-नये आपस में मित्र बनते हैं तो उनमें अधिक प्रेम होता हैं और ज्यूँ ज्यूँ पास रहने से आपस से परिचिति होती जाती है, त्यूँ-त्यूँ प्रेम उतना नहीं रहता। विवाह के प्रारम्भ के दिन बहुत ही आनन्द देने वाले समझे जाते हैं, सो भी इसीलिये। मतलब यह है कि एक वस्तु जो निरन्तर एक ही रूप में हमारे सामने रहती है, वह हृदयाकर्षक नहीं रहती उससे कम प्रेम होता है और उसमें कम सौन्दर्य प्रतीत होता हैं। अर्थात् "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" वाली यह बात चरितार्थ होती है। दार्शनिक लोग प्रकृति से बने हुए संसार के पदार्थों को परिवर्तनशील होने से क्षणिक मानते हैं। परमात्मा सब पदार्थों को क्षण-क्षण में परिवर्तन करके उनको रमणीय बना रहा है। प्रत्येक मनुष्य जो प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुभव करने का सामर्थ्य रखता है वह प्रकृति के अपार सौन्दर्य सागर में मज्जन करके अतिशयानन्द जनक विविध मोती आदि मणि रत्नों का लाभ कर सकता है।

परन्तु वह ही प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध होकर इस बात को भी ग्रहण कर सकता है कि अपने आपको कृत्रिम सौन्दर्य में डाल दे। यदि वह कृत्रिम सौन्दर्य में पड़ेगा तो वह सौन्दर्य के वास्तविक स्वरूप को खोकर पीछे से दुःख उठायेगा। प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर उससे कई प्रकार का ज्ञान ग्रहण करके स्वयं सुन्दर बनने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

चेतन प्रकृति में जहाँ-जहां सुन्दरता दिखाई देती है, वहाँ-वहाँ उसकी आन्तरिक रचना के आधार पर ही प्रतीत होती है। वृक्ष, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि जितनी सजीव वस्तुएं हैं उनमें किसी भी अवयव में यदि सौन्दर्य है तो वह उसकी आन्तरीय रचना के आधार पर है। मनुष्य के सामने कुदरत ने भिन्न २ प्रकार के उदाहरण रख दिये हैं। उनको देखकर जिस प्रकार का चाहे, वह अपने को बना सकता है। जिस प्रकार बड़े-बड़े नगरों में पढ़े लिखे नाई हजामत कराने वाले पुरुष के सामने भिन्न २ प्रकार की हजामत को दिखाने वाले चित्र रख देते हैं कि जिस प्रकार की हजामत उसको करानी हो वैसी ही वह कराये। इसी प्रकार मनुष्य के सामने प्रकृति देवी ने भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र रख दिये हैं कि जिनकी आन्तरिक रचना देखकर उनके गुण, कर्म, स्वभाव को जानकर जैसे गुण, कर्म स्वभाव वाला और जैसे सौन्दर्य वाला बनना चाहे वैसा ही बन सकता है। इसी बात को जानने के लिये सब विद्यायें प्रयुक्त हो रही हैं और उन्हीं नियमों को जानने के लिये चारों वेदों की उपयुक्तता है।

(पृष्ठ १ का शेष)

हमारी ज्ञान शक्तियाँ और कर्म शक्तियाँ भी अल्प सामर्थ्य वाली हैं। हे नाथ! हमारा यह सब भौतिक और अभौतिक ऐश्वर्य एवं वस्तु भंडार भी तो आपका ही कृपापूर्ण दान है। क्या गायें? क्या बजायें? क्या सुनायें? आपके आशीर्वाद हमें मिल रहे हैं। अब तो आपकी कृपा से ही हमारा बेड़ा पार होगा।

(पृष्ठ २ का शेष)

निष्णात, शिक्षक, जो सम्पूर्ण जनता को सुशिक्षित कर दे। शिक्षक ही तो चरित्र-निर्माण और जीवन-निर्माण करता है। आचारवान् आचार्य ही नागरिकों में राष्ट्रनिष्ठा और चरित्र निष्ठा की प्रस्थापना कर सकेंगे। आज राष्ट्र को आवश्यकता है दिव्य नेता, दिव्य उपदेशक और दिव्य शिक्षक की। कोई वेदाचारी आर्य वीर उठे और दिव्य नेता बनकर ऊपर आये। आर्य नर-नारी उठें और दिव्य उपदेशक तथा दिव्य शिक्षक बनकर राष्ट्र का कल्याण करें। मोह-निद्रा को त्याग कर चेतो, उठो और बढ़ो, सुसंसृजन करके दिखाओ।

रण-निमन्त्रण

जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

ताशकंद की भ्रष्ट-भावना छोड़ो, लोगो ! छोड़ो ।
ताशकंद के समझौते को तोड़ो, लोगो ! तोड़ो ।।
ताशकंद ने लालबहादुर-सा नर वर खाया है ।
ताशकंद ने विजयी पग को पीछे लौटाया है ।।
ताशकंद में हमने अपनी जीती बाजी हारी ।
ताशकंद की मत फैलाओ भारत में बीमारी ।।
जिन लोगों ने लालबहादुर हिन्द केसरी मारा ।
उन दुष्टों से कभी न होगा सच्चा मेल हमारा ।।
कामराज की काम-दवाई काम नहीं आयेगी ।
कामराज से राम राज की महिमा मिट जायेगी ।।
भारत के घर घर में जो शत्रु ने फूट बढ़ाई ।
नाश करें हम सब मिल-जुलकर आओ उसका भाई।।
त्याग, तपस्या बलिदानों के चमत्कार दिखलाओ ।
वैर विरोधों को आपस के लोगो! मत भड़काओ ।।
पूछ रही है, वस्त्र-विहीना घायल भारत माता ।
शत्रु दल से समझौता क्यों ? कैसा रिश्ता नाता ?
मूर्ख चौहानों ने देखो, जब गौरी को छोड़ा ।
राज-लक्ष्मी ने भारत से तभी था मुंह को मोड़ा ।।
हरिसिंह, बन्दा बैरागी, हेमराज बन जाओ ।
मार मार कर शत्रु दल को यम के धाम पठाओ ।।
जाटो! भाटो! वीर मराठो! सिंह सपूतो ! जागो ।
वीरो! रण के साज सजाओ मोह निद्रा को त्यागो ।।
आपा धापी, निद्रा चुगली, बैर विरोध बिसारो ।
परम-पुनीता भारत-भू के संकट सभी निवारो ।।
कुरुक्षेत्र की रण-स्थली ने फिर ली है अंगड़ाई ।
भीतर-बाहिर शत्रु दल की वीरो ! करो सफाई ।।
हलदी घाटी, शेखावाटी, पानीपत की माटी ।
मांग रही शत्रु का शोणित फिर भूमी प्यासी-सी ।।
राणा के पौरुष की खायें आओ, मिलकर कसमें ।
अपने सीस चढ़ायें आओ, पद्मनियों को भस्में ।।

———

बोध-प्रबोध के दोहे

श्री रामचन्द्र जो मालवीय नगर, नई देहली

जीवन में अपनाइये, सत्पुरुषों के कर्म ।
वैदिक ज्ञान, उपासना, सत्य सनातन धर्म ।।
प्रभु की भक्ति कीजिये, मन, वच, कर्म समेत ।
भव बाधा मिट जायेगी, चेत रे प्राणी ! चेत ।।
जो मानव है जानता, अपना शुद्ध स्वरूप ।
प्रभुवर उसे दिखायगे, अपना रूप अनूप ।।
जो मन कहे विचार कर, फिर वह कीजिये कर्म
मन ही साधन मोक्ष का, मन ही कारण जन्म ।।
मोक्ष-धाम की कामना, जो करते नर-नार ।
जग का प्यार बिसार कर, करें प्रभु से प्यार ।।
मनुज निवाला मौत का, मनुज न पूजे कोय ।
मानव-पूजा परिहरे, वैदिक-धर्म है सोय ।।
माया का क्या मान है ? क्या काया का मान ?
मान तजे, हरि को भजे, मानव की पहिचान ।।
प्रभु भक्तों से प्यार कर, कर ईश्वर से प्यार ।
तन, मन, धन सब शुद्ध कर, होगा बेड़ा पार ।
दुर्जन से, दुष्कर्म से, करे न कोई मेल ।
दुर्जन संग, दुष्कर्म से, बिगड़ जायेगा खेल ।।
काम, क्रोध, मद, मोह तज लालच, अभिमान ।
सत्यशील बन, नम्र बन, यही वेद का ज्ञान ।।
जो शुभ कर्मी नारी-नर, जिनका विमल विवेक ।
जन्म उन्हीं का है सफल, सौ की बात है एक ।।

———

जय किसान की जय जवान के समान महत्ता

श्री पी० एस० कुंडु, छात्र श्री मस्तनाथ आयुर्वेद डिग्री कालिज, अस्थल बोहर, रोहतक

नारे का उद्गम

जय किसान के नारे की महत्ता पर विचार करने से पूर्व इसकी उत्पत्ति पर विचार कर लेना आवश्यक है। दूरदर्शी पूज्य श्री लालबहादुर शास्त्री ने पाकिस्तान के आक्रमण से उत्पन्न परिस्थितियों का तथा अन्य घटनाओं का विश्लेषण करके देशवासियों को यह परमावश्यक नारा दिया, जिसकी देश को चिरकाल से आवश्यकता थी। नारे की उत्पत्ति की जड़ (Orignal root) पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि रक्षा-मोर्चे पर विजय का सेहरा बाँध लेने के पश्चात् जब पाकिस्तान के तात अमेरिका ने इसका प्रतिशोध पी॰ एल॰ ४८० के अन्तर्गत आने वाले गेहूं को रोक लेना चाहा तो २१ अक्तूबर १९६५ को उरवा (इलाहाबाद) में सिंह-गर्जना करते हुए यह नारा देशवासियों के भाग्य के साथ जोड़ दिया। जब वहाँ उपस्थित जन-समूह ने श्री शास्त्री जी का अनुसरण करते हुए यह नारा लगाया, तो ऐसा प्रतीत होता था कि ऋषियों की भूमि के वासियों ने अमेरीकी सैबर जैट रूपी चुनौती का अपने नैट रूपी "जय-जवान जय-किसान" के नारे के द्वारा उत्तर दे दिया है।

नारे की महत्ता

महत्वपूर्ण सामयिक नारा होने के कारण शीघ्र जड़ पकड़ कर लोगों की जिह्वा पर आ जाना, एक स्वाभाविक बात थी। इस नारे में इतनी सूक्ष्मता है कि मनुष्य सहज आश्चर्य चकित और प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। स्थूल रूप से इस नारे का तात्पर्य देश को खाद्य मोर्चे पर आत्म-निर्भर बनाना है। इसलिये स्वर्गीय श्री शास्त्री जी ने मकान की नाव के रूप में इस नारे को प्रधानता दी। बुद्धिमान पुरुष का यह लक्षण होता है कि किसी विषय पर विचार करे, तो उसकी प्रत्येक दृष्टिकोण से परीक्षा करे। इस नारे को भी प्रत्येक दृष्टिकोण का माध्यम बना कर इस पर विचार करना उचित होगा।

यदि देशवासियों के विचारों के आधार पर इसकी महत्ता जानी जाये, तो स्पष्ट है कि क्या सामाजिक, क्या राजनीतिक, क्या धार्मिक सभी का इस नारे को पूरा करने के लिए जुट जाना, इस प्रश्न का मुंह बोलता उत्तर है। यदि सामाजिक आधार पर इसकी महत्ता जानी जाये, तो हम देखते हैं कि यदि अन्न न हो, तो भूखा व्यक्ति नीच और जघन्य कार्य करके हजारों सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न कर देता है। इन सामाजिक कुरीतियों से बचने के लिए भी इस नारे की शरण लेनी पड़ेगी।

यदि धर्म के आधार पर इस नारे की महत्ता जानी जाये, तो स्वामी विवेकानन्द जी महाराज का एक गम्भीर वाक्य स्मरण हो आता है कि—"भूखों को अन्न देना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।" यदि वेदों के आधार पर इसकी महत्ता जानें तो इस विषय से सम्बन्धित सैंकड़ों वेद-मन्त्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं। वेदों में स्थान-स्थान पर उत्तम अन्नादि की ईश्वर से प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद में एक मन्त्र आता है।

"माँ रक्षन्ति स्वपना विश्वदानीं देवा भूमि पृथिवि अप्रमादम्, सा नो मधु प्रिय दुहामथोउक्षतु वर्चसा।"

यदि राजनीति के आधार पर इसकी महत्ता जानें तो इस नारे का उद्गम ही इस दिशा से हुआ है जिसे पहले स्पष्ट किया जा चुका है। आर्थिक आधार पर भी इस नारे की बड़ी महत्ता है। कहा जा सकता है कि आवश्यकता ने अधिक अन्न उपजा कर दूसरे देशों को निर्यात करके अपनी आर्थिक दशा उन्नत की जा सकती है। इसलिए सुरक्षा-राष्ट्रों के कृषि-सम्मेलन में २३ नवम्बर

१९६५ को रोम में भाषण करते हुए भारत के कृषि मंत्री श्री सुब्रह्मण्यम ने उचित कहा था कि -

"भारत के सामने इस समय सबसे जरूरी काम कृषि उत्पादन में वृद्धि करना है।"

इसके अतिरिक्त देश के कर्णधार श्री शास्त्री के द्वारा अनेक जटिल योजनाओं और समस्याओं को स्थगित या धूमिल करके इस नारे को ही प्रधानता देने से इसको महत्ता की एक झलक सामने आ जाती है। अतः कहाँ तक लिखा जाये- यह नारा तो गुणों की खान है। जब भारत के जननी के वीर सपूतों ने मातृभूमि की रक्षा करके अपना कर्त्तव्य निभा लिया है तो हमें भी प्रण कर लेना चाहिये कि खाली पड़े चप्पे-चप्पे पर सर्वत्र अन्न उपजायेंगे। शास्त्री जी के नारे को पूरा करके दिखलायेंगे।

अब तनिक इस नारे के एक अंग अर्थात् "जय-जवान जय-किसान" के आपसी सम्बन्ध (Relation) पर भी विचार कर लेना चाहिये। यह सत्य है कि सैनिक देश की रक्षा करते हैं, परन्तु देशवासियों! याद रखो युद्ध में विजय की प्राप्ति उत्तम अन्न-सामग्री के बिना असम्भव है; उत्तम अन्न-सामग्री, उत्तम-कृषि के बिना असम्भव है; उत्तम-कृषि, उत्तम-यंत्रों और साधनों के बिना असम्भव है तथा उत्तम यंत्रों और साधनों का लाभ जय-किसान के बिना असम्भव है।

इसलिए जय-जवान और जय-किसान तो एक ही तराजू के दो पलड़े हैं। किसान के बिना तो सैनिक की दशा सुगंध रहित चंदन के समान हो जायेगी। अतः धन्य थे माता के वीर सपूत शास्त्री जिन्होंने देशवासियों को यह नारा दिया।

अब एक अत्यन्त महत्वपूर्ण, गम्भीर वाक्य, जय-किसान की महत्ता, अपने शास्त्री जी के शब्दों में सुन लो। उन्होंने एक बार आकाशवाणी पर अपना संदेश प्रसारित करते समय कहा था—

"स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता की रक्षा के लिये खाद्य मोर्चे पर आत्म-निर्भर होना एक अजेय सुरक्षा के प्रबंध से कम नहीं?

अतः यह स्पष्ट हो गया कि जय-जवान और जय-किसान तो एक सारस को जोड़ी है, ये तो एक ही शरीर के दो अङ्ग हैं। इसीलिए तो भविष्य-विचारक आर्य-जगत के वीर नेता पूज्यपाद स्वामी रामेश्वरानंद जी महाराज (एम॰ पी॰) किसानों के उत्थान पर बल देते रहे हैं।

नारे की सफलता के उपाय

यदि सरकार इस नारे को पूरा करना चाहतो है तो उसे इस दिशा में एक आमूलचूल क्रांति लानी होगी। अब जब कि देशवासियों का ध्यान इस नारे पर केन्द्रित है, तो सरकार को इस अवसर का पूरा लाभ उठाना चाहिये। किसान की पूर्ण रूपेण सहायता करके उसे उत्साहित करना होगा। कृषि-विभाग के अधिकारियों को रिश्वत लेकर और शराब पीकर नहीं, अपितु खेतों में जाकर, कृषि की वृद्धि के विभिन्न तरीकों पर किसान का ध्यान केंद्रित करके, उसे अपने पथ पर अग्रगामी बनाने का प्रयत्न करना होगा। बड़ी दावतों में होने वाले अपव्यय को रोकना होगा। जमाखोरी, नफाखोरी तथा चोरबाजारी समूल नष्ट कर देना होगा। बंगाल के दुर्भिक्ष के समय नेहरू जी ने भी रोते हुए पूछा था कि—"नफाखोरी और चोरबाजारी करने वालों को बिजली के खम्भों से बाँधकर फाँसी क्यों न दी गयी?"

यदि सरकार में इस नारे को पूरा क्रियान्वित करने का साहस है तो यह नारा फलप्रद हो सकता है, अन्यथा यह एक आवाज बनकर ही रह जायेगा।

वैदिक-प्रवचन-माधुरी

लेखक—श्री पं० जगतकुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

[११]

पवित्रकर्म

येन देवा पवित्रेण, आत्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण, पावमानी पुनन्तु मा ।।

सा० उ० ५ । २ । ८ । ५

शब्दार्थः—(येन) जिस (पवित्रेण) पवित्र कर्म से (देवा) परोपकारी विद्वान् (सदा) सर्वदा (आत्मानम्) अपने आपको (पुनते) पवित्र करते रहते हैं, (तेन) उसी (सहस्रधारेण) सहस्रों धाराओं वाले कर्म से (पावमानी) सबको पवित्र करने वाली वेद-वाणी (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करे।

भावार्थ—जिस स्वाध्याय रूपी उत्तम कर्म से परोपकारी विद्वान् सदैव अपना कल्याण साधन किया करते हैं, उसी सहस्रों प्रकार की ज्ञान-धाराओं वाले वैदिक-स्वाध्याय रूपी कर्म से सबका कल्याण करने वाली वेद-वाणी हमारा भी कल्याण करे।

प्रवचन

पवित्र-कर्म क्या है ? कोई कहता है—यह और कोई कहता है, वह। परस्पर विरोधी बातों को सुनकर साधारण मनुष्य भ्रम में पड़ जाते हैं। पवित्र-कर्म का अनुष्ठान तो सभी करना चाहते हैं, परन्तु जब यह ज्ञान ही न हो कि पवित्र-कर्म कौन-सा है ? तब वे बेचारे क्या करें ?

वेद उनकी इस द्विविधा का अन्त करता है। पवित्र-कर्म वह है, जिसके द्वारा विद्वान् लोग अपने आपको निरन्तर ही पवित्र करते रहते हैं। वह कर्म अत्यन्त पवित्र है। तभी तो वह पवित्रता की एक अखण्ड-धारा-सी प्रवाहित कर देता है और साधकों को पवित्रता प्रदान करता है। सब पाप, सन्ताप, दुःख, द्वन्द्व, विक्षोभ और सन्देह पवित्रता के इस प्रवाह में बह जाते हैं।

ईश्वर-भक्ति एक पवित्र-कर्म है। हाँ, इस भक्ति में अटूट और तीव्र प्रभु-प्रेम का बीज अवश्य ही होना चाहिये। जो दिखावे के लिये की जाये, वह तो भक्ति नहीं है। भक्ति के दो रूप हैं। एक तो परम प्रेम-स्वरूपा, दूसरी कामना रहित सेवा-परा। जिनकी भक्तिवाद में कुछ विशेष रुचि है, वे सिद्धों का अनुगमन करें।

वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना, एक पवित्र-कर्म है। वेद-पाठ वास्तव में वेद-पाठ ही होना चाहिये, तोता-रटन्त नहीं। हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो। स्वर मधुर और शुद्ध हो। अर्थ का बोध हो। भाव स्निग्ध हो। वातावरण अनुकूल हो, प्रेरणाप्रद हो, उत्साहपूर्ण हो। स्वाध्याय का आरम्भ विधिपूर्वक हो। श्रवण हो, मनन हो, निदिध्यासन हो, साक्षात्कार हो। तब वेद-पाठ वास्तव में ही वेद-पाठ होगा। तभी वेद के पठन-पाठन, अध्ययन, अध्यापन और श्रवण-श्रावण का वास्तविक आनन्द भी प्राप्त हो सकेगा। तभी वह ज्ञान-गंगा का देव-दुर्लभ-प्रवाह भी प्रवाहित हो सकता है, जो कि अपनी सहस्रों ज्ञान-धाराओं के द्वारा सब प्रकार की भ्रान्तियों के घास-कूड़े को दूर कर देता है।

हम भी पवित्र-कर्म का अनुष्ठान करेंगे। हम भी अपने तन के चोले को भक्तिवाद और वेदवाद के रंग में रंगेंगे। अपने मन को प्रभु-प्रेम की भावनाओं से परिपूर्ण करेंगे। लोग पवित्रता के नाम पर अनेक प्रकार के कदाचार, भ्रष्ट-व्यवहार और अमेध्य-अनुष्ठान कर-करके, तरह-तरह के भ्रष्टाचारों को फैला रहे हैं और दुःख एवं दारिद्रय के

भण्डार को बढ़ा रहे हैं। हे प्रभो! हमारी गति उत्तम हो, मति उत्तम हो, और परिणति भी उत्तम हो। हमें पवित्रता के सम्पादन और परिवहन का सामर्थ्य प्रदान करो। हमारी पवित्रता, वास्तव में पवित्रता हो। अपवित्रता को पवित्रता कहना या समझना, तो अविद्या है। हमें विद्या की वृद्धि और अविद्या के नाश का सामर्थ्य एवं साहस प्रदान करो।

हम पवित्र होना चाहते हैं। हम यह भी चाहते हैं कि अपने कार्यों के द्वारा हम संसार की पवित्रता के समूह में अधिकाधिक वृद्धि करें। संसार में पवित्रता की वृद्धि करने वाले महापुरुषों का हम अनुगमन करेंगे। वेद के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने सुनाने को हम अपना परम-धर्म समझेंगे। अशान्ति, गन्दगी और दुःख की वृद्धि करने वाले काम हम नहीं करेंगे।

अपने स्वाध्याय में, अर्थात् अपने पवित्र-कर्म के अनुष्ठान में, अपने स्तुति, प्रार्थना और उपासना के कार्यक्रम में, हम न तो प्रमाद करेंगे और न ही किसी प्रकार के विघ्न-बाधा, वा हस्ताक्षेप को सहन करेंगे। हे प्रभो! हमें बल दो। आपकी कृपा से हमारा अपने परम-धर्म के प्रतिपालन का यह व्रत निर्विघ्न पूरा हो।

जिसको भूख नहीं है, उसको तो उत्तम पकवान भी रुचते नहीं हैं। यदि बिना भूख के ही भोजन किया जाता है, तब तो अपच और अजीर्णता आदि अनेकों रोग आ दबाते हैं। पहिले भूख पैदा करो। भूख को बढ़ाओ, खूब चमकाओ। तब विधिपूर्वक भोजन करो। जब इस प्रकार भोजन ग्रहण किया जायेगा, तब वह सब प्रकार से पुष्टिदायक और बल, वीर्य, पराक्रम एवं आरोग्यता की वृद्धि करने वाला होगा। भोजन का यही नियम स्वाध्याय और ज्ञानार्जन के विषय में भी सत्य है। ज्ञान की भूख भी होनी चाहिये और ज्ञान को पचाना भी चाहिये।

यदि ज्ञान की भूख ही नहीं है, तब तो यह मन के रोगी होने का लक्षण है। सज्जन पुरुषों की संगति, प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन और सद्-ग्रन्थों के पठन-पाठन के द्वारा ज्ञान की भूख को बढ़ाना, तथा चमकाना चाहिये। सुपाच्य, सात्विक और उत्तम मानसिक भोजन को ही ग्रहण करो। कच्चे विचारों से बचो। अश्लील साहित्य का नाम भी न लो। अश्लील-साहित्य को अपने घर में भी न घुसने दो। भद्दे और अश्लील दृश्यों को न देखो। पवित्रता के सूत्र को दृढ़ता से पकड़ लो। जीवन के सभी क्षेत्रों में पवित्रता का अनुसरण करो। किसी भी प्रकार की गन्दगी से समझौता न करो।

ज्ञान की प्राप्ति के लिये धर्म-चर्चा, शास्त्र चर्चा और विशेष योग्यता प्राप्त विद्वानों से विचार विमर्श का करना भी उत्तम है। परन्तु वितण्डावाद, कुतर्क, जल्प और छल प्रभृति कुत्सित रीतियों से तो सभी सज्जन पुरुषों को सदैव दूर ही रहना चाहिये। सन्देह-जाल के निराकरण के लिये विशेषज्ञों ने अनेक प्रकार के उत्तम उपायों का विधान किया है। परन्तु इस कार्य के लिये जैसा उत्तम, सरल, सुलभ और निश्चित् रूप से कल्याणकारी-कर्म स्वाध्याय है, वैसा दूसरा कोई अन्य उपाय नहीं है। स्वाध्याय की यथार्थ महिमा को तो कोई स्वाध्यायशील सज्जन ही ठीक-ठीक समझेगा। प्रकृति-निरीक्षण भी एक प्रकार का स्वाध्याय ही है। आर्ष-ग्रन्थों अर्थात् पूर्ण विद्वान् और सब प्रकार के पक्षपात आदि दोषों से रहित ज्ञानियों के बनाये हुए ग्रन्थों का पठन-पाठय भी स्वाध्याय है। परन्तु सर्वश्रेष्ठ स्वाध्याय तो वेदों का पढ़ना और पढ़ाना एवं सुनना और सुनना ही है, क्योंकि वेद ईश्वरीय-ज्ञान है।

———

[१२]

उन्नति का क्रम

व्रतेन दीक्षामाप्नोति,
दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति,
श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

यजु० १९।३०

शब्दार्थ मनुष्य (व्रतेन) व्रत के द्वारा (दीक्षाम्) दक्षता को (आप्नोति) प्राप्त करता है। (दीक्षया) दक्षता से (दक्षिणाम्) दक्षिणा को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (दक्षिणा) दक्षिणा से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (श्रद्धया) श्रद्धा से (सत्यम्) सत्य (आप्यते) प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ—मनुष्य किसी उत्तम व्रत को ग्रहण करने के अनन्तर ही दीक्षा=दक्षता को प्राप्त होता है। दीक्षा के पश्चात् दक्षिणा को प्राप्त करता है। दक्षिणा से श्रद्धा=दृढ़ विश्वास की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। श्रद्धा के द्वारा सत्य की प्राप्ति होती है। यह मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है।

प्रवचन

यदि मनुष्य उन्नति करना चाहता है, तो पहिले वह भली प्रकार सोच-विचार करके अपने जीवन का कोई उत्तम लक्ष्य निर्धारित करे। क्या करना है? क्या बनना है? यह प्रथम सुस्पष्ट हो जाना चाहिये। जिस मनुष्य का कोई लक्ष्य ही नहीं है, वह तो अवश्य ही कुछ व्यर्थ कार्यों में फंस कर अपने समय साधनों और सामर्थ्य का दुरुपयोग करेगा। तब वह अवनत होगा और हानि उठायेगा। यह एक निश्चित् नियम है। अतः उन्नति के क्रम में मानव-जीवन का कोई लक्ष्य वा आदर्श अर्थात् अन्तिम, उद्देश्य सबसे पहिले निश्चित् किया जाये। वेद की भाषा में इस अन्तिम उद्देश्य के निर्धारण को ही व्रत-ग्रहण कहते हैं।

आदर्श का निश्चय तो हो गया। अब उस आदर्श की प्राप्ति का विधिवत् अनुष्ठान होना चाहिये। सीखो, समझो, साधनों का निश्चय करो। परिस्थिति पर विचार करो। आवश्यक हो तो अवसर की प्रतीक्षा करो। परन्तु अनुकूल अवसर होने पर भूल, चूक या देर न करो। अनुकूल परिस्थिति और अनुकूल अवसर तो होना ही चाहिये। यदि प्रतिकूलता हो, तो पहिले अनुकूलता प्राप्ति का प्रयत्न ही करो। छोटे से छोटे काम को भी पूर्ण संलग्नता, गम्भीरता, कर्त्तव्य-परायणता और उत्तरदायित्व की भावना के साथ करो। यह भी आवश्यक है! लक्ष्य उत्तम हो, साधन उचित हों, कर्त्तव्य से प्रेम हो, अवसर अनुकूल हो, विधि-विधान का पूर्णतया पालन हो।

आधे मन से, बिना जाने, बिना सोचे-समझे, आवश्यक साधनों के अभाव में, अनुचित समय पर, अनुचित स्थान पर, अनुकूल परिस्थितियों के बिना ही, किसी कार्य का आरम्भ करना उचित नहीं है। ऐसा करना तो एक प्रकार से दुःसाहस या अनधिकार चेष्टा ही है। इस प्रकार की चेष्टाओं का परिणाम तो मनुष्य को अपने सन्मान, समय और धन के नाश के रूप में अवश्य ही भोगना पड़ता है। मनुष्य जिस किसी भी काम को करे, पहिले उसको करने की दीक्षा ले, गुरुजनों और सफलता-प्राप्त वृद्धों की सेवा करके, उनकी पूर्ण स्वीकृति लेकर, तब कार्य को आरम्भ करे। जब ऐसा होता है, तब विरोधों के खटके भी मिट जाते हैं और कर्त्तव्य-पालन में मन भी खूब लगता है।

जो लोग भली प्रकार दीक्षा लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरते हैं, वे बहुत शीघ्र ही अभीष्ट सफलताओं को प्राप्त कर लेते हैं। वे जिस किसी काममें भी हाथ डालते हैं, वही सफल हो जाता है। क्योंकि

वे जानते हैं कि अमुक कार्य में, अमुक व्यवसाय में और अमुक स्थान पर, अमुक सफलता, अमुक प्रकार से प्राप्त की जाती है। ऐसे सभी लोग अपने अपने कर्तव्य-पालन के परिणाम स्वरूप नाना प्रकार के लौकिक लाभ प्राप्त करते हैं। रुपये-पैसे का अभाव उनको नहीं सताता। पेट की समस्या उनको तंग नहीं करती। वे निरन्तर ही एक से दूसरी, नई-नई सफलताओं की ओर बढ़ते ही रहते हैं। अपनी सूझ-बूझ और अपने परिश्रम के द्वारा वे मिट्टी को सोना बनाकर भी दिखला देते हैं। लोग रसायण-विद्या की बातें करते हैं। ध्येय-निष्ठा, कर्त्तव्य-परायणता, परिश्रम-शीलता, सत्यता और सद्भावना से बढ़कर रसायण-विद्या और कौन-सी है? संसिद्धि का आयोजन ही व्रत है, संसिद्धि का मार्ग ही दीक्षा है और संसिद्धि की प्राप्ति ही दक्षिणा है। दक्षिणा, लाभ, प्रतिफल और परिणाम एक ही बात है।

जब कोई मनुष्य एक बार दक्षिणा को प्राप्त कर लेता है। तब वह दक्षिणा-प्राप्ति के नियमों पर दृढ़ विश्वास करने लग जाता है। उसका अनुभव उसके भावी आयोजनों में सहायक, पथ-प्रदर्शक और उत्साह—वर्धक बन जाता है। वेद की भाषा में इस दृढ़-विश्वास प्राप्ति को ही श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा का यह भाव धीरे-धीरे मनुष्य के हृदय में परिपक्व हो जाता है और अपना एक विशेष स्थान बना लेता है। श्रद्धावान् मनुष्य का जीवन और व्यक्तित्व भी श्रद्धेय बन जाता है। जब मानव-जीवन छल-कपट-हीन और विश्वास के योग्य होता है, तब वह विशेष दक्षिणाओं को भी प्राप्त करता है।

हमारी श्रद्धा सचमुच श्रद्धा ही होनी चाहिये। किसी प्रकार की अन्ध-श्रद्धा, मूढ़-भावना, कूप-मण्डूकता वा अन्ध-विश्वास-परम्परा वह न हो। वास्तव में तो यह श्रद्धा ही वह अमोघ शक्ति है जो मनुष्य को सब प्रकार की सफलतायें प्रदान किया करती है और अन्त में उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर भी पहुंचा देती है। मानव-जीवन के सर्वोच्च और अन्तिम लक्ष्य को ही वेद की भाषा में सत्य कहते हैं। सत्य को समझने वा समझाने के लिये भाषा का व्यापार तो होगा ही; परन्तु सत्य को किसी प्रकारके विशेषण की आवश्यकता नहीं है। विशेषणों से युक्त सत्य तो मिश्रित-सत्य होगा। मिश्रित सत्य और असत्य एक ही बात है। सत्य तो बस सत्य होना चाहिये। सापेक्ष सत्य नहीं विशुद्ध सत्य कहना भी ठीक न होगा। सत्य, बस सत्य।

क्या सत्य है? और क्या सत्य नहीं है? लोक में इस विषय में बहुत से विवाद प्रचलित हैं। परन्तु वे सब वाक्शूर, बातूनी और मतलब-सिन्धु लोगों की ही बातें हैं। जिन्होंने संयमी बनकर, नियम पूर्वक उन्नति की है, और अनुक्रम पूर्वक जीवन की उच्चतर-भूमिकाओं एवं अवस्थाओं को प्राप्त किया है, उनके लिये तो वादविवाद का कोई प्रसंग ही नहीं है। वे तो अपने-अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही सब कुछ यथावत् रूप में जानते ही हैं। ऐसे महामानव ही धर्म-शास्त्र की भाषा में सिद्ध, तत्ववेत्ता, ऋषि, महर्षि और द्रष्टा आदि उपाधियों से विभूषित किये जाते हैं।

[१३]

पुलकामो हि मर्त्यः

इमं नु सोमन्तितो
हृत्सु पीतमुपब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु-
मृडतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥

ऋ० १ । १७९ । ५

शब्दार्थ—(हृत्सु) हृदयों में, प्रत्येक प्राणी के हृदय में (पीतम्) बसे हुए, पीये हुए, धारण किये हुए पीतम्, प्राणप्रिय (इमम्) इस (सोमम्) आनन्ददाता, रस-सागर प्रभु को (नु) ही (अन्तितः) समीप से, हृदय की गहराई में से (उप ब्रवे) मैं बुलाता हूं। (सीम्) अपनी सीमा में, अपने जीवन में (यत्) जो (आगः) पाप, अपराध, उत्पात (आचकृम) हम करते हैं (तत्) उसको वह पीतम सोम (सुमृडतु) दूर करे, क्षमा करे, उससे बचा कर, हमें सुखी करे। (मर्त्यः) मनुष्य (हि) निश्चय से (पुलुकामः) बहुत अधिक कामनाओं वाला है। बहुत अधिक स्वार्थी है।

भावार्थ—मैं तो उस घट-घट वासी प्रीतम सोम के समीप होकर वार्तालाप किया करता हूँ। उससे मेरा यही नम्र-निवेदन होता है कि अपने जीवन में हमने जो-जो पाप या अपराध किये हैं, अथवा जिन पापों वा अपराधों के घटित होने की सम्भावना हमारे जीवन में हैं, वह आनन्द स्वरूप परमेश्वर, उन सब पापों से हमारी रक्षा करे। मनुष्य तो अल्पज्ञ, बहुत अधिक स्वार्थी और बहुत अधिक कामनाओं वाला प्राणो है। मनुष्य का शरीर तो नाशवान् है।

प्रवचन

कहने को तो मैं एकान्तवास करता हूँ और गुमसुम-सा पड़ा रहता हूं। परन्तु वास्तव में मैं बहुत अधिक महत्वपूर्ण कार्य में संलग्न हूँ। मैं अपनी कल्याण-साधना में निमग्न हूँ। यदि नीति-निपुण संसारी प्राणी मेरे कार्य और उसके महत्व से अनभिज्ञ हैं, तो इसमें मेरी क्या हानि है? कुछ भी तो नहीं। बात बहुत साफ है। मैं यह चाहता भी नहीं कि कोई मेरे एकान्त और गुम-सुम जीवन के विषय में कुछ जाने। क्यों? इसलिये कि राग-द्वेष और मोह-माया में ग्रस्त सांसारिक प्राणियों से मुझे डर लगता है। पथ-भ्रष्ट हो जाने का डर। राग-द्वेष और मोह-माया के चक्कर में फँस जाने का डर। अपने प्राण-प्यारे प्रीतम सोम से बिछुड़ जाने का डर।

अध्यात्मवाद की जिन उच्चतर भूमिकाओं में प्रवेश प्राप्त करने की सफलता मुझे मिली है, उनका ढिंढोरा पीटने की मेरी इच्छा नहीं है। निश्चित् रूप से मेरी जो आत्मिक उन्नति प्रतिदिन होती जा रही है, उसका प्रदर्शन-रूप-खेल-तमाशा करने में मेरी रुचि नहीं है। इन व्यर्थ बाल-लीलाओं के लिये कुछ थोड़ा-सा भी अवकाश या उत्साह मेरे पास नहीं है।

अपने प्रीतम से वार्तालाप मैं प्रतिक्षण करता हूँ बहुधा तो मैं अपने नम्र-निवेदन ही किया करता हूँ। कुछ थोड़ी मात्रा में अपने प्रीतम के मधुर-बोल भी सुनने को मुझे मिल ही जाते हैं। मुझे अकिंचिन के लिये यही सब कुछ है। कोई मेरे चिर-मौन को देखकर व्यंग्य-बाण क्यों चलाता है? यदि कोई मुझे गूंगा बताता है, तो बताये। संसार-समाज के सामने मुखर होकर अब मैंने क्या लेना-देना है? उस टन-टन, पूं-पूं, गुहार, पुकार और चिल्लाहट की निस्सारता तो मैंने भली प्रकार जान ली है, जिसको महत्वपूर्ण मान कर बहुत से प्राणी अपना बहुमूल्य जीवन-धन व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हैं। यदि कोई कहीं अपने से दूर हो तो उसे पुकारा भी जाये।

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो होवे पर-देश।
तन में, मन में, नैन में, उसको क्या सन्देश॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
त्यों प्रीतम सब में बसे, जाग सके तो जाग॥

मैंने कभी भी कोई पाप या अपराध नहीं किया है, ऐसा मैं नहीं कहता। हो सकता है कि जो कुछ मैंने पुण्य और कर्त्तव्य समझ कर किया हो, वह पाप या अपराध ही रहा हो। मैं यह भी नहीं कहता कि मैं कभी भी कोई पाप या अपराध

नहीं कर सकता। ऐसा अहंकार पूर्ण वचन कोई आस्तिक पुरुष कभी बोल ही नहीं सकता। एक भी सीमाबद्ध, अल्पज्ञ और अल्प-सामर्थ्य युक्त मनुष्य जब दम्भ का आश्रय लेता है, और बढ़-बढ़ कर बातें करने लगता है, तब भारी अनिष्ट की आशंकायें घनीभूत हो उठती हैं। ईश्वर उन अनिष्ट की आशंकाओं से सबकी रक्षा करें। अपने प्रीतम से मैं तो बारम्बार यही निवेदन किया करता हूँ कि हे नाथ! भले-बुरे और पाप-पुण्य की पहचान मुझे नहीं है। इसलिये सब कालों, सब प्रदेशों और सब परिस्थितियों में तू ही मेरा पथ-प्रदर्शन कर। और हे नाथ! यदि कभी मेरा पाँव फिसलने लगे, तब हँस कर तमाशा न देखना, आगे बढ़ कर मझे थाम लेना। भला-बुरा जैसा भी मैं हूँ, तेरा ही हूं। तेरा ही हूँ।

कोई बुरा माने या भला, बात कुछ कड़वी अवश्य है। फिर भी मझे कहनी पड़ती है—सारे रिश्ते नाते झूठे हैं। साथी, संगी सब मतलबी यार हैं। किसी एक मनुष्य को भी पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। ऐसी अवस्था में प्राण प्यारे प्रीतम से प्रेम करने से बढ़ कर उत्तम दूसरा कोई कर्म क्या हो सकता है? कुछ नहीं।

एक बात और, मैं मनुष्य-पूजक नहीं हूँ। मनुष्य पूजक कोई भी न बने। किसी मनुष्य का महान होना तो सम्भव है, फिर भी उसका सर्वथा ही निर्दोष होना सम्भव नहीं है। मनुष्य पूजा भारी अनर्थों की जड़ है। लाखों कामनायें और असंख्य वासनायें उस नाशवान पुतले में भरी पड़ी हैं, जो मनुष्य नाम से प्रसिद्ध है।

यह कामनाओं की रेल-पेल का खेल भी कैसा विचित्र है? न जाने कब, कैसे और कहाँ से? कोई एक कामना मेरे अन्तःकरण में आ बैठती है, और मैं उसके इशारों पर नाचने लगता हूँ। कभी-कभी पथभ्रष्ट भी हो ही जाता हूँ। येन-केन प्रकारेण एक कामना को सन्तुष्ट करता हूं। फिर दूसरी आ विराजती है, जैसे कैसे उससे पीछा छुड़ाता हूँ। फिर तीसरी कामना आ जाती है। फिर चौथी, फिर पाँचवी। फिर एक और। मेरी इस कामना परम्परा का मानों कोई ओर छोर ही नहीं है। मेरी कामनायें साधारण ही होती हों, सो बात भी नहीं है। असाधारण कामनायें भी मैं प्रायः किया ही करता हूं। कभी तो मेरी स्थिति महान मनोरथों वाले दरिद्र व्यक्ति जैसी होती है। और कभी मैं अपनी मनोवाँछित प्राप्तियों को ही अपर्याप्त बतलाया करता हूँ। भोगों की लालसा बढ़ती ही चली जाती है। भोगों की कामना भड़कती ही चली जाती है। मैं अपनी असमर्थताओं से पीड़ित हूँ फिर भी लालसाओं और कामनाओं से छुटकारा मुझे नहीं मिलता। मैं एक मनुष्य हूँ। शायद प्रत्येक मनुष्य की स्थिति मुझ जैसी ही है। ओह—

> भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता,
> तपो न तप्तं, वयमेव तप्ताः।
> कालो न यातो, वयमेव याताः,
> तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा॥

हमने भोग नही भोगे, भोगों ही ने हमें भोग लिया। हमने तप नहीं तपा, हम सदा संतप्त ही बने रहे। समय नहीं गुजरा, हम ही गुजर गये। तृष्णा -कामना जीर्ण नहीं हुई, हम ही जीर्ण-शीर्ण हो गये।

दयानिधे! तुझसे क्या छिपाऊँ?

मैं तो यह भी नहीं जानता कि कौन-सी कामना करने में मेरा कल्याण है? मेरे इस कामना-जाल का अब तू अन्त कर दे। मेरी नहीं, तेरी इच्छा पूर्ण हो। क्या मैं? और क्या मेरी इच्छा?

पातंजल योग-दर्शन का भाष्य २

भाष्यकार—विविध प्रकार के ग्रन्थों के प्रणेता, डी० ए० वी० कालिज लाहौर के संस्कृतोपाध्याय
विद्यामूर्ति स्व० श्री पं० राजाराम जी शास्त्री

[गतांक से आगे]

संगति—इस [योग की] अवस्था में आत्मा क्या करता है ?

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥

पदार्थ –(तदा) तब द्रष्टा (आत्मा) की (स्वरूपे) स्वरूप में (अवस्थानम्) अवस्थिति= ठहराना ।

अन्वयार्थ –तब दृष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप (अपने आप) में अवस्थिति होती है ।

भाष्य—जिस प्रकार नाटक का देखने वाला सावधानता से देखता हुआ नाटक की सारी बातों को देखता है, पर अपने आपको भूला हुआ होता है। उसकी जेब में से कुछ निकाल लो, उसे पता नहीं चलता। वह मानो वहाँ है ही नहीं। वह तो उस दृश्य में है, जिसको देख रहा है। जब वह खेल बन्द होता है, तब वह अपने आप को सम्भालता है। अब वह नाटक के दृश्य में नहीं, अपने स्वरूप में है। अब उसकी जेब में हाथ डालो। झट तुम्हारा हाथ पकड़ लेगा। इसी प्रकार आत्मा भी प्रकृति की इस नाट्यशीला में बैठकर इसी के दृश्य को देख रहा है। और, वह इसमें इतना मग्न है कि अपने आपको बिल्कुल भूला हुआ है। मानो कि अपने स्वरूप में स्थित नहीं। इस दृश्य में वह अपने स्वरूप में स्थित नहीं। इस दृश्य में स्थित है, जिसको देख रहा है। निरोधावस्था में जब यह खेल उसके सामने से बन्द होता है, तब वह अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

उपनिषद् (कठ० ६।१०, ११) मे भी योग का यही लक्षण है

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते, तमाहुः परमां गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति, योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥

अर्थ जब पाँचों ज्ञानेन्द्रिय मन के सहित खड़े हो जाते हैं, और बुद्धि भी नहीं डोलती, उस (अवस्था) को परम-गति कहते हैं।

यह जो इन्द्रियों की निश्चल धारण है, इसी को योग मानते हैं। उस समय वह योगी प्रमाद (जो अपने आपको भूला हुआ था, उस) से रहित होता है। क्योंकि योग प्रभव और अप्यय है। [उत्पत्ति और लय का स्थान है। अन्तर्ज्ञान की उत्पत्ति और बाह्य ज्ञान के लय का स्थान है।]

संगति—व्युत्थानावस्था में पुरुष का क्या स्वरूप होता है—

वृत्ति-सारूप्यमितरत्र ॥४॥

पदार्थ –(वृत्ति-सारूप्यम्) वृत्ति के समान रूपता (इतरत्र) दूसरी अवस्था में ।

अन्वयार्थ –दूसरी अवस्था में (द्रष्टा की) वृत्ति के समान रूप वाला होता है ।

निरोध से उठने पर आत्माका चित्त की वृत्तियों के समान रूप हो जाता है। तीनों गुणों के कारण वृत्तियां शान्त, घोर और मूढ़ रूप होती हैं। आत्मा भी उस अवस्था में अपने आपको शान्त, दुःखी और मूढ़ रूप अनुभव करता है। पर व्युत्थान में भी योगी की वृत्तियां प्रायः शान्त ही रहती है। हाँ, अयोगियों की वृत्तियाँ प्रायः अशान्त होती हैं। आत्मा योगी-अयोगी दोनों का अपनी-अपनी वृत्तियों के समान रूप होता है। पंचशिखाचार्य का सूत्र है—

"एकमेवदर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम् ।"

एक ही दर्शन है। ख्याति वृत्ति ही दर्शन है। अर्थात् आत्मा वही कुछ देखता है, जैसी वृत्ति है। यह नहीं होता कि वृत्ति अशान्त हो और आत्मा शान्त रहे। वा वृत्ति शान्त हो और आत्मा अशान्त रहे।

संगति— २ से ४ तक सूत्रों में योग का लक्षण, योग की अवस्था में आत्मा की स्थिति और व्युत्थान अवस्था में आत्मा की स्थिति बतलाई गई है। अब जिन वृत्तियों के रोकने का नाम योग है, उन वृत्तियों का (५-११ तक) वर्णन करते हैं—

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥५॥

पदार्थ—(वृत्तयः) वृत्तियाँ (पंचतय्यः) पाँच प्रकार की हैं (क्लिष्टाक्लिष्टाः) क्लिष्ट (राग द्वेष आदि क्लेशों की हेतु) और अक्लिष्ट। (राग-द्वेष आदि क्लेशों का नाश करने वाली।)

अन्वयार्थ, वृत्तियां पाँच प्रकार की हैं चाहे क्लिष्ट हों वा अक्लिष्ट।

भाष्य—वाह्य-पदार्थ अनगिनत हैं। उनके कारण से अनगिनत ही वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। उन सारी वृत्तियों को अलग-अलग तो कोई सहस्र आयुष्य में भी नहीं गिन सकता। पर वे सारी की सारी पाँच भेदों में बट सकती हैं, जिनके नाम अगले सूत्र में कहेंगे। ये वृत्तियाँ जब-जब राग-द्वेष आदि क्लेशों को उत्पन्न करती हैं, तब ये क्लिष्ट होती हैं। जब मनुष्य किसी वस्तु को जानकर उससे सुख उठाता है, तो इसमें उसका राग हो जाता है। जब दुःख उठाता है, तो द्वेष होता हैं। इस राग-द्वेष के आधीन उनको प्राप्त करने वा हटाने के लिए शुभ-अशुभ कर्म करता है। इस प्रकार क्लिष्ट वृत्तियों से वह बन्धन में पड़ता हैं। अक्लिष्ट वृत्तियाँ वे हैं, जो क्लेशों का नाश करने वाली हैं।

जब पुरुष अभ्यास और वैराग्य से अन्तर्मुख होता है, तब ये वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। यद्यपि क्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार बड़े गहरे जमे हुए हैं, तथापि जिस समय शास्त्र, अनुमान और आचार्यों के उपदेश से अभ्यास और वैराग्य उत्पन्न हो जाते हैं, उस समय अक्लिष्ट वृतियाँ पैदा होने लगती हैं। और फिर इनके भी संस्कार जमते हैं। वृत्तियों का यह स्वभाव ही है कि वे अपने सदृश संस्कारों को उत्पन्न करती हैं। अक्लिष्ट वृत्तियाँ अक्लिष्ट संस्कारों को, फिर उन संस्कारों से वैसी ही वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिये अब यहाँ आकर दोनों में युद्ध होता है। दोनों के संस्कार विद्यमान है। प्रत्येक वृत्ति दूसरी को दबाकर अपना उदय चाहती हैं। यदि यहां पहुंचकर मनुष्य शास्त्र के अभ्यास और गुरु के उपदेश को श्रद्धा से धारण किये रहता है, तो अक्लिस्ट वृत्तियाँ जीत जाती हैं।* वे क्लिष्ट संस्कारों को उखाड़ कर अपना राज्य जमा लेती हैं। जिज्ञासु को इस बात में सावधान करने के लिए सूत्रकार ने क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों के दो भेद बतला दिये हैं।

संगति—वे पाँचों वृत्तियां ये हैं—

प्रमाण, विपर्य, विकल्प, निद्रा, स्मृतयः ॥६॥

पदार्थ—१. प्रमाण, २. विषय, ३. विकल्प, ४. निद्रा और ५. स्मृत्ति।

अब क्रम से इनके लक्षण करते हैं—

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

पदार्थ—(प्रत्यक्षऽनुमानाऽऽगमाः) प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (प्रमाणानि) प्रमाण हैं।

अन्वयार्थ—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण हैं, अर्थात् यह तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति है।

भाष्य मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं यह अनुमान से जानता हूँ, मैं यह शास्त्र से जानता हूँ, इस प्रकार के ज्ञान का नाम बोध है। यह बोध यदि यथार्थ हो, तो प्रमा कहलाता है, अयथार्थ हो तो अप्रमा। जिस वृत्ति से प्रमा (यथार्थ-बोध) उत्पन्न होती है, उसका नाम प्रमाण

---

* वृत्तियों के इस संघर्ष को ही उपनिषदों में तथा अन्यत्र भी देवासुर-संग्राम के आलंकारिक रूप में लिखा है।

—सम्पादक

है । प्रमाण तीन ही हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम । और जितने प्रमाण माने गये हैं, वे सब इन्हीं के अन्तर्गत हो जाते हैं ।

जब आंख से किसी पदार्थ को देखते है, उस समय जो चित्त की वृत्ति (चित्त का आकार) होती है, उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है । फिर आत्मा इस वृत्ति को देखता है, और जानता है कि मैं यह पदार्थ देख रहा हूँ । यही उस प्रमाण का फल है । इसका नाम प्रत्यक्ष-बोध है, वा प्रत्यक्ष प्रमा है । इसी प्रकार कान से सुनने, रसना से रस लेने, घ्राण से सूंघने, त्वचा से स्पर्श करने और मन से सुख-दुःख के जानने में चित्त की वृत्ति प्रत्यक्ष-प्रमाण है । और पौरषेय (आत्मा का) बोध प्रत्यक्ष प्रमा है ।

किसी चिन्ह के सहारे जो किसी पदार्थ का पता लगाना है, उसे अनुमान कहते हैं । जैसे नदी की बाढ़ और मटियाला पानी देखकर यह जानना कि उपर कहीं वृष्टि हुई है । यहां भी अनुमान करने में जो चित्त की वृत्ति है, वह अनुमान है और उससे जो आत्मा में बोध होता है, वह उसका फल—प्रमा है । अनुमान की प्रमा को "अनुमिति" कहते हैं और जिस पदार्थ का अनुमान होता है, उसे अनुमेय कहते हैं ।

वेद को पढ़कर वा सुनकर अर्थ जानने वाले की जो चित्त-वृत्ति होती है, वह आगम-प्रमाण है, और इस वृत्ति का जो आत्मा को बोध होता है, वही इसका फल—प्रमा है । शब्द को तो हम कानों से सुन लेते हैं, वह आगम प्रमाण नहीं, वह तो प्रत्यक्ष ही है । (क्रमशः)

मधुर-लोक

१. मधुर-लोक अपने पाठकों और पाठिकाओं के जीवन को सुखी, शान्त एवं उन्नत बनाता है।

२. मधुर-लोक मनुष्य के दृष्टिकोण को उदार, स्वभाव को स्निग्ध और चरित्र को पवित्र बनाता है।

३. मधुर-लोक विश्वबन्धुत्व का प्रसारक है। इसके पढ़ने से मनुष्य की उत्तम शक्तियों का विकास और संवर्धन होता है।

४. मधुर-लोक में स्थायी महत्व की रचनाओं का प्रकाशन होता है। सुप्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों का सहयोग मधुर-लोक को प्राप्त है।

५. मधुर-लोक अपने पाठकों और पाठिकाओं के विचारों को अधिक महत्व देता है और प्रति मास उच्च कोटि की विचार सामग्री प्रस्तुत करता है।

६. मधुर-लोक देहली राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत, अध्यापकों, विद्यार्थियों और संसार के सभी मानवतावादियों का अपना, स्वतन्त्र मासिक पत्र है।

७. मधुर-लोक का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित चार रुपये मात्र है, जो कि प्रतिदिन के हिसाब से एक पैसे के लगभग है।

८. क्या आप मधुर-लोक के नियमित ग्राहक हैं? यदि नहीं तो आज ही मनी-आर्डर द्वारा चार रुपये भेजकर मधर-लोक परिवार में अपना नाम जोड़िये और नियमपूर्वक स्वाध्याय-अमृत का पान कीजिये।

एक विशेष निवेदन

९. मधुर-लोक के प्रसार के लिये सभी नगरों में उत्साही वितरकों, प्रचारकों और विक्रेताओं की आवश्यकता है। उचित कमीशन दिया जायेगा।

१ . मधुर-लोक के लिये धन भेजने और इसके

मेरी धर्म-प्रचार-यात्रा

सब आर्य सज्जनों को विदित हो कि मैंने स्वतन्त्र रूप में अपनी धर्म-प्रचार-यात्रा आरम्भ कर रखी है। अप्रैल ६६ ई० में मैंने अजमेर, अहमदाबाद और गान्धी-धाम की यात्रा की। अहमदाबाद में मैं बारह दिन रहा और वहाँ मेरे सोलह व्याख्यान हुए। प्रत्येक व्याख्यान दो-अढ़ाई घंटे तक चलता था। आर्य जनता ने मेरी सेवा को बहुत पसन्द किया। गान्धी-धाम में ज्ञानेन्द्रदेव सूफी नाम के एक तथाकथित आर्य उपदेशक ने आर्य समाज के विरुद्ध बहुत विष उगला, तब मुझे उसका सार्वजनिक रूप में विरोध भी करना पड़ा। आर्य समाज के अधिकारियों ने उसका प्रचार करवाने से भी इन्कार कर दिया।

मेरा यत्न एक-एक नगर में पाँच-पाँच, सात-सात दिन रहने और दोनों समय सत्संग लगाने का होता है। यदि कोई सज्जन वा समाज मुझे धर्म-प्रचार के लिए अपने नगर में बुलाना चाहें तो वे पत्र-व्यवहार करके, तिथियों का निश्चय करने की कृपा करें। जून मास के कार्यक्रम बन चुके हैं। यह भी ध्यान रहे कि मैं किसी संस्था, यज्ञ, यज्ञ-शाला वा पुस्तक आदि के लिये किसी से किसी प्रकार का चन्दा नहीं माँगता, विशेष भोजन या दक्षिणा के लिए झगड़ा नहीं करता और किसी प्रकार की फूट भी नहीं फैलाता। सुशिक्षित एवं धर्म-प्रेमी जनता मेरी सेवा को पसन्द करती है। जो सज्जन प्रचार का उत्तम प्रबन्ध कर सकें, वे ही बुलाने की कृपा करें।

जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"
आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

विषय में पत्र-व्यवहार करने का पता इस प्रकार है—

प्रबन्धक, मधुर-लोक, आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

श्री ज्ञानी

छैल-छबीली कन्या पाठ-शाला और निर्लज्ज हाई स्कूल

१

देहली में कन्याओं की कई बहुत बड़ी-बड़ी शिक्षा संस्थायें हैं। उनमें से एक को हम नया नाम देते हैं, सेवल प्रस्तुत प्रसंग में उल्लेख के लिये। वह है– "छैल-छबीली कन्या पाठ-शाला" वैसे यह एक ऐसा नाम है, जिसका उपयोग आजकल की सभी कन्या पाठशालाओं के लिये बहुत ही आसानी से किया जा सकता है।

देहली में लड़कों की भी बहुत सी बहुत बड़ी-बड़ी शिक्षा संस्थायें हैं। उनमें से एक हाई-स्कूल का उल्लेख हम यहाँ "निर्लज्ज हाई-स्कूल" के रूप में कर रहे हैं। यह भी हम जानते हैं कि आजकल निर्लज्जता की भरमार तो सभी हाई स्कूलों में है।

एक बार 'छैल-छबीली कन्या पाठ-शाला" में पिकनिक अर्थात् वन-विहार का कार्यक्रम बना। ऊंची श्रेणियों की चालीस-पचास छोकरियाँ एक सुनिश्चित योजना के अनुसार अजमेरी द्वार के बाहिर एकत्रित हो गईं। उनके पास हारमोनियम था- तान-पूरे थे, तबले थे, दिलरुवा था, मंजीरे थे, छन-छनाने वाले चिमटे थे और स्टोव एवं चाय, पकौड़ी आदि-आदि खाने-पकाने के सभी बर्तन और सामान भी थे। वे सभी प्राय: अच्छा खाने-पीने वाले घरों की लड़कियाँ थी। उनकी वेश-भूषा बहुत भड़कीली और रंग-बिरंगी थी। नई उठती आयु का प्रभाव तो उन पर था ही, पाठ-शाला के अवकाश तथा वन-विहार की उमंग ने उन सबको पागल-सी बना दिया था।

पाठशाला की तीन-चार विधवा अध्या-पिकायें रखवाली के लिये उनके साथ थीं। पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व उस अलबेली मण्डली में पाठ शाला के एक क्लर्क महोदय कर रहे थे। वे एक चिड़-चिड़े, भोंपू और जनाने स्वभाव के मरियल से नौजवान थे। हरिजनों के जाटव-चर्मकार परि-वार के सुपुत होने की विशेषता के कारण ही उन्हें पाठशाला के सम्पर्क-अधिकारी का पद मिला था। पाठ-शाला में उनको "भाई जी" कहकर पुकारा जाता था। उन विफल प्रेमी जी को हम भी भाई जी कहेंगे।

नियत समय पर पाठ-शाला की बस धड़-धड़ाती हुई आई। छैल-छबीली पाठशाला का लाव-लश्कर उसमें समा गया। बस चली। उसने लश्कर को उस स्थान पर पहुंचा दिया, जो कि ओखली नहीं; अपितु ओखला कहलाता है। सैलानियों के घूमने और नाकामयाब प्रेमियों के डूब मरने का वह प्रसिद्ध स्थान है। जब से यमुना में से वहाँ नहर निकाली गई है, तब से उसकी सुन्दरता में विशेष वृद्धि होती आ रही है। ज्ञानी ने उस स्थान को बहुत बार देखा है। कोई अज्ञात प्रेरणा ज्ञानी को उस दिन भी वहां ले गई थी, जिस दिन का घटना-क्रम यहाँ लिखा जा रहा है। ओखला पहुंच कर पाठ-शाला का दल सैर-सपाटे में जुट गया। बस का ड्राइवर अपनी बस का पहरा देता रहा। आमोद-प्रमोदों में उसने कुछ भी भाग न लिया। मानो वह दल का सदस्य ही न था।

उस "निर्लज्ज हाई स्कूल" के चालीस पचास लड़के भी उस दिन वन-विहार का मूड और कार्य-क्रम बनाकर, उसी समय वहां पधारे,

थे। तीन-चार अध्यापक भी उनके साथ थे; परन्तु यह जानना कठिन था कि कौन अध्यापक है, और कौन छात्र ? सभी सुन्दर जवान थे, सभी मनमौजी, उच्छृंखल, निर्लज्ज और रसिक। अपने फल और अपनो चाये. पकौड़ियों के सामान और बिस्कुट, केक आदि-आदि वे भी अपने साथ लाये थे। वे सब बस में नहीं, दस-बारह तांगों में सवार होकर वहां पधारे थे। तांगेवालों से उन्होंने दिन-दिन भर के दाम ठहरा लिये थे।

नागपुर से पधारे हुए कुछ मित्र भी उस दिन ज्ञानी के साथ थे। ओखले की सैर का उनको भी खास मजा मिला था।

बन-विहार का पहिला आधा काण्ड समाप्त हो गया। थके हुए लड़के एक वृक्ष के नीचे बैठकर अपनी-अपनी थकावट मिटाने लगे। एक टोली चाये पकौड़ी बनाने में जुटी हुई थी। लेटे-बैठे कुछ लड़के फिल्मी गीतों की धुनें गुनगुना रहे थे। उनमें से कुछ नई कहानियों के प्लाट ढूण्ड रहे होंगे, कुछ अपनी-अपनी प्रेम-समस्याओं को उलझा-सुलझा रहे होंगे, कुछ भविष्य के सुपने देख रहे होंगे, कुछ सोते होंगे और कुछ नये शिकार फाँसने की तरकीबें सोच रहे होंगे।

लड़कों से थोड़ी ही दूरी पर, एक दूसरे वृक्ष का आश्रय लेकर पाठशाला का कन्या-दल अपने डेरे डाले पड़ा था। उसके भी सुस्ताने, खाने, पकाने, सोचने, विचारने, शिकार फाँसने आदि-आदि के कार्यक्रम चल रहे थे। एक लड़की ने स्वर भरा। उस मधुर वातावरण में एक मीठा आलाप गूंज उठा। कण्ठ सुरीला और शब्द योजना कौशल पूर्ण थी। हारमोनियम ने उसका साथ दिया। तबला भी ताल देने लगा। रंग जम गया। इधर उधर बिखरी हुई सैलानियों की अन्य मण्डलियों को भी उस गान वादन ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अन्य छोटे बड़े दलों ने पास खिसक कर कन्या-दल को अपने घेरे में ले लिया।

इधर गान समाप्त हुआ। उधर निर्लज्ज हाई स्कूल का एक युवक चिल्ला उठा—"वंस मोर" अर्थात् "एक बार और" समीप बैठे हुए ज्ञानी ने भी उसकी बात सुनी थी। तत्क्षण ही अनिष्ट की एक तीव्र आशंका तब ज्ञानी के मन-मन्दिर में लहरा उठी थी। ज्ञानी को तब यह देखकर और भी अधिक अचंभा हुआ था कि लड़के के अनुरोध को स्वीकार करके, उस गायका ने अपना गीत दोबारा आरम्भ कर दिया था और हारमोनियम एवं तबले वालियों ने भी संगति करने में पूरी पूरी तत्परता दिखाई थी।

उन सबके ऐसा करते ही एक नया उन्माद उस सैर-गाह में फूट पड़ा था। उस उन्माद ने उन लड़कों और लड़कियों के दोनों प्रधान दलों को अपनी पूरी लपेट में समेट लिया था। इस वार एक नई बात यह हुई कि एक-एक करके, लड़कों में से प्रायः सभी ने ताली बजा-बजाकर, लड़की के गीत के साथ ही साथ, ताल देनी भी आरम्भ कर दी और वे उठ उठकर कन्या-मण्डल के साथ सट कर बैठने भी लगे।

धीरे-धीरे उस सम्पूर्ण समारम्भ ने लड़के और लड़कियों के मिले-जुले पंजाबी गिद्धे का-सा रूप धारण कर लिया। फिर तो क्या लड़के ? और क्या लड़कियां ? सभी खुलकर खेलने, गाने, बजाने, ताल देने और हल्ला मचाने लगे। जो कुछ जिसे याद था, वह उसने सुनाया। जो अपनी इच्छा से गाने के लिये न बढ़े, उनको छेड़-छेड़ कर और सता-सताकर उनसे भी कुछ न कुछ गवाया गया। सम्मिलित गान हुए। फिल्मी संवाद गाये गये। कई दौर कव्वालियों के चले। लड़कों ने पंजाबी भंगड़े के करतब दिखलाये। लड़कियां नर्तकियाँ बन गईं। हीर राँझे, शीरों-फहराद, लैला-मजनू और शशी-पुन्नू आदि-आदि सभी प्रेमियों को श्रद्धापूर्वक याद किया गया। फिर लड़के-लड़कियों ने मिलकर, अपने-अपने जोड़े बनाकर अंग्रेजी

नाच-गान का प्रदर्शन भी किया। लतीफे भी सुनाये गये। उस दिन वहाँ हँसी-खुशी के ऐसे फव्वारे छुटे कि ज्ञानी ने वैसे पहिले कभी कहीं देखे ही न थे।

सबका ध्यान गान-वादन में मगन था। तभी छन छनाहट का स्वर छनछना उठा। सबकी निगाहें उधर उठ गईं। देखा कि दो चंचल सुकुमारियों ने जाकर चुपके से लड़का मण्डल के पकौड़ी-प्रसाधन सम्भाल लिये हैं और पकौड़ियाँ तली जा रही हैं। यह चोरी और सीनाजोरी गाने, बजाने और नाचने से भी अधिक जोरदार निकली। दोनों मण्डलियों में नया उत्साह आ गया और नया नशा समा गया।

आनन्द मनाकर थोड़ा सम्भलते ही कन्या-दल और युवक मण्डल दोनों मिलकर एक हो गये। दोनों ने मिलकर चाये पकौड़ियाँ बनाईं, फल छीले, काटे, संवारे। मिलकर ही टोस्टों को सेका और उन पर मक्खन लगाया। दोनों दलों का सम्मिलित सहभोज हुआ। फिर गान-वादन की दूसरी समिलित सभा जमी। फिर मेल-मिलाप के साथ ही सैर-सपाटे के उत्तरार्द्ध के सम्पूर्ण कृत्य सम्पन्न किये गये। बहुत देर तक यमुना के कूल-किनारे लड़के लड़कियों के मुखर हास्य से गूँजते रहे।

धीरे-धीरे दिन का अन्त भी समीप आ गया। लौटने के लिये कन्या मण्डल अपनी बस में जा बैठा। न जाने क्यों? बस ने चलने से साफ इन्कार कर दिया। ड्राइवर बेचारे ने सभी सम्भव उपाय किये। परन्तु वह बस को चला न सका। तब युवक मंडल ने धकेल कर बस को चलाने में अपना सहयोग दिया। सारा परिश्रम बेकार हो गया। बस ने फिर भी चलने से इन्कार ही किया।

एक लड़की ने अनुरोध किया कि लड़का मंडल अपने ताँगे कन्या मंडल को दे दे। लड़का मंडल ने बहुत अधिक अनुनय-विनय के बाद भी इस अनुरोध को स्वीकारा नहीं। हाँ, वह इतना अवश्य मान गया कि यदि कन्या मंडल चाहे तो वह लड़कों के तांगोंमें अधिक सवारियों के रूप में बैठ जाये। ताँगे वालों को अधिक सवारियों का अधिक किराया लड़का मंडल अपनी ओर से दे देगा।

भाई जी ने और विधवा अध्यापिकाओं ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु एक-एक करके सभी कन्याओं ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, क्योंकि उन सबको अपने-अपने घर पहुंचने की बहुत जल्दी हो रही थी। लड़का मंडल की उदारता को उन्होंने सराहनीय वरदान समझा। ताँगे वाले भी हँसते-हँसते मान गये। आठ-आठ दस-दस सवारियाँ लड़के-लड़कियों की मिले-जुले सहयोगी रूप में तांगों में बैठ गईं। तांगे चले। जब नई देहली की भूल-भुलइयों वाली सड़कें पार की जा रही थीं, तब ज्ञानी ने बड़े आश्चर्य से देखा कि मिश्रित सवारियों वाले वे तांगे देहली की ओर न जाकर, नई देहली की विभिन्न सड़कों में बिखर गये।

●

शिशु गान

श्री सूरजसहाय त्रिपाठी "मनोज"
अध्यापक--गवर्न्मेंट हायर सैकेन्डरी स्कूल,
विनय नगर, नई देहली

घड़ी

टिक-टिक, टिक-टिक है यह करती ।
चौबीस घंटे रहती चलती ।।
गोल-गोल सुन्दर घर इसका ।
लगता है कुछ मन्दिर जैसा ।।
इसमें गिनती लिखी हुई है ।
लेकिन बस बारह तक ही है ।।
यह दो पाँव से है चलती ।
घूम-घूम कर सुन्दर लगती ।।
जिनको तुम कहते हो सूइयां ।
वे दोनों हैं इसकी गुइयाँ ।
इनको हाथ कहो या पैर ।।
इन दोनों में बहुत है बैर ।।
दोनों साथ नही ये चलती ।
हमको इनकी चाल है खलती ।।
साठ सैकिन्ड से बना मिनट है ।
बड़ी टांग का यह जीवट है ।।
जिसको हम कहते हैं घंटा ।
वह है साठ मिनट का टंटा ।।
बच्चो ! घंटा कौन बताता ?
छोटी सूई से इसका नाता ।।
जिसको कहते हम दिन रात ।
है चौबीस घंटे की बात ।।
जब हम देते इसको चाबी ।
कुरुर-कुरुर तब गीत यह गाती ।।
जिसकी यह सब बात बताई ।
उसका नाम घड़ी है, भाई ।।
क्यों हैं इसमें बारह बजते ?
सौ दो सौ क्यों नहीं हैं बजते ?
हम पूछेंगे बाबू जी से ।
दादी-मां से, नानी जी से ।।

दिल्ली

दिल्ली भारत की रजधानी ।
ना कोई राजा, ना कोई रानी ।।
राष्ट्रपति जी, मन्त्री, बाबू ।
जग में चलता जिनका जादू ।।
यहीं रहा करते हैं भाई ।
जिनकी करते सभी बड़ाई ।।
राजेन बाबू, नेहरू चाचा ।
लाल बहादुर, सीधा सांचा ।।
थे दिल्ली के रहने वाले ।
नीति वाले, हिम्मत वाले ।।
वह तो है सब बात पुरानी ।
जब रहते थे राजा-रानी ।।
राजा एक युधिष्ठिर जब था ।
तब यह दिल्ली नगर बसा था ।
था यह इन्द्रप्रस्थ कहलाता ।
सबके मन को था यह भाता ।।
यूँ तो बार-बार यह उजड़ा ।
पर दिल्ली का कुछ नहीं बिगड़ा ।।
उधर कुतुब की बड़ी लाट है ।
यह बापू का राज-घाट है ।।
शान्ति-वन यह नेहरू जी का ।
वह मन्दिर है बिरला जी का ।।
यह यमुना, यह लाल किला है ।
देख-देखकर मजा मिला है ।।
वह देखो इंडिया का गेट ।
जिसका बहुत बड़ा है पेट ।।
नई दिल्ली में जब कोई जाता ।
कनाट-प्लेस के चक्कर खाता ।
सुन्दर पार्क हैं बड़े निराले ।
जिनमें बच्चे भोले-भाले ।।
मिल-जुलकर के खेल रहे हैं ।
आपस में कर मेल रहे हैं ।
सड़कें, गलियाँ और बाजार ।
जिनका कोई न पाता पार ।।
जिनमें मरते लोग कुचल कर ।
उनमें चलना सम्भल-सम्भलकर ।।

बन्नी चली पिया के देश

लेखक—श्री जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

मुंह में दान्त न पेट में आँत। बवाइयों से भरे और धूल कीचड़ में लत पत पाँव। सिर के बाल खिचड़ी। खश खसी दाढ़ी। मैले, फटे कपड़े। धंसी धंसी आंखें। झुर्रियों भरा मुँह। पेशा तेल की पकौड़ी फरोशी। ऐसे हैं वे लाला सुन्दरदास जो कि अपने क्षेत्र में सुन्दरा कहे जाते हैं। काली टोपी, मैली, तेल सनी उनके सिर पर ऐसी जंचती है, जैसी उलटी धरी काली हांड़ी।

जवानी के शुरू में सुन्दरदास का विवाह हुआ था। परन्तु किस्मत की मार। तीन साल बाद घरवाली चल बसी। दूसरी पत्नी सुन्दरदास को एक विधवा आश्रम में मिली थी। लगभग पन्द्रह सौ रुपये खर्च बैठा था। इसमें जेवर, कपड़े, हवन शवन और फूल बताशे आदि का खर्च तो केवल पचास साठ रुपये मात्र ही था। वह विवाह के तीन चार मास बाद घर का सारा लटा पटा लेकर भाग गई थी। फिर उसका कुछ भी पता न चला। नाम था उसका चमेली।

सुन्दरदास ने कस्बा छोड़ा। शहर में जा बसा। तब हुई तीसरी शादी। एक दूधवाले के सहयोग से। बिना किसी विधि विधान के। उसकी समाप्ति पर चौथी। फिर पाँचवीं शादी भी हुई। पहिली पांच शादियाँ सुन्दरदास के जीवन में फ्रान्टियर मेल की तरह से धड़ धड़ाती हुई आई। और तेजी से यह जा, वह जा। रेल गाड़ी के डिब्बों की तरह सामने से निकलीं और दृष्टि से ओझल हो गईं। छटी पत्नी से सुन्दरदास को सिवाये सन्तान के सभी सुख मिले थे। छटी शादी का संक्रमण काल रहा था अठ्ठारह वर्ष तक। यह रजाई में आग लगने से जलकर मरी थी और सुन्दर की अवस्था थी तब साठ की।

छटी पत्नी की मौत पर सुन्दरदास ने जो रुदन किया था, उसे देखकर कई भावुक कवियों ने प्रेम काव्य रचे थे। गहरी काट करने वाला था उसका रुदन। एक था भतीजा, मुँह बोला, सुन्दरदास का, अर्ध शिक्षित, बेकार, वाचाल पर समझदार। बिना किसी स्वार्थ के उस भतीजे के शुभ प्रयत्न से आज आठ वर्ष की कन्या की मां का विवाह हो रहा है, सूरज कुण्ड की घटवालन द्रोपदी के साथ सुन्दरदास का, शास्त्र की विधि के अनुसार। विवाह से आशा है सुन्दरदास को सन्तान और भावी मंगल विधान की। सप्तपदी के प्रसंग में छोटी आयु वाले पुरोहित जी ने समझा कर कहा—'चलो माता जी! पग उठाओ।" उधर उपस्थित महिला मंडल का गीत मधुर स्वर में गूंज उठा—"बन्नी चली पिया के देश।"

शंका समाधान

लेखक—श्री पण्डित विजय कुमार पुजारी

जब श्री महात्मा गान्धी जी यरवदा जेल में थे, तब बाहिर से बहुत से पत्र उनकी सेवा में पहुंचा करते थे। कुछ लोग अपनी-अपनी शंकायें लिखकर भेजा करते थे और श्री गांधीजी से समाधान मांगा करते थे। उन दिनों सरदार वल्लभ भाई पटेल भी यरवदा जेल में ही थे। एक लेखक ने अपने पत्र में लिखा था—

"जब हम जमीन पर चलते हैं, तब अनजान में ही बहुत से जीव जन्तु हमारे पाँव के नीचे दबकर मर जाते है। इस तरह से जो हिंसा होती है, उसे किस प्रकार टाला जा सकता है?"

श्री गांधी जी ने वह पत्र सरदार पटेल को दिखाया। पढ़कर सरदार को हंसी आ गई। बोले—

"लिख दो कि चलते समय अपने पांव सिर पर रख लिया करें।"

मधुर बाल-सभा

मधुर-बाल-सभा के सदस्यों के लिये मुफ्त

- एक रुपये की पुस्तकों की भेंट।
- आपके चित्र का प्रकाशन।
- आपके नाम और पते का प्रकाशन।
- सदस्यता का प्रमाण पत्र।
- पत्र-मित्र सम्बन्ध।
- धार्मिक परीक्षाओं में प्रवेश।
- रचनाओं का संशोधन और प्रकाशन आदि।

अपने पुत्रों और पुत्रियों को, छात्र-छात्राओं को तथा आर्यकुमार सभा के सभी सदस्यों को प्रेरित करके आज ही मधुर-बाल-सभा का सदस्य बनाइये।

मधुर-बाल-सभा के नियम

१. मधुर-लोक की मधुर-बाल-सभा का वार्षिक सदस्यता शुल्क पाँच रुपये है, जो मनि-आर्डर से भेजना चाहिये। सदस्यता के आवेदन के साथ पाँच रुपये मनि-आर्डर द्वारा भेजकर अठ्ठारह वर्ष से कम आयु के सभी लड़के और लड़कियाँ मधुर-बाल-सभा के सदस्य बन सकते हैं।

२. मधुर-बाल-सभा के सभी सदस्यों को उनके सदस्यता-काल में मधुर-लोक नियम पूर्वक मिलेगा तथा एक रुपये मूल्य की उत्तम पुस्तकें भी उनको प्रति वर्ष बिना मूल्य भेंट की जायेंगी।

३. मधुर-बाल-सभा के सभी सदस्यों के फोटो चित्र, नाम और पूरे पते प्रति वर्ष एक-एक बार मधुर लोक में छपेंगे।

४. मधुर-बाल-सभा के सदस्यों की बाल-रचनाओं का संशोधन और प्रकाशन मधुर-लोक द्वारा होगा एवं उनके उचित प्रश्नों के उचित उत्तर भी प्रकाशित किये जायेंगे।

५. मधुर-बाल-सभा के सदस्यों के लिये बालोपयोगी रचनाओं का विशेष प्रकाशन भी मधुर लोक में होगा।

६. मधुर-बाल-सभा के सभी सदस्यों को सदस्यता के सुन्दर प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे जिनके आधार पर सभी सदस्य अपने पत्र-मित्रों की वृद्धि कर सकेंगे और मधुर-लोक द्वारा आयोजित धार्मिक परीक्षाओं में भाग ले सकेंगे। मधुर-बाल-सभा द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में भाग ले सकेंगे और मधुर-प्रकाशन के सभी प्रकाशनों को रियायती मूल्य में प्राप्त कर सकेंगे।

७. मधुर-बाल-सभा के सदस्यों को उचित है कि उत्तर के लिये डाक टिकट अथवा जवाबी कार्ड अवश्य भेजें। पत्र-व्यवहार और सदस्यता शुल्क तथा आवेदन-पत्र भेजने का पता इस प्रकार है—

सम्पादक, मधुर-लोक [मधुर बाल-सभा विभाग]
आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

मधुर-बाल-सभा का सदस्यता-पत्र

(आवेदन-पत्र सादे कागज पर भी भेज सकते हैं)

श्रीमान् सम्पादक जी मधुर-लोक
[मधुर-बाल-सभा विभाग देहली-६]

श्रीमान् जी ! नमस्ते, मैंने मधुर-बाल-सभा के नियम पढ़कर समझ लिये हैं। मैं उनको स्वीकार करता हूँ। करती हूँ। मेरा नाम मधुर-बाल सभा के सदस्यों में लिख लें। प्रथम वर्ष का सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनी आर्डर से। पोस्टल आर्डर से भेजा है।

ता०.......... हस्ताक्षर..........

पूरा नाम..........

पूरा पता..........

डाकखाना..........

जिला..........

प्रदेश..........

नई योजना ! | नई घोषणा !!

'मधुर-लोक' मुफ्त मिलेगा

ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता । शीघ्रता कीजिये !

१—जो सज्जन 'मधुर-लोक' के पाँच ग्राहक बनाकर उनका वार्षिक मूल्य बीस रुपये भिजवा देंगे, उनको एक वर्ष तक 'मधुर-लोक' मुफ्त मिलेगा ।

२—जो नीचे लिखी पुस्तकों में से कम से कम पन्द्रह रुपये की पुस्तकें एक साथ मंगवायेंगे, उनको 'मधुर-लोक' एक वर्ष तक बिना मूल्य मिलेगा । पुस्तकों का मूल्य मनि-आर्डर से आना आवश्यक है । डाक व्यय माफ होगा । जो पुस्तकें समाप्त हो जायेंगी, वे नहीं भेजी जा सकेंगी । सभी पुस्तकें नई और अच्छी हालत में हैं । अधिक प्रतियाँ मंगवाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।

पुस्तक	मूल्य
सचित्र रस-शास्त्र	१२.००
वैदिक-प्रवचन	२.२५
ईश्वर-दर्शन	१.५०
दृष्टान्त-मंजरी	२.००
यमनियम-प्रदीप	१.५०
उर्मिल-मंगल	०.५०
मातृ-मन्दिर	०.५०
शिवा-बावनी	०.७५
महर्षि-दयानन्द	०.५०
कलियात आर्य मुसाफिर	६.००
श्रुति-सुधा	०.२०
वैदिक-प्रार्थना	१.५०
वैदिक-युद्धवाद	१.००
वैदिक-प्रवचन माधुरी	१.००
विचित्र जीवन १०१	८.००
अपने-अपने मुंह से	२.००
कर्म और भोग	१.००
धर्मवीर पं० लेखराम	१.२५
मेजिनी, (महात्मा)	१.००
महात्मा, मार्टिन लूथर	१.००
आर्य शिक्षावली	०.६३
कृषि-विज्ञान	०.७५
संध्या माता	०.५०
चलते पुर्जे	२.००
जीवन में खेलो	२.००
विदेशों में एक साल	२.२५
मनोविज्ञान शिव संकल्प	३.५०
वैदिक-गीता	२.५०
संस्कृतांकुर	१.२५
छात्रोपयोगी विचारमाला	०.२५
वैदिक-धर्म-परिचय	०-६५
ब्रह्मचर्य-साधन के १० भाग	४.४५
स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	१.२५
संस्कृत वाङ्मयका सं० परिचय	०.५०
हम संस्कृत क्यों पढ़े ?	०.३७
हितैषी-गीता	०.७५
श्रुति सक्ति शती	०.१०
आसनों के व्यायाम	०.६०
नित्यकर्म विधि	०.२५
वैदिक मनुस्मृति	४.५०
आर्य सिद्धान्त दीप	१.२५
बनो लाल अनमोल	२.००
ओंकार भजन माला प्रति सैकड़ा	६.००
आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००
मधुर सामान्य-ज्ञान	०.७५
वेद और विज्ञान	०.७०
स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा	०.२०
हित की बातें	०.१५
दन्त-रक्षा	०.२०
बन लो हीरे	१.००
ब्रह्मचर्यामृत	०.२०
वैदिक-पथ	१.२५
आत्मानन्द लेखमाला	१.२५
मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.२५
मधुर हिन्दी निबन्ध माला	०.८०
बाल शिष्टाचार	१.५०
विरजानन्द चरित	१.५०
वैदिक विवाह पद्धति	०.८०
भोज-प्रबन्ध	२.५०
चाणक्य-नीति	१.२५
विदुर-नीति	१.५०
पुष्पावली	०.५०
उपदेश-मंजरी	२.५०
सत्यार्थ प्रकाश	२.५०
कर्त्तव्य-दर्पण	१.२५
रण-भेरी	०.२५

मधुर-प्रकाशन, आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" की कुछ पुस्तकें

अपने-अपने बच्चों और स्कूलों की धर्म-शिक्षा का प्रबन्ध, नई और सरस योजना के अनुसार इस वर्ष के आरम्भ में ही कीजिये।

वैदिक प्रवचन

सत्संगों, दैनिक-पाठ और व्याख्यानदाताओं के काम की सजिल्द पुस्तक। इसकी सहायता से व्याख्यान-कला का अभ्यास भी हो सकता है। आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं श्रेणियों में धर्म-शिक्षा के लिये भी वह उत्तम है। मू० २.२५ प्रति०

वैदिक प्रार्थना

यह सुप्रसिद्ध प्रार्थना-पुस्तक है। इसकी सहायता से प्रार्थना-योग का अनुष्ठान भी आसानी से हो सकता है। दैनिक-पाठ तथा स्वाध्याय के लिये और सातवीं से ग्यारहवीं श्रेणियों तक छात्र-छात्राओं के लिये उपयोगी दूसरा संस्करण। सजिल्द। मू० १.५०

शिक्षा-निदेशालय देहली राज्य [शिक्षा-विभाग देहली राज्य] ने "वैदिक-प्रवचन" और "वैदिक-प्रार्थना' पुस्तकों को स्कूलों के पुस्तकालयों और पुरस्कारों के लिये स्वीकार कर रखा है।

यमनियम प्रदीप

अर्थात् सदाचार-चन्द्रिका

दूसरा संस्करण तैयार है। सदाचार के सभी प्रधान प्रसंगों का प्रतिपादन इस पुस्तक में सुबोध रीति से किया गया है। पाँचवीं से आठवीं तक के बालकों के लिये बहुत उत्तम है। मू० १.५० प्रति।

ईश्वर-दर्शन

अर्थात् इन्द्रोपनिषद्

ईश्वर-भक्ति की एक नई पुस्तक। वेद-कथाओं के लिये भी बहुत उत्तम है। यह सुयोग्य लेखक के कई वर्षों के चिन्तन का प्रतिफल है। इसमें ऋग्वेद के एक सूक्त की व्याख्या है। मूल्य १.५० प्रति।

उर्मिल मंगल

यह तीसरी से आठवीं श्रेणी तक की बालिकाओं और महिलाओं के लिये अधिक उत्तम है। इस कविता-बद्ध कथा को सभी प्रेम से पढ़ते हैं। मू० ०.५०

मातृ मन्दिर

इसमें ऋग्वेद के मातृ-सूक्त का विस्तृत व्याख्यान है। कन्या-पाठशालाओं, महिलाओं और स्त्री आर्य समाजों के लिये यह नई उत्तम पुस्तक है। मूल्य ०.५० प्रति।

श्रुति-सुधा

वेदों के तीन सौ छियासठ वचन। अर्थ सहित। मूल्य ०.२० प्रति, छः प्रतियाँ १.००।

दृष्टान्त-मंजरी

इतिहास के एक सौ चौदह दृष्टान्त। सजिल्द पुस्तक। मू० २.०० प्रति।

शिवा-बावनी

कविवर भूषण की रचना। सटीक। ०.७५।

महर्षि-दयानन्द

अखिलेश कवि की रचना। स्टीक। ०.५०।

नोट—डाक व्यय पृथक् होगा। अपने आर्य समाजों में बिक्री के लिये मंगायें। व्यापारी भाई पत्र-व्यवहार करें। अपना पता साफ लिखें वी० पी० से सब प्रकार की पुस्तकें मंगवाने का पता—

मधुर-प्रकाशन, आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक ने श्री महामाया प्रिंटर्स, देहली में छपवाकर मधुर-लोक कार्यालय, सीताराम बाजार, देहली से प्रकाशित किया।

मधुर-लोक

सदाचार, वेदवाद,
मनोविज्ञान और नव-निर्माण
का
मासिक पत्र

वर्ष १ अंक ६

जुलाई, १९६६ ई०

देश में वार्षिक मूल्य चार रुपये
दो वर्ष का मूल्य सात रुपये
तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपये
एक प्रति ४० पैसे
विदेश में दस शिलिंग वार्षिक

संचालक और सम्पादक
राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक कार्यालय
आर्य समाज मन्दिर
सीताराम बाजार, देहली-६

निर्ऋति माता

नमः सुते निर्ऋते तिग्म तेजोऽयसमयं विचृत् बन्धमेतम्।
यमेन यम्याऽधि संविदाना उत्तमे नाके अधि आरोह एनम्॥

यजु० १२। ६२

(निर्ऋत) हे घोर विपत्ते ! (ते) तुझे (नम) नमस्कार, (सु) तेरा स्वागत है। तेरा (तिग्म) तेज (तेजः) तीखापन, पैनापन (एतम्) इस (अयसमयम्) लोहे जैसे दृढ़ (बन्धम्) मोह के बन्धन को (विचृत्) काट देता है। (यमेन) नियम से, सिद्धान्त से (यम्या) अनुभूति को (अधिसंविदाना) प्राप्त करती हुई, प्राप्त करके तू (एनम्) इस जीव को, मुझको (उत्तमे) सर्वश्रेष्ठ (नाके) सुखमय स्थान में, स्वर्ग में, (अधि आरोह) ले चल।

हे घोर विपत्ते ! मैं तुझे नमस्कार करता हूं। मैं तेरा स्वागत करता हूं। तेरी तीखी धार तो लोहे से भी अधिक सुदृढ़ मोह-बन्धन को भी काट देती है। जब तू सिद्धान्त पक्ष से आगे बढ़कर मनुष्य के व्यवहार का रूप धारण करती और उसकी अनुभूति का विषय बन जाती है, तब तू इस प्राणी को सुख की सर्वश्रेष्ठ अवस्था में पहुंचा देती है।

"रहिमन" विपदा तू भली, जो थोड़ दिन होय।
हित अनहित या जगत में बूझ पड़े सब कोय।

एवमेव—

गर्दिशे-अय्याम ! तेरा शुक्रिया
हमने हर पहलू से दुनियां देख ली॥

❀ ओ३म् ❀
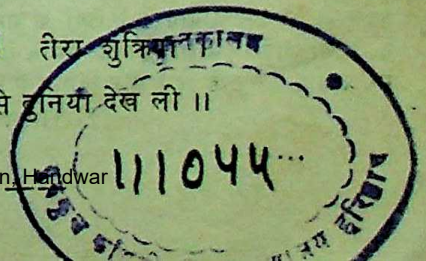
मधुर-लोक

जुलाई, सन् १९६६ ई०

आर्य–आयोग

नौ वष के बाद आर्य समाज की स्थापना को एक-सौ वर्ष पूरे हो जायेंगे। राष्ट्रों और जातियों के इतिहास में एक सौ वर्ष कुछ अधिक नहीं है; परन्तु व्यक्तियों के जीवन में तो घड़ी-पल का महत्व भी बहुत अधिक है। विगत इक्यानवे वर्षों में आर्य समाज ने क्या किया? क्या खोया? क्या पाया? एवं अब वह क्या करे? इन बातों का लेखा जोखा हमें अब कर लेना चाहिए। आर्य समाज सभी अवैदिक मत वादियों की जांच पड़ताल और आलोचना करता रहता है। इससे उन-उन का लाभ और सुधार होता है, परन्तु आर्यसमाज की जांच-पड़ताल और आलोचना करने वाला कोई नहीं है। यहां आत्म-निरीक्षण की भावना भी विलुप्त हो गई है। इसलिए आर्य समाज के स्वस्थ-विकास में बड़ी कठिनाई हो रही हैं। यूँ भी कह सकते हैं कि दूसरों को जगा कर आर्य समाज सो गया है। आज आर्यसामाजिक जीवन में आपा-धापी है, अहमन्यता है, आपस की फूट है, मुकदमे बाजियां भी हैं।

कुछ प्रदेशों में नाममात्र की ही आर्य प्रतिनिधि सभायें है, कुछ में वे भी नहीं। कुछ सभायें पहले कुछ काम करती थीं, अब वे आपस के झगड़ों में नष्ट हो रहीं है। अभी तो पूरे भारत की भी बड़ी आर्यसभा नहीं बनी, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बड़ी सभा की क्या कथा? इसी प्रकार वेद-भाष्य अभी तो हिन्दी में भी नहीं बना, अन्य भाषाओं की क्या बात? आर्य समाज की स्थापना विदेशी शासन के समय हुई थी।

स्वतन्त्र-भारत के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन अभी तक भी आर्य सामाजिक प्रगलियों में किये नहीं गये। भारतीय राज्यों के भाषावार गठन के फेर-बदल के अनुसार आर्य सामाजिक संगठनों को दोबारा सुव्यवस्थित करने का आवश्यक कार्य भी स्थिति-पालक लोगों द्वारा उपेक्षित किया जा रहा है। सस्थावाद का दानव आर्य समाज के सम्पूर्ण रस को चूस रहा है। इस बात की परमावश्यकता है कि एक सर्वसत्तासम्पन्न आर्य-आयोग का गठन शीघ्राति-शीघ्र किया जाये और आर्य सामाजिक जगत् की सम्पूर्ण प्रगतियों को उस आयोग के निर्णयों के अनुसार नये साँचे में ढाला जाये। आशा है आर्य समाज के सभी हितैषी मेरे प्रस्ताव पर ठण्डे दिल और दिमाग से विचार करेंगे।

राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक का व्यवहार धर्म

१. मधुर-लोक का प्रकाशन प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में होता है। यदि किसी ग्राहक को महीने की बीस तारीख तक भी अंक न मिले, तो सूचना मिलने पर दूसरा अंक भेजा जायेगा।

२. मधुर-लोक का एक वर्ष का मूल्य चार रुपए, दो वर्ष का मूल्य सात रुपए और तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपए है।

'मधुर-लोक' के आजीवन ग्राहक

३. जो सज्जन एक सौ रुपये भेजकर मधुर-लोक के ग्राहक बनेंगे, उनको 'मधुर-लोक' के सभी अंक और विशेष-अंक, तब तक मिलते रहेंगे, जब तक कि 'मधुर-लोक' निकलता रहेगा। यदि किसी कारण-वश 'मधुर-लोक' दस वर्ष से पहिले ही बन्द हो जायेगा, तो आजीवन सदस्यों को उनका पूरा धन लौटा दिया जायेगा।

४. 'मधुर-लोक' में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि सामग्री—सम्पादक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये। लेखों के सम्पादन, संशोधन और प्रकाशन या अप्रकाशन का अधिकार सम्पादक को है।

५. प्रबन्ध विषयक पत्र, वार्षिक मूल्य तथा विज्ञापन आदि का धन—प्रबन्धक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये।

६. उत्तर के लिए जवाबी कार्ड या पत्र भेजिये।

७. मधुर-लोक में विज्ञापन छपवाने की दर—

एक पृष्ठ ४०.००	चौथाई पृष्ठ १५.००
आधा पृष्ठ २५.००	पृष्ठ का आठवां भाग १०.००

८. वर, वधू, उपदेशक, पुरोहित, अध्यापक या चपरासी आदि की आवश्यकता के विज्ञापन का शुल्क—५.००

९. विशेष अंकों की विज्ञापन दर पृथक् होगी।

१०. विशेष बातों का निश्चय पत्र-व्यवहार से कीजिए।

निवेदक :—प्रबन्धक, मधुर-लोक

आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

हम तो वैदिक धर्मी हैं

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

नकिर्देवा इनीमसि, न क्यायोपयामसि।
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि॥

ऋ० १०।१३।४७

हे भगवन्! (देवाः) हम उपासक लोग (नकिः) न तो (इनीमसि) हिंसा करते हैं, और (नकि) न ही (आयोपयामसि) फूट फैलाते हैं, हम तो (मन्त्र श्रुत्यम्) वैदिक आदेशों के अनुसार (चरामसि) आचरण करते हैं।

न तो हम किसी का दिल दुखाते हैं और न ही हम संसार में फूट फैलाते हैं। हम तो वैदिक धर्मी हैं।

हे दयानिधे! हम तो उपासक लोग हैं। हम आपको पाना चाहते हैं। आपसे एक क्षण के लिए भी विलग होना हम नहीं चाहतें। हम पर ऐसी कृपा करो, जिससे आपकी उपासना में हमारा अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, बढ़ता ही जाये।

भगवन्! हमने अहिंसा-मार्ग का अवलम्बन किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा, किसी भी प्रकार की हिंसा हम नहीं करतें। न तो हम किसी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करतें हैं। न किसी को सताते हैं। न किसी का दिल दुखाते हैं। न ही हम प्राणियों का घात-प्रतिघात करते हैं। हे प्राणाधार! हम तो प्राणि-मात्र के प्रति आत्मवत् व्यवहार करते हैं। जो कुछ हम अपने लिये शुभ समझते हैं, वही दूसरों के लिए भी शुभ समझते हैं।

हे सच्चिदानन्द स्वरूप! हम तो आप ही के प्रेमपन्थ का प्रचार करते हैं। किसी प्रकार के भेद-भाव से प्रचारक हम नहीं हैं। किसी प्रकार की फूट हम नहीं फैलाते। वर्गवाद के झगड़े-बखेड़े हम नहीं फैलाते। मजहब के नाम पर, स्वार्थ के आधार पर, अथवा संकीर्णतावश, भाई को भाई से लड़ाने और मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनाने वाली किसी भी पद्धति या योजना में हमें कुछ भी विश्वास नहीं हैं।

हम तो वैदिक धर्मी हैं। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना, हम अपना परम-धर्म समझते हैं। जड़-पूजक और मनुष्य-पूजक हम नहीं हैं। हम तो एक ईश्वर-वाद के विश्वासी हैं। एक मात्र आपके ही भक्त और उपासक हैं।

हे गुरुओं के भी गुरो! हे ज्ञान-पुंज! हे सब सत्य विद्याओं के आदिम-उपदेशक! हमें बल दो। हमें ज्ञान दो। हमें सब प्रकार का उत्तम-ऐश्वर्य प्रदान करो। जिससे हम भी अपने पूर्वज ऋषि-मुनि-महात्माओं के चरण-चिन्हों पर चलने में समर्थ हो सके। हम भी आपकी महिमा के गीत गाते और आनन्द के तार बजाते हुए अपने जीवन के चरम-लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

मनुष्य का गौरव

लेखक—विश्वकवि श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर
अनुवादक श्री बलरामप्रसाद "अनंत" लखनऊ

हे धरित्री! तू इतनी कृपण किस लिए है? कितना प्रयास करते हैं हम तब जाकर कहीं धान्य प्राप्त कर पाते हैं। यदि तुझे देना ही है तो प्रसन्न होकर हँस-हँस कर प्रदान कर। हमारे माथे का पसीना ठेठ पैरों तक क्यों लाती है? बिना खोदे धान्य देने में तेरा क्या जाता है?

मन्द स्मित करते हुए धरित्री ने मनुष्य से कहा—'ऐसा करने पर मेरा गौरव तो जरा बढ़ जायेगा, पर तेरा गौरव तो सदा के लिए विलीन हो जायेगा।

क्या मुक्त आत्मायें स्वेच्छा से संसार में जन्म ले सकती हैं ?

लेखक—श्री चखनलाल वेदार्थी, एम० ए०, आगरा

गीता वेदों की एक प्रबल विरोधी पुस्तक है। फिर भी, आश्चर्य है कि कुछ आर्य विद्वान् उसको वेद समर्थक सिद्ध करने का प्रयत्न जब तब किया करते हैं। वे गीता में प्रतिपादित वेद-विरोधी मान्यताओं के असंगत और तर्कहीन अर्थ करके लोगों को भ्रम में डालते हैं, और इस प्रकार उनको वेद मार्ग से पथभ्रष्ट भी करते रहते हैं।

सारी गीता में श्री कृष्ण को परमात्मा, पर ब्रह्म, संसार का कर्त्ता, इत्यादि सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विसृभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥
१०।४२

अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है ? मैं तो संपूर्ण जगत को एक अंश मात्र से ही धारण करके स्थित हूं।

इस स्पष्ट कथन पर भी ऐसे लोग कहते हैं कि श्री कृष्ण ईश्वर नहीं, वरन जीवन-मुक्त थे और जीवन-मुक्त आत्माएँ अपने को परमात्मा स्वरूप से कथन कर सकती हैं, तथा ससार में अपनी स्वेच्छा से शरीर धारण भी कर सकती हैं। गीता में श्री कृष्ण का परमात्म स्वरूप से वर्णन नहीं है, अपितु उनका मुक्त आत्मा के रूप में उनकी लीलाओं का कथन है। इस प्रकार के कथन में उनके विचार से कोई दोष नहीं है। इसीलिये वे कहते हैं कि गीता वेद-विरोधी पुस्तक नहीं है। इसके विपरीत वेद के सिद्धान्तों का ही उसमें बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है।

इस सन्दर्भ में निवेदन है कि परमात्मा तो सर्व-व्यापक और सर्व शक्तिमान् हैं। उसे इस बात की आवश्यकता नहीं कि कोई उसका प्रतिनिधि, पुत्र अथवा पैगम्बर हो। मुक्त आत्माओं को केवल आनन्द स्वरूप परमात्मा के आनन्द को ही उपलब्धि होती है। ईश्वर की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का अधिकार उनको नहीं मिलता।

जगत व्यापार वर्जम् ॥
(वेदान्त दर्शन ४।४।१७)

किसी आत्मा का शरीर धारण करना यह भी ईश्वर की व्यवस्था के अन्तर्गत है। इसलिए मुक्त आत्मायें स्वेच्छा से शरीर धारण नहीं कर सकतीं।

मुक्त आत्माएँ तो अमैथुनी सृष्टि में ही शरीर धारण कर सकती हैं। यही व्यवस्था परमात्मा की है। वे माता के गर्भ से नहीं आ सकती। माता के गर्भ से तो साधारण मनुष्य जन्म लेते हैं, श्री कृष्ण ने माता के गर्भ से जन्म लिया, इससे सिद्ध होता है कि वे जीवन मुक्त नहीं, अपितु साधारण मनुष्य थे। हाँ, सिद्धान्ततः ऐसा मानने में कोई दोष नहीं कि वे अपने जीवनकाल में जीवन-मुक्त हो गये हों, जैसे महर्षि दयानन्द जी ने अपने तप, त्याग और ब्रह्मचर्य से ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लिया था। अन्य धर्मात्माजन भी इसी प्रकार इसी जन्म में मोक्ष-पद को प्राप्त कर सकते हैं।

परमात्मा यदि मुक्त जीवात्माओं को इस प्रकार संसार के व्यापार में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रदान कर दे, तब तो संसार में बहुत से ईश्वर हो जायेंगे। परमात्मा के सम्बन्ध में ऐसा कहना कि वह संसार की रचना में जीवात्माओं की सहायता लेता है, उसकी महिमा को कम करना है। वह स्वयंभू है, अपनी शक्ति से ही सारा जगद् व्यापार चलाता है, जो लोग ईश्वर को एकदेशी मानते हैं, उनकी धर्म पुस्तकों में ईश्वर के प्रतिनिधियों की, बेटों की, नबियों की, पैगम्बरों की तथा दूतों की आवश्यकता हो सकती है। वेदों में वर्णित ईश्वर को इन सबकी आवश्यकता नहीं।

इसलिये जो लोग गीता के श्रीकृष्ण को मुक्त आत्मा मानते हैं, वे भूल करते हैं।

श्री ज्ञानी

यादगारी पत्थर

१. संसार में ऐसे बहुत से पत्थर पाये जाते हैं, जो इस राजा या उस रानी की यादगार हैं। कोहेनूर प्रभृति हीरों और सम्राट् अशोक आदि के शिलालेखों का समावेश भी यादगारी पत्थरों में ही होता है। पुरातत्ववेत्ता गण शिला-लेखों और पाषाण-खण्डों की सहायता से विश्व-इतिहास की टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने और अज्ञात घटनाओं का पता लगाने का प्रयास पिछले कई सौ वर्ष से कर रहे हैं। समय-समय पर ज्ञानी ने भारत के बहुत से अजायब-घर और पुरातत्व-सँग्रहालय देखे हैं; और उनमें यह भी देखा है कि वहाँ बहुत-सी मूर्त्तियाँ, या मूर्त्तियों के टूटे-फूटे टुकड़े, अथवा तथाकथित पाषाण-युग के पाषाण, या ऐतिहासिक महलों, मन्दिरों, भवनों, किलों, मकबरों आदि-आदि के भग्नावशेष बड़े-बड़े दालानों और सुन्दर सुन्दर मकानों में सजाकर रखे जाते हैं।

अपने बड़े देश में जीवित लोगों को मकान चाहे न मिलें, यादगारी पत्थरों के लिये मकानों की यहां कमी नहीं है।

२. बड़े बड़े नामी विद्वान् दूर-दूर से उन भग्नावशेषों को देखने के लिये पधारा करते हैं, कुछ वर्षों से मकानों, मन्दिरों, पुलों और सरकारी इमारतों के "आधार-शिला-संस्थापन-समारोह बड़ी धूमधाम से होते हुए देखने में आ रहे हैं। उनमें होता यह है कि एक पत्थर तो बुनियाद में गाड़ दिया जाता है, और एक दूसरे पत्थर पर आधार-शिला-धर्त्ता का नाम-धाम आदि खुदवा कर, प्रदर्शन एवं विज्ञापनार्थ दीवार पर जड़ दिया जाता है। ईश्वर झूठ न बुलवाये, घुमक्कड़पन करते-करते ज्ञानी ने कई हजार यादगारी-पत्थर देखे हैं। अपनी जानकारी के आधार पर ज्ञानी यह भी घोषणा करता है कि नये यादगारी पत्थर अधिक चिकने और सुन्दर होते हैं। हां, नये पत्थर मजबूत कम होते हैं। शिला-लेखों के लिये अब संगे मरमर और शीशे के अक्षरों का प्रचलन हो गया है। ये दोनों ही क्रूर काल के आघातों को सहने में अत्यन्त असमर्थ हैं।

३. एक दिन ज्ञानी ने सोचा कि यदि शिलालेखों की स्थापना का यही क्रम चलता रहा, तो भूगर्भ में वर्तमान सम्पूर्ण संगे मरमर का भण्डार कितने वर्षों तक चल सकेगा? परन्तु ठीक समाधान न मिला। क्योंकि भूगर्भ में सुरक्षित संगे मरमर का पूरा और विश्वस्त ब्यौरा प्राप्त न हो सका। हां, यह अवश्य जाना कि शाहजहाँ एक बुद्धिमान् बादशाह था। उसने बुद्धिमानी से काम लेकर, पहिले ही ताजमहल बनवा डाला। यदि संगे मरमर का आजकल जैसा दुरुपयोग कुछ सौ साल पहले आरम्भ हो जाता, तब तो बेचारा शाहजहां संगे मरमर के बिना टापता ही रह जाता। फिर उसे शायद चूने-गारे की ही शरण लेनी पड़ती, या लाल, पीले, काले पत्थरों से काम लेना पड़ता, या गरीबों की मुहब्बत के मजाक का विचार ही वह त्याग देता।

इक शहन्शाह ने दौलत का सहारा लेकर।
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक॥

४. यह भी हो सकता है कि शाहजहां ही सीमेंट विद्या का आविष्कार करवा देता या फिर आगरे के ताजमहल को बनाने के लिए वह प्लास्टिक अथवा सिलो लाइड का आविष्कार करवाता। या रबड़ का ताजमहल बनवाता। हां, रबड़ का। लगे हाथों यह भी निवेदन है कि प्राचीन लिखावटें बहुत भद्दी होती थीं। जो कोई इस बात में शक करे, वह जाकर किसी नजदीकी अजायब-घर मकबरे या संग्रहालय में देख ले।

५. ज्ञानी मनमौजी पन के वश में होकर कई बार ईसाइयों के कब्र स्थानों में जा चुका है। वहाँ इसने कब्रों पर लगे हुए बहुत सुन्दर-सुन्दर शिलालेख भी देखे हैं। उन पर बहुत उत्तम शिक्षाओं से

परिपूर्ण आदर्श-वाक्य, जो लिखे-खुदे रहते हैं, पढ़े हैं। भला ऐसा मूर्ख कौन है जो वैसी सुन्दर कब्रों को देखकर भी मरना न चाहे ? शायद सभी अमीर ईसाइयों की कब्रों पर सुन्दर-सुन्दर शिला लेख जड़वाने का एक रिवाज ही चल पड़ा है। यह भी हो सकता है कि कब्रों पर सुन्दर शिला-लेख लगाने का कोई विधान ईसाई-शास्त्रों में मौजूद हो। यदि ऐसा है, तो गरीब ईसाई उसका पालन न कर सकेंगे।

६. भारत में सरकारी और गैर सरकारी उपायों से ईसाईयों की तायदाद तो बढ़ाई जा रही है; परन्तु मुसलमानों के बराबर आने में तो उन्हें बहुत देर लगेगी। कोई ऐसी योजना भी कभी बन सकती है, जिससे ईसाइयों और मुहम्मदियों की तायदाद बढ़ने के स्थान पर कम होनी शुरू हो जाये और होते-होते वह शून्य हो जाये। यदि कभी ऐसा होगा, तो न जाने वह कब होगा ? उसका हिसाब छोड़ो। देखो, भारत में मुहम्मदियों के कब्र स्थानों की संख्या ईसाइयों के कब्र-स्थानों से बहुत अधिक है। मुसलमानों की कब्रों पर भी सुन्दर शिला-लेख लगते हैं, अमीरों की कब्रों पर। भारत में इस्लामी राज्यकाल का यदि कुछ देखने योग्य है, तो वह मस्जिदें और कब्रें ही तो हैं। आप चाहें जो कहें, ज्ञानी तो उन्हें यादगारी पत्थर समझता है।

७. यादगारी-पत्थरों की मकबरा-प्रणाली में स्वतन्त्र भारत की बे-धर्म सरकार ने भी चार चाँद लगाने की एक शत-वर्षीय योजना बना ली है, ऐसा प्रतीत होता है। जमना के किनारे पर पूज्य महात्मा गान्धी जी का शानदार मकबरा बनाया जा रहा है, नेहरू का मकबरा बनाया जा रहा है, लालबहादुर शास्त्री का मकबरा बनाया जा रहा है, ऐसे-ऐसे मकबरे बनाने के लिए बड़े-बड़े मैदान वहां सुरक्षित कर लिये गये हैं। आगे-आगे वहां किस-किसके मकबरे बनने का नंबर आयेगा ? यह तो समय बतायेगा।

देहली के लाल किले और जामा मस्जिद के मैदान में एक कांग्रेसी मुसलमान मौलाना आजाद का समाधि-मन्दिर बड़ा शानदार तैयार हो रहा है। कब्रों पर फूल चढ़ाने की भी एक अदा और विशेष कला होती है। समय आनेपर इन सभी सरकारी कब्र-गाहों पर अजमेर की और निजामुद्दीन की दरगाहों जैसे मेले भी लगवाये जायेंगे। कुछ देर बाद लोगों को बेटा-बेटी, मुकदमा जीतने, शत्रु पर विजय पाने, मनचाही शादी होने आदि-आदि के वरदान भी मिलेंगे।

८. लोग कहते हैं कि आर्य समाज पाषाण-पूजक नहीं होते। कहने को कोई कुछ भी कहे। हाथी के दांत, खाने के और, दिखाने के और। यादगारी-पत्थरों की भरमार आर्यसमाजी संसार में दूसरों से कुछ अधिक ही है, कम नहीं। आमदनी का बड़ा जरिया यही है।

९. लाहौर में कभी आर्य समाजी संस्थावाद के बड़े-बड़े स्मारक बने थे। डी० ए० वी० कालिज के होस्टल में, या डी० ए० वी० कालिज में, या गुरुदत्त-भवन के विद्यार्थी-आश्रम और दयानन्दोपदेशक विद्यालय में, एवमेव अन्यान्य संस्थाओं में भी जाने से, लोगों को ऐसा प्रतीत होता था कि मानो हम किसी बहुत बड़े कब्र-स्थान में आ गये हैं। वहां चप्पे चप्पे पर यादगारी-पत्थर जड़े हुए दृष्टिगोचर होते थे। "यह कमरा अमुक शर्माजी ने अपने पुत्र की यादगार में बनवाया, यह कमरा स्वर्गीय पिता चोपड़ा साहेब की यादगार में उनकी पुत्री श्रीमती भल्ला ने बनवाया। इसका बुनियादी पत्थर उस बड़े आदमी ने रखा ऐसे बेशुमार शिला लेख और यादगारी-पत्थर वहाँ लगे रहते थे। संयुक्त पंजाब के धनी लोग अपने-अपने माँ-बाप और बेटा-बेटी की यादगार में कमरे आदि लाहौर में ही अधिक बनवाया करते थे। लाहौर में ही पंजाब के सभी शहरों से आ-आकर लड़के-लड़की कालिज की पढ़ाई पढ़ते थे। लाहौर

के यादगारी-पत्थर आसानी से ही पंजाब भर की सरकारी और गैर-सरकारी आँखों में बस जाते थे। उन्हें देखकर लोग आसानी से ही वैरागी बन जाते थे।

अच्छे-अच्छे पढ़ाकू लड़कों का मन पढ़ाई से उचाट हो जाता था, और संसार से मन लगाने के लिए वे सिनेमा-संसार की शरण लेते थे। एक साथ ही नई और पुरानी पीढ़ियों में वैराग्य-भाव भरने के लिए ही शायद कब्र-स्थानों जैसे बड़े-बड़े होस्टलों आदि को बनवाया गया था। कष्ट-काल में वैराग्य ही तो मानव-जीवन का परम सहारा है। सन् १९४७ ई० में भारत-विभाजन और नापाकिस्थान की स्थापना के कारण जनता को जो कष्ट भोगने पड़ें, उनकी बावत कुछ संस्थावादियों ने शायद पहिले ही सब कुछ जान लिया था।

यादगारों-पत्थरों की जैसी भारी भरमार लाहौर के आर्य-जगत में थी, वैसा ही भरमार आरम्भ से अबतक गुरुकुल काँगड़ी में भी पाई जाती है। यादगारी पत्थरों की संख्या तो सर्वत्र ही बढ़ती चली जा रही है।

१०. देहली में तो यादगारी-पत्थरों की भरमार सदा-सदा से ही होती आ रही है। जब से भारत-विभाजन हुआ और पंजाब के आर्यों ने देहली में डेरे डाल हैं, तब से तो देहली में यादगारी-पत्थरों की एक बाढ़-सी आ गई है। देहली में कैसे-कैसे यादगारी-पत्थर गाड़े गये और गाड़े जा रहे हैं, उनका विचार बहुत शिक्षा-प्रद है।

११. नई देहली की मनुष्य पालिका कमेटी ने रीडिंग-पथ का नाम मन्दिर पथ रख दिया है। इसी पथ पर पौराणिकों का वह नया गढ़ बनाहै, जो कि श्री लक्ष्मीनारायण जी का मन्दिर होकर भी बिरला-मन्दिर कहलाता है। यह बिरला-मन्दिर यादगारी पत्थरों का एक बनावटी पहाड़ ही तो है। यदि कभी कोई ऐतिहासिक घटना घटेगी तो यह मन्दिर भी आगे चलकर सोमनाथ के मन्दिर जैसे गौरव को प्राप्त करेगा। हम चाहते हैं कि ऐसा कभी न हो।

१२. बिरला मन्दिर की बगल में ही हिन्दू महा सभा का भवन है। जब गोराशाही की लाठियों ने लाहौर में पंजाब केसरी लाला लाजपत रायजी को शहीद कर डाला था, तब उनका उचित स्मारक बनाने के लिए हिन्दू महासभा वालों ने "लाला लाजपत राय स्मारक कोष" खोला था। उसी कोष के धन से स्वर्गीय देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी प्रभृति नेताओं ने इसे बनवाना शुरू किया था। इस भवन की आधारशिला रखने के लिए नेपाल के एक नरेश पधारे थे। फिर भी रुपये की कमी के कारण काम अधूरा रह गया था वह कमी दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिरला ने पूरी कर दी थी। पच्चेहत्तर या पैंसठ हजार रुपये देकर। फिर किसी ने चुपचाप हिन्दू महासभा भवन के सामने यह यादगारी पत्थर भी लगवा दिया था कि—"श्रीमान् राजा बलदेवदास जी बिरला के पुत्रों ने इसे बनवाया।" इत्यादि। लाला लाजपतराय स्मारक कोष का उल्लेख वहां कहीं भी नहीं है। जब श्री भाई परमानन्द जी ने उस कोषके धनका उल्लेख करवाना चाहा था, तब कुछ शक्तियों ने श्री भाई जी को बहुत परेशान किया था, मुकदमे बाजियाँ करके।

१३. यादगारी पत्थरों के इतिहास में एक नई बड़ी बात हुई है। वह यह कि एक हिन्दू सभाई नेता सर गोकुलचन्द नारंग ने थोड़ा-सा रुपया लगाकर, प्रसिद्ध शहीद हकीकत राय का पुतला और अपने नाम का पत्थर हिन्दू सभा भवन के सामने लगवा दिया है। विज्ञापन अच्छा है।

१४. देहली के एक आर्यसमाज मन्दिर के द्वार, बरामदे, सीढ़ियाँ, मंच, कमरे, फर्श आदि-आदि विविध प्रकार के दानवीरों ने अपने अपने माँ-बाप और बेटा-बेटी आदि की याद में बनवा रखे हैं।

१५. एक आर्यसमाज मन्दिर में एक हजार

रुपये की लागत से नौ इंच ऊँचा बड़ा हवन कुण्ड बना है। दस हजार रुपये से अधिक मूल्य का सहन उस थड़े के कारण बेकार हो गया है। दाता के नाम के पत्थर का खर्च भी एक हजार में शामिल हैं। फजूलखर्ची और बेसमझी की हद हैं।

१६. दूसरों के धन पर मौजें लूटने और दूसरों के पुरूषार्थ पर यश लूटने से दृष्टान्त तो बहुत मिलेंगे, दूसरों के बड़े दान का यश लूटने का उदाहरण लीजिये—देहली में एक बे-औलाद ठेकेदार जी थे। दो शादियां करके भी वे औलाद वाले न बने। फलतः उन्होंने अपने धन-वैभव को दान आदि के द्वारा समाप्त कर दिया। उनके रुपये से एक अधिक बड़ा, जरूरत से भी बड़ा, आर्यसमाज मन्दिर बना। उस बड़े मन्दिर के एक बरामदे में एक युवक ने सौ-डेढ़ सौ रुपये खर्च करके, आर्यसमाज के दस नियमों का पत्थर लगवा दिया। उसके नीचे लिखा है—"श्रीमती पद्मावती धर्मपत्नी ला० ओमप्रकाश कपड़े वाले द्वारा अपनी धर्म माता श्रीमती फूलदेवी जी की स्मृति में समर्पित।"

उस दिन एक हैदराबादी भाई उस दस नियमी पत्थर को पढ़कर कह रहा था—"पद्मावती ने यह आर्यसमाज मन्दिर बनवाया है।" ऐसे-ऐसे भ्रामक पत्थरों का लगना अनुचित तो है; परन्तु ऐसी बातों को देखने की फुरसत आज किसी को नहीं है। निर्वाचन के प्रपंच, पदों की भूख, स्वार्थ-लीलायें, सूद-खोरियाँ, किराया खोरियां और मुकदमे बाजियाँ कुछ करने ही नहीं देती।

१७. आजकल के सभी मठाधीश ऐसे बे-औलाद लोगों को खोजा करते हैं, जो उनके मठों में कमरे बनवाकर, या बने-बनाये कमरों पर अपने, या अपने बड़े-छोटे सम्बन्धियों के नाम के यादगारी पत्थर लगवाकर, अपने और सम्बन्धियों के नाम अमर करना चाहें। खोजने वाले पा भी जाते हैं।

१८. यादगारी पत्थरों के इस अन्धकार-युग में कभी-कभी ऐसे उदाहरण भी प्रकाश में आ जाते हैं, जिन पर विश्वास करना भी कठिन है।

१९. किराची में जमशेद जी महता नाम के एक पारसी सज्जन थे। यह अविभाजित भारत की घटना है। किराची शहर के निर्माण और उत्कर्ष में महता जी का योगदान बहुत अधिक था। वे एक प्रसिद्ध समाज-सेवी और प्रतिष्ठित व्यापारी थे।

२०. किराची में एक बड़े हस्पताल के लिए धन-संग्रह किया जा रहा था। अर्थ-संग्रह समिति में महता जी भी शामिल थे। समिति ने निश्चय किया कि जो दाता दस हजार या इससे अधिक दान दें, उनके नाम संगेमरमर पर खुदवाकर, हस्पताल के मुख्य द्वार के पास लगवा दिये जायेंगे। बहुत से उदार सज्जनों ने बढ़-चढ़ कर दान दिया, परन्तु श्री जमशेद जी महता ने दस हजार से कुछ कम दान दिया।

२१. यह देखकर एक सज्जन ने महता जी से पूछा—"आपने ऐसा क्यों किया? चालीस-पचास रुपये अधिक देना आपके लिए कुछ कठिन न था। ऐसा करते तो आपका नाम भी पत्थर पर अंकित हो जाता।"

२२. श्री महता जी नम्रतापूर्वक बोले—

"प्रभु ने मुझे जो कुछ दिया है, उसका उपयोग लोक-सेवा में हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है। यही मेरे सन्तोष और आनन्द की बात है। अपने नाम की पट्टिका लगवाना मुझे अभीष्ट नहीं है।

२३. यादगारी पत्थरों की महामारी ने आज सारे संसार में और विशेष रूप से अपने इस स्वाधीन भारत में बहुत भयंकर रूप धारण कर लिया है। श्री महात्मा गाँधी जी, श्री नेहरू जी, श्री लालबहादुर जी आदि आदि के यादगारी पत्थरों के लिए दो-चार अरब रुपए से काम न चलेगा। सरकार को अपने सभी साधनों का उपयोग करके

(शेष पृष्ठ ८ पर)

राष्ट्र-निर्माण और राजनैतिक दलबन्दी

लेखक—श्री प्रो० किशोरीलाल गुप्त एम० ए०, काव्यतीर्थ, अलीगढ़

बहवो यत्र नेतारः, सर्वे पण्डित मानिनः ।
सर्वे महत्वमिच्छन्ति, तद्वृन्दमवसीदति ॥

ऊपर दिया हुआ नीति-शास्त्र का श्लोक सहस्त्रों वर्षों के राजनैतिक अनुभवों का निचोड़ है। नेता बनना कौन नहीं चाहता ? किन्तु नेता बनने की योग्यता कितनों में होती है ? सभी को अपने-अपने पाण्डित्य का अभिमान होता है मूर्ख भी यही समझता है कि मुझ जैसा चतुर कोई अन्य शायद ही होगा। महत्व भी सब चाहते हैं। किन्तु महत्व प्राप्त करने के उचित साधनों में संलग्न कितने दिखाई देते हैं ? इसका फल भी प्रत्यक्ष ही देखने में आता है। नेता तो वही बनता है, जो अपने अन्दर नेता बनने की क्षमता रखता हो और नेतापन के अनुरूप ही काम भी करता हो। जहां अयोग्य और अनधिकारी लोगों के हाथ में नेतापन की बाग-डोर आ जाती है, वहीं बधिया बैठ जाती है। इसलिए श्लोक में कहा गया है—

"जहां बहुत से नेता उठ खड़े हों, और सबके सब अपने राजनीति-विशारद होने का अभिमान करने लगें, और सबके सब उच्च पदों की प्राप्ति के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा भी करने लगें, तब यह समझ लीजिए कि यह सारा समुदाय और वह समाज अथवा राष्ट्र शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं, जिसके नेता होने का ये दम भरते हैं।"

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद आरम्भ से आज तक हमारे इस अभागे भारत में भी यही अवस्था देखने में आ रही है। यहाँ हर किसी ऐरे-गैरे, नत्थू-खैरे के मुंह में मिनिस्टरी प्राप्त करने के लिए पानी छल-छला रहा है। और कुछ लोगों के मुंह को तो लहू भी लग चुका है। अब मुफ्त का माल जो मिलता हुआ दीख रहा है ना। जब डण्डे पड़ते थे, जेल में चक्की चलानी पड़ती थी, घर का काम-काज छूटता था, तब भाई क्यों दुम दबाते थे ? गांधी-टोपा तक पहिनना गुनाह समझते थे। तब तो अंग्रेजी वेश-भूषा बना-बनाकर यार लोग अंग्रेज अफसरों की खुशामदों में ही अपना अहोभाग्य समझते थे। और तो और हमारे ही भाई पिछले यूरोपीय युद्ध को लोक-युद्ध कहकर अपने अंग्रेज ताऊओं की मदद के नारे बुलन्द करते थे। अमर शहीद स्वनाम धन्य, भारत मां के लाड़ले सपूत स्वर्गीय श्री सुभाष चन्द्र बोस तक को भी वे कौमी-गद्दार पुकारते हुए लज्जित न होते थे। वे ही आज किसानों और मजदूरों के हितैषी होने का दावा करते हैं। इसी प्रकार और भी कई दल हैं, जो राजनैतिक सन्तापों की तपिश से तो सदा ही दूर रहे और आज कोई हिन्दू-हितों के रक्षक बने बैठे हैं, एवं कोई ईसाइयों, मुसलमानों या सिक्खों के शुभ चिन्तक होने का दावा करते हैं। कुछ भाई ऐसे भी हैं जिन्होंने स्वराज्य के संघर्ष में संकट तो अवश्य सहे थे परन्तु किसी कारण वश नौकरियों, कोटों, परमिटों, लायसेंसों और व्यापारिक इजारेदारियों की लूट में उनको उनका मनमाना भाग नहीं मिला, इसलिए वे सार्वजनिक कामों से रूठ कर बैठ गये हैं, या निर्लज्ज होकर राष्ट्र घाती कामों में जुट गये हैं। ऐसे ही लोग आये दिन नई-नई दल बन्दियां खड़ी करते और झगड़े-बखेड़े भी फैलाते हैं। स्वार्थ के वश में होकर वे अपने स्वदेश के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भी भूल गये हैं जो अधिकारारूढ़ दल हैं। वह भी दूसरों को लड़ाने और फूट फैलाने में ही अपना हित समझ रहा है। एक दल और एक ही ध्येय-निष्ठा की आज बड़ी आवश्यकता है। एक बड़ा नेता—सच्चा नेता हमें चाहिए।

———

आवश्यक सूचना

१—पत्र-व्यवहार करते समय प्रत्येक पत्र में अपना पूरा पता अवश्य लिखें।

२ अपने पत्र का उत्तर शीघ्र प्राप्त करने के लिए जवाबी कार्ड या आवश्यक डाक-टिकट भेजना न भूलें।

—प्रबन्धक "मधुर-लोक" और "मधुर-प्रकाशन"
आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, दिल्ली—६

(पृष्ठ ६ का शेष)

कोटे, परमिट, लायसेंस, व्यापार के एकाधिकार दे देकर और बड़े-बड़े ओहदे बेच-बेचकर रुपया जुटाना पड़ेगा।

२४. कहने को तो और भी बहुत कुछ है, पर कहा नहीं जाता। पढ़ने वाले भाइयो! और बहिनो!! सोचो, समझो, कुछ अपनी बुद्धि का भी तो उपयोग करो।

कैस जंगल में अकेला है मुझे जाने दो।
खूब गुजरेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो॥

Directorate of Education : Delhi

(Social Education Branch)

D.E.V.2। Store-SE-lib-Books-65-66

Dt. the 2. 3. 66

To

The Editor
Madhur Parkashan.
Arya Samaj Mandir Bazar, Sita Ram
Delhi

Memo.

The Director of Edu. Delhi has been pleased to approve your following publications for the school Libraries and Reading Rooms during the year 1965-66.

The Schools will be informed later on

१. मधुर संस्कृत निबन्ध माला
२. वैदिक-प्रार्थना
३. वैदिक-प्रवचन
४. मधुर-लोक—मासिक पत्रिका

हस्ताक्षर··· (B R. Vyas)
सहायक संचालक शिक्षा (समाज शिक्षा)
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली

वैदिक-प्रवचन-माधुरी

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

(१४)

क्रान्ति का आवाहन

एकं शतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीं असंभव्यं पराभवन् ।

अथर्व० ५ । १८ । १२

शब्दार्थः—(ता) वह (जनता) जनता (शतम्) सकड़ों की संख्या में एकत्रित होती हैं (या) जो कि (एक) एक उद्देश्य के लिये (भूमिः) भूमि को (वि+अधूनत) विविध प्रकार से आन्दोलित करती है । उस (ब्राह्मणीम्) नेता के वश में रहने वाली, सरल सुशिक्षित और ईश्वर—विश्वासी (प्रजाम्) प्रजा को (हिंसित्वा) सता कर, दबा कर प्रजा पीड़क राजवर्ग (असम्भव्यम्) अचानक ही (पराभवन्) पराजित हो जाता है ।

भावार्थ :—वह पीड़ित जनता सैंकड़ों की संख्या में एकत्रित होकर आन्दोलन करती है और निरन्तर आन्दोलन द्वारा एक ऐसी स्थिति को उत्पन्न कर देती है, जिस का सामना करने में प्रजा पीड़क शासक-वर्ग सर्वथा ही असमर्थ हो जाता है । लोक सेनाओं की शक्ति निरंतर बढ़ती ही रहती है । फिर एक दिन अचानक ही प्रजा-पीड़क राजवर्ग का अन्त सदा के लिये हो जाता है ।

प्रवचन

यदि पापाचार-परायण शासक वर्ग सीधे उपायों से राष्ट्र की भावनाओं का आदर न करे, और शासन-सूत्र प्रजा के विश्वस्त प्रतिनिधियों को न सौंपे, तो प्रजावर्ग का जो कर्तव्य है, वही वेद ने यहाँ बताया है । जिन-जिन राष्ट्रों में ऐसे संकटकाल जब-जब उपस्थित हों, तब-तब उनकी प्रजा को अपना सुदृढ़ संगठन करना चाहिये । फिर प्रजा को ऊँचे विश्वास और पुरुषार्थ की कसौटी पर कसकर अपने नेता एवं उपनेताओं का निर्वाचन करना चाहिये । फिर प्रजा को अपने नेता के आधीन पूर्ण अनुशासन में रहकर जुट जाना चाहिये । अर्थात् अयोग्य-शासन को वैधानिक और अवैधानिक सभी उपायों से हटा कर सुयोग्य शासन की स्थापना करनी चाहिये । अवैधानिक उपायों का अर्थ है उग्र और सशस्त्र उपाय ।

यह स्मरण रहे कि यह कार्य असाधारण और बहुत ही गम्भीर है । इसकी सफलता के लिये पवित्रता, दक्षता, स्वार्थहीनता और अनुशासन बद्धता की महती आवश्यकता है । यदि इन बातों में छोटी सी भूल भी हो जाएगी, तो उल्टा परिणाम होगा । जग-हंसाई तो होगी ही । यह भी हो सकता है कि प्राणों से भी हाथ धोने पड़ जायें । अतः प्रजा को पूर्णतया सुसंगठित होकर, नेता की पूर्ण सहमति से ही सब प्रकार के प्रदर्शनों, आयोजनों, हड़तालों आदि कार्यक्रमों का आयोजन और अनुष्ठान करना चाहिये । इन कार्यक्रमों और उपायों में निःशस्त्र प्रतिकारों और सशस्त्र-प्रतिकारों को भी शामिल समझें । समाज कण्टकों के निवारकों, प्रजा-पीड़कों के विनाशकों स्वदेश के रक्षकों और सुधारकों को सभी प्रकार की गम्भीर परिस्थितियों का सामना करने के लिये सुसज्जित रहना चाहिये ।

इसमें सन्देह नहीं कि क्रूर शासक-वर्ग अपनी अधिकार-आरूढ़ता का दुरुपयोग करेगा । और इसके परिणाम स्वरूप विनाश-लीलाओं के महा-भयंकर काण्ड भी अवश्य ही उपस्थित होंगे । ऐसे सभी अवसरों पर स्वदेश भक्तों को आगे बढ़-बढ़ कर अपने-अपने त्याग, तप और बलिदान का परिचय देना चाहिये । ऐसे-ऐसे अवसर भी आ सकते हैं, जबकि पाप का पलड़ा भारी और विजयी-सा

होता हुआ प्रतीत होता हो। उस समय कोई घबरायें नहीं। यदि कभी ऐसे अवसर आते हैं, तो वास्तव में वे पापी-दल के शीघ्र-नाश के ही सूचक होते हैं। आदर्शवादी और स्वार्थ-त्यागी, परोपकारी वीरों का बलिदान और परिश्रम व्यर्थ कभी नहीं जाता। विश्वास रक्खो। पाप-परायण सत्तारूढ़ शासक वर्ग का अन्त अचानक ही इस प्रकार होगा कि उसे देखकर सारा संसार चकित रह जायेगा। इतिहास साक्षी है—पहले भी बारम्बार ऐसा ही हो चुका है। देवी क्रांति का आगमन होगा और अचानक ही होगा।

बहुत से लोग क्रांति के नाम मात्र से ही कानों पर हाथ धरते हैं और भयभीत हो जाते हैं। क्यों? दो बातें हैं। एक तो यह कि वे बेचारे यह नहीं जानते कि क्रांति क्या है? वह क्यों आती है? क्यों होती है? उन्हें जानना चाहिये कि क्रांति तो विकास, सुधार, और अभ्युदय का ही एक उत्तम विधान है। क्रान्ति के आगमन से मानव-जाति का हित ही होता है। दूसरी बात यह है कि स्थिति-पालक लोग जो क्रांति के नाम मात्र से भी घबराते हैं, उनकी चिन्ता सच्ची है। क्रान्ति उनके मौज-मजे, भोग-विलास, हलवे-माण्डे, स्वेच्छाचार और अकर्मण्यता पूर्ण जीवन को समाप्त करके, उन्हें नई चेतना एवं प्रेरणा प्रदान करेगी। यदि वे उस नई – चेतना एवं प्रेरणा को ग्रहण करेंगे, तब तो उनके लिये चिन्ता की कोई बात ही नहीं है। अन्यथा जो कुछ होगा, वह वेद ने पहिले ही स्पष्ट बता दिया है।

करनी करे तो फल भरे, करके क्यों पछताय।
बोये पेड़ बबूल के आम कहाँ से खाय॥

——

(१५)

पथिक की पुकार

**सं पूषन् विदुषा नय, यो अंजसानुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत्॥**

ऋ० ६। ५४। १

**समु पूष्णा गमेमहि, यो गृहां अभिशासति।
इमएवेति च ब्रवत्॥**

ऋ० ६। ५४। २

(१)

शब्दार्थ—(पूषन्) हे अखिल विश्व के पालक पोषक प्रभो! हमें ऐसे (विदुषा) विद्वान् गुरु के पास (संनय) ले चल (यः) जो अंजसा प्रकाश द्वारा, उपदेश द्वारा, ज्ञानांजन द्वारा (अनुशासति) अनुशासन=पथ-प्रदर्शन करता है। और (यः) जो (इदम्) यह कार्य, तत्त्व, वस्तु, विचार, सिद्धान्त, पथ (इति एव) इस प्रकार का, इतना है, यह निश्चय पूर्वक ठीक-ठीक (ब्रवत्) बताता है।

भावार्थ हे प्रभो! हमें ऐसा श्रेष्ठ गुरु प्रदान करो, जो अपने उपदेश द्वारा हमारा ठीक-ठीक पथ-प्रदर्शन करे और संसार के प्रत्येक पदार्थ के विषय में हमें यथार्थ बोध प्रदान करे।

(२)

शब्दार्थ—हे प्रभो! (पूष्णा) आपकी प्रेमपूर्ण कृपा से (गमेमहि) हम आगे ही आगे बढ़ें और श्रेष्ठ अध्यापक वा उपदेशक को प्राप्त करें। जो हमें (गृहाम्) सच्चे घर के मार्ग को (अभिशासति) बताता है और जो (इम-एव-इति) यह ही ठीक

मार्ग है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक ठीक-ठीक मार्ग-दर्शन करता है।

भावार्थ—हे प्रभो ! भक्ति-धर्म का अनुष्ठान करके हम उस तत्त्वदर्शी गुरु को प्राप्त करना चाहते हैं, जो हमें हमारे सत्य-सनातन-घर का मार्ग बताने में समर्थ है और जो दृढ़ विश्वासपूर्वक, ठीक ही मार्ग-दर्शन कर सकता है।

प्रवचन

हे प्रभो ! स्वार्थी नेताओं झूठे गुरुओं और पापी सन्तों से हमारी रक्षा करो। प्रभो ! हम पथ-भ्रष्ट, अशान्त, क्लान्त और परिभ्रान्त होकर, इस संसार रूपी महावन में भटक रहे हैं। प्रभो ! एक तो हम निर्बल और अल्पज्ञ हैं, दूसरे इस वन के झाड़-झंकाड़ और बनैले पशुओं के सताये हुए भी बहुत हैं, विषम-प्रसंगों में, जो कोई भी दो मीठी बातें करता है, उसी को हम अपना परम हितैषी मान लेने की भूल कर बैठते हैं। हम बारम्बार भूल करते ही रहते हैं। इस प्रकार हम बारम्बार ठगे जाते हैं। और हानि उठाते हैं। धन और समय की हानि तो होती ही है, स्वास्थ्य, सन्मान और धर्म की हानी भी होती है। ये स्वार्थी नेता, झूठे गुरु, पापी-सन्त, पाखंडी-साधु तथा दम्भी लोग स्वयं तो पथ-भ्रष्ट हैं ही, परन्तु संसार के भोले-भाले लोगों को पथ-भ्रष्ट करने में भी ये बड़े उस्ताद हैं। हाय ! हम कैसे धूर्तों के चंगुल में आ फंसे ? हे दयानिधे ! हमारी रक्षा करो। इन धूर्त्तों की लीला को देखो। आप तो देखते ही हो।

आपन को पानी नहीं, औरन बच्छत छीर।
आपुन मन निश्चल नहीं, और बन्धावत धीर।

जिनके पास अपने पीने के लिये पानी भी नहीं है, वे औरों को दूध के प्रलोभन में फाँसते फिर रहे हैं। जिनका अपना मन अत्यन्त चंचल है, वे भी दूसरों को योग-विद्या सिखा रहे हैं।

[नोट--इस प्रवचन का, आगे का पद्य-भाग रामचरित् मानस से ग्रहण किया गया है।]

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दंभिह्न निज मति कल्पि करि, प्रकट किये बहु पंथ।।

घोर पापों ने सब श्रेष्ठ आचरणों को ग्रस लिया है सभी सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। अपनी-अपनी बुद्धि से कल्पना करके दम्भी लोगों ने बहुत से पंथ चला दिये हैं।

बरन धर्म नहीं आश्रम चारी।
श्रुति विरोधरत सब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन।
कोई नहीं मान निगम अनुशासन।।

न कोई चार वर्णों को मानता है, न चार आश्रमों को। सभी पुरुष और सभी स्त्रियाँ वेद विरोधी कार्यों में संलग्न हैं। ब्राह्मण वेद को बेचने वाले बन गये हैं। राजा लोग प्रजा का भक्षण करने लगे हैं। वेदादि शास्त्रों के पठन-पाठन, संरक्षण और उनके आदेशानुसार आचरण पर तो किसी का ध्यान ही नहीं है।

मारग सोई जा कहुं जोई भावा।
पण्डित सोई जो गाल बजावा।।
मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई।
ता कहुं सन्त कहइ सब कोई।।

जिसको जो भाता है, वही उसका मार्ग है। जो खूब डींग हांकता है और बढ़-चढ़ कर बकवास करता है, वही बड़ा पण्डित है। जो व्यर्थ एवं आडंबरपूर्ण काम करता है, आजकल तो वही बड़ा सन्त कहलाता है।

सोइ सयान जो परधन हारी।
जो कर दम्भ सो बड़ आचारी।।
जो कहुं झूठ मसखरी जाना।
कलिजुग सोई गुणवन्त बखाना।।

आज के युग में तो वही बुद्धिमान् कहलाता है, जो कि येनकेन प्रकारेण दूसरों के धन का अपहरण करता है और जो झूठ बोलने तथा हँसी-मसखरी करने वाला है, वही आजकल बड़ा कलाकार माना

जाता है।

निराचार जो श्रुति-पथ त्यागी।
कलिजुग सोइ ज्ञानी सो विरागी।।
जाके नख और सिखा विशाला।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलि काला।।

जो आचार-हीन और वेद-विरोधी लोग हैं, आजकल तो वे ही ज्ञानी और वैरागी कहलाते हैं। जिसके नाखून और बाल लम्बे हैं, बस, आजकल तो वही सबसे बढ़कर तपस्वी है।

असुभ वेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेई जोगी, तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग मांहि।।

जो अमंगलकारक, भद्दे और निर्लजतापूर्ण वस्त्र, वेश और आभूषण इत्यादि धारण करते हैं, तथा जो भक्ष्य और अभक्ष्य सभी प्रकार के पदार्थों को हड़प कर जाते हैं, बस आजकल तो वे ही परम योगी, सिद्ध और पूज्य बने बैठे हैं।

जो उपकारी चार, तिन्हकर गौरव मान तेइ।
मन,क्रम,बचन लबार, तेई बकता कलिकाल मंह।।

जिनके आचरण दूसरों की हानि करने वाले हैं, आजकल तो संसार में उनका ही अधिक सन्मान होता है। जो मन, वचन और कर्म से मिथ्याचार, बकवास और पापाचरण ही करते रहते हैं, आजकल तो वे ही बड़े प्रसिद्ध व्याख्यान-दाता और धर्मोपदेशक माने जाते हैं।

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ, संजुत विरति विवेक।
तेहि न चलहिं नर मोहवस, कल्पहिं पंथ अनेक।।

जो वेदानुकूल और ज्ञान एवं वैराग्य से युक्त प्रभु की भक्ति का मार्ग है, लोग आजकल मोह के वश में होकर उस पर चलते नहीं हैं। आजकल तो सभी ने अपने-अपने पृथक्-पृथक् मार्ग कल्पित कर रखे हैं।

नारि बिबस नर सकल गुसाईं।
नाचईं नट-मर्कट की नाईं।।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना।
मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।

हे गोसाईं! आजकल तो सभी पुरुष विशेष रूप से औरतों के दास बन गये हैं और औरतों के इशारों पर वे मदारी के बन्दर की तरह नाचते रहते हैं। आजकल तो मूर्खों ने विद्वानों को ज्ञान सिखाने तथा गले में जनेऊ डालकर अनुचित दान लेने का व्यापार आरम्भ कर रखा है।

सब नर काम लोभरत क्रोधी।
देव विप्र श्रुति संत विरोधी।।
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी।
भजहिं नारि पर-पुरुष अभागी।।

आजकल तो सब लोग काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और अहंकार के वश में हो रहे हैं। सभी वेद, ईश्वर और सज्जन समुदाय के विरोधी बन चुके हैं। इन अभागन स्त्रियों को ही देखो, जो अपने सुन्दर और गुणी पुरुष को छोड़कर पराये पुरुषों का उपसेवन किया करती हैं।

सौभागिनीं विभूषण हीना।
विधवन्ह के शृंगार नवीना।।
गुरु सिष बधिर अन्धकर लेखा।
एक न सुनइ एक नहीं देखा।।

आजकल सुहागन स्त्रियाँ तो आभूषणों से हीन हो गई हैं और विधवायें नित्यप्रति नये-नये सिंगार किया करती हैं। आजकल के गुरु और शिष्य भी बहरे और अन्धे के समान हैं। एक को सुनाई नहीं देता, दूसरे को दिखाई नहीं देता।

जो गुरू, उपदेशक और अध्यापक अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते, उनकी अत्यन्त दुर्गति होती है।

हरइ शिष्य धन सोक न हरई।
सो गुर घोर नरक मंह परई।।
मात पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरे सोइ धर्म सिखावहिं।।

जो गुरु शिष्य के धन का हरण तो करता है; परन्तु उसके अज्ञान और शोक का निवारण नहीं करता, वह घोर नरक में जाता है। आज तो माता

पिता की रीति-नीति भी उलटी हो चुकी है। ये बच्चों को जब बोलना सिखाते हैं; तब उनको पेट पालने की ही शिक्षा देते हैं।

ब्रह्म-ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरी बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरू घात॥

आजकल के लोग एक ओर तो बात-बात में ब्रह्म-ज्ञान की दुहाई देते हैं। ब्रह्म-ज्ञान के सिवा और कुछ बात ही नहीं करते और दूसरी तरफ़ वे इतने अधिक नीच हो गये हैं कि एक कौड़ी के लोभ में फंसकर अपने ज्ञानी गुरू की हत्या भी कर देते हैं।

बादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुमते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहिं डाटि॥

आजकल तो मूर्ख भी विद्वानों के साथ विवाद करते हैं और कहते हैं कि हम भी तुमसे कुछ कम नहीं हैं। यदि कोई उनसे यह कहे कि ब्राह्मण तो उसे कहते हैं जो वेद और ईश्वर को जानता हो, तब वे विद्वानों को डाँटने फटकारने और आँखें दिखाने लग जाते हैं।

सच है, जब मूर्ख किसी युक्ति बात का उत्तर नहीं दे सकते, तब वे झगड़े फिसाद पर उतर आते हैं। यह नीतिकार शेख सादी का कथन है।

पर तिय लम्पट कपट सियाने।
मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेई अभेदवादी ग्यानी नर।
देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥

आजकल तो अभेदवादी अर्थात् जीव और ब्रह्म की एकता बतलाने वाले भी अधिकांश में वे ही लोग हैं, जो कि पराई स्त्रियों में आसक्त हैं, कपट करने में चतुर हैं और मोह, द्रोह एवं ममता में लिप्त हैं।

जो बरनाधम तेलि कुम्हारा।
स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह संपति नासी।
मूंड मुड़ाई होहिं संन्यासी॥

आज तो नीच प्रकार के लोग तथा तेली, कुम्हार स्वपच, किरात, कोल और कलवार इत्यादि ही बड़े-बड़े सन्त, महन्त और नेता बने बैठे हैं। जिस किसी की स्त्री मर जाती है, या जिस की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, आजकल तो वही अपना सिर मुंडवाकर परमहंस बन जाता है।

ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं।
उभय लोक निज हाथ नसावहिं।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी।
निराचार सठ वृषली स्वामी॥

जो मूर्ख लोग उत्तम ज्ञानियों से अपनी पूजा करवाते हैं और अनेक प्रकार की अनधिकार चेष्टायें करते रहते हैं, वे तो अपने हाथों से ही अपने दोनों लोकों को नष्ट करते हैं। आजकल तो ऐसे लोग भी ब्राह्मण कहलाते हैं, जो सर्वथा ही निरक्षर अत्यन्त लालची और व्यभिचारी हैं, जो स्वयं भी दुराचारी हैं और जिनकी स्त्रियां भी महा भ्रष्टायें हैं।

सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना।
बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा।
जाइ न बरनि अनीति अपारा॥

आजकल मूर्ख लोग नाना प्रकार के जप, तप और व्रत एवं यज्ञ आदि के ढोंग आये दिन रचते रहते हैं। धर्म की वेदी पर बैठकर मूर्ख लोग धर्म-शास्त्र की कथा सुनाने की विडम्बनायें भी किया करते हैं। लोगों ने नाना प्रकार के पापों को भी धर्म के रूप में स्वीकार कर रखा है। कोई कहाँ तक कहे? बहुत अधिक अनीति फैल चुकी है।

भये बरन संकर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहि पाप पावहि दुःख, भय रुज सोक वियोग॥

आजकल के लोगों ने वर्णाश्रम धर्म को तथा वैदिक जीवन मर्यादा को तोड़ दिया है। सब लोग पापों में लिप्त हो गये हैं। इसी का यह परिणाम है कि सभी को भय, शोक, रोग और वियोग रूपी नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ रहे हैं।

बहु दाम संवारहिं धाम जती।
विषया हरि लोन्हि न रही बिरती।।
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही।
कलि-कौतुक तात न जात कही।।

आजकल के ब्रह्मचारी भारी-भारी खर्च करके अपने घरों को सजाते हैं। विषय वासनाओं ने उनका ज्ञान, वैराग्य, शील, सन्तोष आदि सब कुछ हर लिया है। आजकल के तथाकथित तपस्वी तो धनवान होते हैं और बाल-बच्चेदार गृहस्थी लोग अब निर्धन देखने में आते हैं। कोई क्या-क्या लिखे और सुनाये? जिधर देखो, उलटी ही उलटी-गंगा बह रही है।

कुलवंति निकारिहि नारी सती।
गृह आनहि चेरि निबोरि गति।।
सुत मान हि मात-पिता तब लौं।
अबलालन दीख नहीं जब लौं।।

कुलीन और सती, साध्वी स्त्रियों को आजकल के पुरुष घर से निकाल देते हैं, और वे किसी चेली या दासी को अपने घर में डाल लेते हैं। इस प्रकार वे सभी उत्तम मर्यादाओं को तोड़ रहे हैं। बेटे भी तभी तक मां-बाप को मानते हैं, जब तक कि वे अपनी स्त्री का मुँह नहीं देख लेते।

ससुरारि प्यारी लगी जब तें।
रिपु रूप कुटुंब भये तब तें।
नृप पाप-परायन धर्म नहीं।
करि दण्ड विडंब प्रजा नित ही।।
धनवंत कुलीन, मलीन अपि।
द्विज चिह्न जनेऊ, उघार तपी।।
नहि मान पुरान न वेद हि जो।
हरि सेवक सन्त सही कलि सो।।
कविवृन्द उदार दुनि न सुनो।
गुन दूषक व्रात न कोपि गुनी।।
कलि बारहि बार दुकाल परे।
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे।।

लोगों को जब से अपनी ससुराल प्यारी लगने लगी है, तब से उनको अपने कुटुम्ब के लोग शत्रु के समान दिखाई देते हैं। राज-पुरुष पूर्णतया पाप में फंस चुके हैं। अब उनमें धर्म नहीं रहा। वे अपने अत्याचारों से नित्यप्रति प्रजा की दुर्दशा करते रहते हैं। आज तो घोर पापी, नीच और लम्पट होने पर भी धनी लोगों को ही कुलीन माना जाता है। जनेऊ ही ब्राह्मण का चिन्ह रह गया है। जो नंगे घूमते हैं, वे ही तपस्वी माने जाते हैं। जो लोग वेदों, उपनिषदों और श्रेष्ठ ग्रन्थों को नहीं मानते, वे ही आज सन्त की पदवी से विभूषित होते हैं। कवियों के तो आजकल झुण्ड के झुण्ड उत्पन्न हो गये हैं, परन्तु कवियों को आश्रय देने वाले गुण ग्राहक उदार-पुरुष अब कहाँ हैं? इस अनाचार का ही यह परिणाम है कि आजकल बारम्बार अकाल, बाढ़, रोग और युद्ध के प्रकोप मानवता को त्रस्त करते रहते हैं।

आमन्त्रण

'मधुर-लोक' में प्रकाशित करने के लिये लेख, कविता, कहानी, एकाँकी, चुटकुले आदि रचनायें और विज्ञापन एवं 'मधुर-प्रकाशन' की ओर से प्रकाशित करने के लिये पुस्तकों की पाण्डु-लिपियां सादर आमन्त्रित हैं। प्रकाशनार्थ स्वीकृत पुस्तकों पर उचित पारिश्रमिक दिया जायेगा। सात्विकता-संवर्धक और मानव-जीवन के नव-निर्माण में सहायक साहित्य का प्रकाशन एवं प्रसार मधुर प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य है।

प्रबंधक, मधुर-लोक तथा मधुर प्रकाशन
आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

पातंजल योग-दर्शन का भाष्य ३

भाष्यकार—विविध प्रकार के ग्रन्थों के प्रणेता, डी० ए० वी० कालिज लाहौर के संस्कृतोपाध्याय
विद्यामूर्त्ति स्व० श्री पण्डित राजाराम जी शास्त्री

(गतांक से आगे)

अलौकिक विषय में तो वेद ही प्रमाण है। इसीलिये इस प्रमाण का नाम आगम (इलहाम) है। वेद के आश्रित जो ऋषि, मुनि और आचार्यों के वचन हैं, वे भी इसी प्रमाण के अन्तर्गत हैं और कोई इस विषय में प्रमाण नहीं हो सकता। साधारण मनुष्य को अधिकार नहीं कि परलोक के विषय में कोई निश्चित् बात स्वतंत्रता से कहे। परलोक की बात तो दूर है, लौकिक विषय में भी आप्त पुरुष ही प्रमाण हो सकता है। आप्त वह है जिसके जानने और कहने में कोई दोष न हो।

पदार्थ यदि दूर पड़ा हो तो उससे ठीक इन्द्रिय युक्त पुरुष को भ्रान्ति हो सकती है। इसमें उसका अपना दोष तो नहीं, पर यदि वह दूसरों को कहता फिरेगा, तो उनको धोखा ही होगा। इसी प्रकार पदार्थ यदि दूर भी नहीं, पर वह ऐसी अवस्था में रक्खा है कि उससे भ्रान्ति हो जाती है, अथवा द्रष्टा और दृश्य के मध्य में कोई ऐसी वस्तु है, जिससे दृश्य अपने असली स्वरूप में दिखलाई नहीं देता, जैसा कि मदारी एक शीशे के पीछे खड़ा करके मनुष्य का सिर और धड़ कटा हुआ दिखला देते हैं, ऐसी अवस्था में देखने वाला चाहे कितना ही सावधान क्यों न हो, वह प्रमाण नहीं हो सकता।

यदि वस्तु में कोई दोष नहीं, पर इन्द्रियों में दोष है, तो भी प्रमाण नहीं हो सकता। कामला, (पीलिया) रोग वाले को सब वस्तु पीली ही दिखलाई देती हैं। फिर दोषहीन इन्द्रिय भी उस पदार्थ को देखने में कुशल होनी चाहियें, क्योंकि अनभ्यास की दशा में दोष रहित इन्द्रियों से भी धोखा हो जाता है। सब कुछ ठीक-ठीक होने पर भी सावधानी से वस्तु देखी हुई होनी चाहिये। असावधानी में धोखा हो जाता है। चोर जहाँ से एक अल्पमूल्य वस्तु को ले जाता है, वहीं पर बहुमूल्य वस्तु पड़ी रहती है, क्योंकि उसने असावधानी में उसको देखा नहीं।

पदार्थ के ठीक ज्ञान के अतिरिक्त दो अन्य दोष भी हैं। जिनसे बचा हुआ पुरुष आप्त कहलाता है। पहिला दोष "विप्रलिप्सा" (धोखे में डालने की इच्छा) है। पुरुष जानता तो ठीक है, पर तो भी अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये धोखा देता है दूसरा दोष यह है कि वह लोगों के भले के लिये ही झूठ बोल देता है। आप्त पुरुष में ऐसा कोई दोष नहीं होना चाहिये, उसी का वचन प्रमाण है।

संगति—प्रमाणरूप वृत्ति के भेद दिखाकर विपर्य—वृत्ति का वर्णन करते हैं :—

विपर्ययो मिथ्या ज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम् ॥८॥

पदार्थ—(विपर्ययः) विपर्यय (मिथ्या-ज्ञानम्) मिथ्या-ज्ञान है, (अ तद्रूप-प्रतिष्ठम्) जो उसके रूप में प्रतिष्ठित नहीं, अर्थात् जो उस पदार्थ के असली रूप को प्रकाशित नहीं करता।

अन्वयार्थ—विपर्यय मिथ्या ज्ञान है, जो उसके रूप में प्रतिष्ठित नहीं।

भाष्य—यथार्थ-ज्ञान वस्तु के असली रूप में प्रतिष्ठित होता है, अर्थात् उसके असली रूप को बताता है ! पर मिथ्या-ज्ञान उसके असली रूप को प्रकाशित नहीं करता। सीप को सीप समझना यथार्थ-ज्ञान है और सीप को चान्दी समझना मिथ्या-ज्ञान है। पहला ज्ञान प्रमाण है और दूसरा विपर्यय।

यह विपर्यय ही "अविद्या" है और यही सारे अनर्थ का बीज है। विद्या के उदय होने से अविद्या का नाश होना है। सीप को चाँदी तब तक समझता है, जब तक उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जब

यथार्थ ज्ञान होता है, तब मिथ्या-ज्ञान (कि यह चांदी है) नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जब तक मनुष्य शरीर, इन्द्रिय और मन को आत्मा समझता है, तब तक अविद्या है। जब आत्मा को आत्मा समझता है, तब यह अविद्या दूर हो जाती है।

जिन साधनों से यथार्थ-ज्ञान होता है, उन्हीं से मिथ्या-ज्ञान भी होता है। आँख से ही सीप को देखते हैं और आँख से ही चाँदी को देखते हैं। जब विषय, इन्द्रिय वा चित्त में दोष होता है, तब मिथ्या-ज्ञान उत्पन्न होता है। जब तीनों निर्दोष होते हैं, तब यथार्थ-ज्ञान होता है। इसी प्रकार अनुमान और आगम के विषय में जानना चाहिये।

'संशय वृत्ति' को भी विपर्यय के ही अन्तर्गत समझना चाहिये। क्योंकि "यह सीप है, वा चांदी है।" इस संशय में भी पदार्थ का वास्तविक रूप प्रकाशित होता नहीं है।

संगति—विकल्प-वृत्ति का वर्णन करते हैं।

शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः॥९॥

पदार्थ—(शब्द-ज्ञान-अनुपाती) शब्द के ज्ञान का अनुगामी अर्थात् शब्द ज्ञान के पीछे होने वाला (वस्तुशून्यः) वस्तु से शून्य (विकल्पः) विकल्प।

अन्वयार्थ—शब्दज्ञान का अनुगामी और वस्तु से शून्य विकल्प है। ●

भाष्य—जब कोई कहता है कि मेरा हाथ पानी से जल गया, तो इसको सुनकर सुनने वाले की जो वृत्ति होती है, वही "विकल्प" है। यह ज्ञान वस्तु से शून्य इस लिये है कि वास्तव में पानी ने हाथ नहीं जलाया, पानी के अन्दर जो अग्नि है, उसने हाथ जलाया है। तथापि इन कहे हुए शब्दों को सुनकर एक ज्ञान पैदा हो गया है।

● शब्द और ज्ञान जिसके पीछे आते हैं और वस्तु शून्य है, वह विकल्प है। अर्थात् वह वस्तु से शून्य है, ऐसा जानने वाले विवेकी भी वैसा ही कहते और समझते हैं।

(विज्ञानभिक्षुः)

यह वृत्ति प्रमाण नहीं, क्योंकि प्रमाण का विषय सच्चा होता है। पर इसका विषय सच्चा नहीं। पानी से हाथ का जलना इसका विषय है, और यह ठीक नहीं। इसलिये यह वस्तु से शून्य है।

यह वृत्ति विपर्यय भी नहीं। विपर्यय तब तक रहता है, जब तक वस्तु का असली रूप नहीं दीखता, जब असली रूप दीखता है, तो विपर्यय मिट जाता है, पुरष सीप को चाँदी तभी तक समझता है जब तक भ्रान्ति है। जब सीप को सीप देख लेता है। फिर न उसको चांदी समझता है, न कहता है। प्रत्युत् यह कहता है कि यह चांदी नहीं, सीप है।

विकल्प में यह बात नहीं होती। जो लोग इस बात को जानते हैं कि पानी के अन्दर की आग हाथ जलाने वाली है, पानी नहीं, वे भी ऐसा कहते और समझते हैं कि पानी से मेरा हाथ जल गया। इसलिये यह वृत्ति प्रमाण और विपर्यय इन दोनों से अलग एक स्वतन्त्र ही है।

यह वृत्ति वहाँ होती है, जहाँ अभेद में भेद वा भेद में अभेद आरोप किया जाता है। जैसे काठ और पुतली दो वस्तु नहीं, तथापि काठ की पुतली ऐसा कहने में दो प्रतीत होती हैं। जैसे चैत्र की गौ कहने में सचमुच दो वस्तु हैं और पानी और आग दो वस्तु हैं, पर पानी जलाने वाला है इस कहने में उन दोनों का भेद नहीं किया।

संगति--निद्रा विषय का वर्णन करते हैं—

अभाव प्रत्यालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१०॥

शब्दार्थः—(अभाव-प्रत्यय-आलम्बना) अभाव की प्रतीति को आश्रय करने वाली (वृत्तिः) वृत्ति +(निद्रा) निद्रा।

अन्वयार्थ—अभाव की प्रतीति को आश्रय करने वाली वृत्ति निद्रा है।

भाष्य—जब मनुष्य गाढ़ निद्रा से उठता है, तो कहता है कि मैं सुख से सोया रहा, मुझे कोई खबर नहीं रही। अब प्रश्न यह है कि यह जो खबर न रहने की खबर (अर्थात् ज्ञानाभाव की प्रतीति) हैं, यह भी तो एक ज्ञान है और यह ज्ञान अब नया नहीं हो रहा, क्योंकि अब हम असावधान नहीं? अब तो सब कुछ जान रहे हैं। किन्तु यह ज्ञान उसी अवस्था में पहले हो चुका है। और, अब उसका स्मरण हो रहा है। यदि उस समय यह ज्ञान न होता, तो अब यह स्मरण भी न होता। अतएव निद्रा में ज्ञान का अभाव नहीं होता, किन्तु स्वप्न और जाग्रत वृत्तियों का अभाव होता है। यही अभाव "मुझे कोई खबर नहीं रही।" इन शब्दों से प्रकाशित है। पर इस अभाव का पता लगाने वाली वृत्ति उस समय भी विद्यमान होती है। यही "निद्रा-वृत्ति" है।

संगति—क्रम से प्राप्त स्मृति का वर्णन करते हैं।

अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृति ॥११॥

शब्दार्थ—(अनुभूत-विषय-असम्प्रमोषः) अनुभव किए हुए विषय का न चुराया जाना (स्मृतिः) स्मृति।

अन्वयार्थ—अनुभव किये हुए विषय का न चुराया जाना स्मृति है।

भाष्य—जब किसी वस्तु को अनुभव करते हैं तो उस अनुभव से चित्त पर संस्कार पड़ते हैं। उन संस्कारों से फिर स्मृति होती है। अनुभव के सदृश्य ही संस्कार होते हैं और संस्कारों के सदृश्य ही स्मृति होती है।

स्मृति का विषय अनुभव के बराबर होता है। वा उससे न्यून होता है अधिक नहीं होता।

स्वप्न भी एक स्मृति है जो स्मृति जाग्रत में होती है उसको स्मरतव्य विषय नहीं दिखलाई देता। स्वप्न में स्मरत्व विषय भी दिखलाई सा देता है।

स्मृति को सबसे अन्त में इसलिये रखा है कि प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति इन इन पांचों के ही अनुभव से स्मृति होती है।

प्रश्न—जो पुरुष को क्लेश देते हैं, उनका निरोध उचित है। अविद्या आदि क्लेश तो ऐसे हैं, वृत्तियां नहीं। फिर वृत्तियों का निरोध क्यों किया जाये?

उत्तर—वृत्तियाँ तीनों गुणों के कारण सुख, दुःख, मोह स्वरूप होती हैं। दुःख की वृत्तियां तो स्वतः ही त्याज्य हैं। पर सुख की वृत्तियां भी सुखों के साधन विषयों में राग उत्पन्न कराती हैं और

+प्रश्न—"वृत्तयः पंचतयः" से लेकर वृत्तियों का प्रकरण चला ही है। फिर इस सूत्र में—"वृत्तिनिद्रा" यह वृत्ति पद लिखना व्यर्थ है। जैसा पहले सूत्रों में भी और अगले सूत्र में भी वृत्ति पद नहीं लिखा।

उत्तर—प्रमाण, विपर्यय आदि वृत्तियों के विषय में परीक्षक लोगों का विवाद नहीं है। सब के सब इन वृत्तियों को वृत्तियाँ मानते हैं। पर निद्रा को कई लोग वृत्ति नहीं मानते। इसलिये आचार्य ने वृत्ति पद पर बल दिया है। अर्थात् निद्रा भी वृत्ति है।

प्रश्न—और वृत्तियाँ तो समाधि को रोकती हैं। इसलिये उनका रोकना उचित है। पर निद्रा तो एकाग्र के तुल्य ही है। समाधि के लिये उसका विरोध क्यों करना चाहिये?

उत्तर—एकाग्र के तुल्य भी निद्रा तमोमयी होने से सबीज, निर्बीज समाधि की निरोधिनी है। इसलिये यह भी रोकने योग्य है।

उन विषयों की प्राप्ति में विघ्न डालने वाले पर द्वेष उत्पन्न कराती हैं। इस कारण वे भी क्लेश देनेवाली बन जाती हैं। राग और द्वेष क्लेश हैं। और वृत्ति अविद्या रूप से शोक आदि सारे दु:खों का मूल है। इसलिए वह भी त्याज्य है। हाँ, जब शुद्धसत्व के प्रभाव से राग-द्वेष से शून्य वृत्तियां पैदा होती हैं, तो वे त्याज्य नहीं। वे तो योग की अवस्था हैं। वह ज्ञानी की अवस्था है। इसी अवस्था में महापुरुष जगत्-कल्याण साधन करते हैं। पर हाँ, इस अवस्था से भी ऊपर एक अवस्था है। वहां आत्मा सारी वृत्तियों के सम्बन्ध से अलग होकर अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। वही अवस्था इस पहली अवस्था को दृढ़ करती है, जिससे आत्मा इस जगत में विचरता हुआ भी पद्म-पत्र की नाईं निर्लेप रहता है। क्योंकि वह अपने स्वरूप से बाह्य-जगत् की ओर, और बाहिर से अपने स्वरूप की ओर स्वतन्त्रता से आ जा सकता है।

[क्रमशः]

वेद-महिमा गान

लेखक—श्री पण्डित प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न, अजमेर

सर्वस्व आर्यों का सर्वगुण निधान है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है।

है ज्ञान, कर्म, भक्ति का उत्कृष्ट समन्वय
रहते हैं सर्व काल ये, हो सृष्टि वा प्रलय
निश्रेयसाभ्युदय का है साधन ये असंशय
फल चार का दाता है यही वेद चतुष्टय
यह तर्क युक्ति-पूर्ण विज्ञानानुकूल है।
सब काल सभी को ये सौख्य शान्ति मूल है
साहित्य सर्वमान्य वेद का पुनीत है
कल्पित कहानी ये गड़रिये का गीत है
हीरा है सच्चा वो, तू कांच समझा है जिसे
रे! देख वेद को तू वेद की ही दृष्टि से
मत-दीपों में कहीं जो चमकते हैं दिव्य कण
ज्योतित उन्हें है कर रही ये वेद-रवि-किरण
मत, पन्थ अन्य जितने भी प्रचलित हैं ये नूतन
हाँ! वेद सर्व श्रेष्ठ सभी से है पुरातन
प्रत्यक्ष यहाँ सृष्टि का सम्वत प्रमाण है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है॥

वेदों को मिटादे ये भला किसकी ताब है
है ज्ञान ये अक्षय न कोई ये किताब है
पानी में वेद ज्ञान कभी गल नहीं सकता
यह वेद आग में भी कभी जल नहीं सकता
वेदों के ग्रन्थ हाँ! विधर्म्मियों ने जलाये
हम्माम अपने गर्म कई साल कराये
पर, मूढ़ पक्षपातियों ने ये भी न जाना
ग्रन्थों का जलाना नहीं वेदों का जलाना
वेदों की ऋचा वृक्षों के पत्तों पर
फूलों पै फलों पर है वो चोटी पै जड़ों पर
मानव-समाज पशु व पक्षियों के गात पर
सागर, तरंग, सरिता-तटों, जल प्रपात पर
पर्वत व पर्वतों के गगन चुम्बी शिखर पर
ब्रह्माण्ड के कण कण पै भी हैं वेद के अक्षर
जिस काल ने मिटाये हैं यूँ लोक बृहत्तर
अक्षर अशुद्ध को ज्यों मिटा देता है रबर
वेदों को मिटा सकता न वो काल भयंकर
अंकित है वेद-वाक्य काल के भी भाल पर
हाँ! अमर ईश का ये अमर वेद-ज्ञान है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है॥

आर्यों ने वेद के लिये बलिदान किये हैं
हँसते हुए कराल गरल पान किये हैं
फांसी पं चढ़ गये प्रचण्ड अग्नि में जले
कुचले गये वो हाथियों के पांव के तले
लोहे के गर्म चिमटों से तन खाल खिचाई
जिह्वा कटाई आँख सलाखों से फुड़ाई
भालों कृपाणों बाणों से छिदवाये अङ्ग अङ्ग
जीवन के अन्त क्षण भी ये मन में रही उमंग
फिर जन्म लेंगे वेद का उद्धार करेंगे
अभिशाप, पाप, ताप अखिल जग के हरेंगे
हम आर्यों को वेद ही प्राणों का प्राण है
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है॥

है वेद की शिक्षा 'जियो औरों को जीने दो'
सुख, शान्ति का प्याला पियो औरों को पीने दो
है ओत प्रोत सारे ही ब्रह्माण्ड में ईश्वर
उसके हैं सब पदार्थ ये न भूल कभी नर
हां! त्याग भाव से सदा इनका प्रयोग कर
लालच के वशीभूत हो पर, धन कभी न हर
मुख से भला कहो, भला देखो भला सुनो
हां! साध्य भले के लिये साधन भले चुनो
सब के विचार एक हों आचार एक हो
होने न परस्पर घृणा, व्यवहार नेक हो
जीवन में ओत प्रोत ये वैदिक विचार हो
निश्चय मनुष्यता का चतुर्दिक प्रसार हो
प्राणी समस्त विश्व के होंगे सुखी अभय
बोलेंगे सभी प्रेम से वैदिक धर्म की जय
शिव, सत्य, सुन्दरम् 'प्रकाश' का ये गान है
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है॥

मधुर-लोक

१. मधुर-लोक अपने पाठकों और पाठिकाओं के जीवन को सुखी, शान्त एवं उन्नत बनाता है।

२. मधुर-लोक मनुष्य के दृष्टिकोण को उदार, स्वभाव को स्निग्ध और चरित्र को पवित्र बनाता है।

३. मधुर-लोक विश्वबन्धुत्व का प्रसारक है। इसके पढ़ने से मनुष्य की उत्तम शक्तियों का विकास और संवर्धन होता है।

४. मधुर-लोक में स्थायी महत्व की रचनाओं का प्रकाशन होता है। सुप्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों का सहयोग मधुर-लोक को प्राप्त है।

५. मधुर-लोक अपने पाठकों और पाठिकाओं के विचारों को अधिक महत्व देता है और प्रति मास उच्च कोटि की विचार सामग्री प्रस्तुत करता है।

६. मधुर-लोक देहली राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत, अध्यापकों, विद्यार्थियों और संसार के सभी मानवतावादियों का अपना, स्वतन्त्र मासिक पत्र है।

७. मधुर-लोक का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित चार रुपये मात्र है, जो कि प्रतिदिन के हिसाब से एक पैसे के लगभग है।

८. क्या आप मधुर-लोक के नियमित ग्राहक हैं? यदि नहीं तो आज ही मनी-आर्डर द्वारा चार रुपये भेजकर मधुर-लोक परिवार में अपना नाम जोड़िये और नियमपूर्वक स्वाध्याय-अमृत का पान कीजिये।

एक विशेष निवेदन

९. मधुर-लोक के प्रसार के लिये सभी नगरों में उत्साही वितरकों, प्रचारकों की आवश्यकता है। उचित कमीशन दिया जायेगा।

१०. मधुर-लोक के लिये धन भेजने और इसक विषय में पत्र-व्यवहार करने का पता—

प्रबन्धक, मधुर-लोक, आर्यसमाज मन्दिर,

सीताराम बाजार, देहली-६

मेरी धर्म-प्रचार-यात्रा

सब आर्य सज्नों को विदित हो कि मैंने स्वतन्त्र रूप में अपनी धर्म-प्रचार-यात्रा आरम्भ कर रखी है। अप्रैल ६६ ई० में मैंने अजमेर, अहमदाबाद और गान्धी-धाम की यात्रा की। अहमदाबाद में मैं बारह दिन रहा और वहाँ मेरे सोलह व्याख्यान हुए। प्रत्येक व्याख्यान दो-अढ़ाई घंटे तक चलता था। आर्य जनता ने मेरी सेवा को बहुत पसन्द किया। गान्धी-धाम में ज्ञानेन्द्रदेव सूफी नाम के एक तथाकथित आर्य उपदेशक ने आर्य समाज के विरुद्ध बहुत विष उगला, तब मुझे उसका सार्वजनिक रूप में विरोध भी करना पड़ा। आर्य समाज के अधिकारियों ने उसका प्रचार करवाने से भी इन्कार कर दिया।

मेरा यत्न एक-एक नगर में पाँच-पाँच, सात-सात दिन रहने और दोनों समय सत्संग लगाने का होता है। यदि कोई सज्जन वा समाज मुझे धर्म-प्रचार के लिए अपने नगर में बुलाना चाहें तो वे पत्र-व्यवहार करके, तिथियों का निश्चय करने की कृपा करें। जून मास के कार्यक्रम बन चुके हैं। यह भी ध्यान रहे कि मैं किसी संस्था, यज्ञ, यज्ञ-शाला वा पुस्तक आदि के लिये किसी से किसी प्रकार का चन्दा नहीं माँगता, विशेष भोजन या दक्षिणा के लिए झगड़ा नहीं करता और किसी प्रकार की फूट भी नहीं फैलाता। सुशिक्षित एवं धर्म-प्रेमी जनता मेरी सेवा को पसन्द करती है। जो सज्जन प्रचार का उत्तम प्रबन्ध कर सकें, वे ही बुलाने की कृपा करें।

जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

रण-भेरी

इस पुस्तक में नई-नई तर्जों के जोशीले भजनों का सुन्दर संग्रह है। भारत और चीन के युद्ध तथा भारत और पाकिस्तान के युद्ध का वर्णन भी इसकी कविताओं में है। नवयुवकों में प्रचार के लिये यह बहुत उपयोगी पुस्तक है। मूल्य—एक प्रति—०—२५ पैसे। एक सौ प्रतियाँ—२०—०० रुपये डाकव्यय पृथक्।

मधुर बाल-सभा

मधुर-बाल-सभा के सदस्यों के लये मुफ्त

- एक रुपये की पुस्तकों की भेंट।
- आपके चित्र का प्रकाशन।
- आपके नाम और पते का प्रकाशन।
- सदस्यता का प्रमाण पत्र।
- पत्र-मित्र सम्बन्ध।
- धार्मिक परीक्षाओं में प्रवेश।
- रचनाओं का संशोधन और प्रकाशन आदि।

अपने पुत्रों और पुत्रियों को, छात्र-छात्राओं को तथा आर्यकुमार सभा के सभी सदस्यों को प्रेरित करके आज ही मधुर-बाल-सभा का सदस्य बनाइये।

मधुर-बाल-सभा के नियम

१. मधुर-लोक की मधुर-बाल-सभा का वार्षिक सदस्यता शुल्क पाँच रुपये है, जो मनि-आर्डर से भेजना चाहिये। सदस्यता के आवेदन के साथ पाँच रुपये मनि-आर्डर द्वारा भेजकर अठ्ठारह वर्ष से कम आयु के सभी लड़के और लड़कियाँ मधुर-बाल-सभा के सदस्य बन सकते हैं।

२. मधुर-बाल-सभा के सभी सदस्यों को उनके सदस्यता-काल में मधुर-लोक नियम पूर्वक मिलेगा तथा एक रुपये मूल्य की उत्तम पुस्तकें भी उनको प्रति वर्ष बिना मूल्य भेंट की जायेंगी।

३. मधुर-बाल-सभा के सभी सदस्यों के फोटो चित्र, नाम और पूरे पते प्रति वर्ष एक-एक बार मधुर लोक में छपेंगे।

४. मधुर-बाल-सभा के सदस्यों की बाल-रचनाओं का संशोधन और प्रकाशन मधुर-लोक द्वारा होगा एवं उनके उचित प्रश्नों के उचित उत्तर भी प्रकाशित किये जायेंगे।

५. मधुर-बाल-सभा के सदस्यों के लिये बालोपयोगी रचनाओं का विशेष प्रकाशन भी मधुर लोक में होगा।

६. मधुर-बाल-सभा के सभी सदस्यों को सदस्यता के सुन्दर प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे जिनके आधार पर सभी सदस्य अपने पत्र-मित्रों की वृद्धि कर सकेंगे और मधुर-लोक द्वारा आयोजित धार्मिक परीक्षाओं में भाग ले सकेंगे। मधुर-बाल-सभा द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में भाग ले सकेंगे और मधुर-प्रकाशन के सभी प्रकाशनों को रियायती मूल्य में प्राप्त कर सकेंगे।

७. मधुर-बाल-सभा के सदस्यों को उचित है कि उत्तर के लिये डाक टिकट अथवा जवाबी कार्ड अवश्य भेजें। पत्र-व्यवहार और सदस्यता शुल्क तथा आवेदन-पत्र भेजने का पता इस प्रकार है—

सम्पादक, मधुर-लोक [मधुर बाल-सभा विभाग]
आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाज़ार, देहली-६

मधुर-बाल-सभा का सदस्यता-पत्र

(आवेदन-पत्र सादे कागज पर भी भेज सकते हैं)

श्रीमान् सम्पादक जी मधुर-लोक
[मधुर-बाल-सभा विभाग देहली-६]

श्रीमान् जी! नमस्ते, मैंने मधुर-बाल-सभा के नियम पढ़कर समझ लिये हैं। मैं उनको स्वीकार करता हूँ। करती हूँ। मेरा नाम मधुर-बाल सभा के सदस्यों में लिख लें। प्रथम वर्ष का सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनी आर्डर से। पोस्टल आर्डर से भेजा है।

ता०………… हस्ताक्षर…………

पूरा नाम…………

पूरा पता…………

डाकखाना…………

जिला…………

प्रदेश…………

शिशु गान

श्री सूरजसहाय त्रिपाठी "मनोज"
अध्यापक--गवर्न्मेंट हायर सैकेन्डरी स्कूल,
विनय नगर, नई देहली

बाल-कामना

तू है मेरी प्यारी मैया।
मैं हूँ तेरा कृष्ण-कन्हैया।
लिखते-पढ़ते रहते हैं हम।
फिर भी जी करता हैं हरदम।।
जंगल-जगल जिसे चराऊँ,
मुझको एक मंगा दो गैया।
तू है मेरी प्यारी मैया।।
प्रतिदिन तू मुझको नहलाती।
माल खिलाती, दूध पिलाती।।
मैं पढ़-लिखकर, कसरत करके।
वीर बनूँगा खरा लड़ैया।
तू है मेरी प्यारी मैया।।
वंशी मधुर बजाऊँगा मैं।
मीठे गीत सुनाऊँगा मैं।।
ग्वाल-बाल सब साथी होंगे।
दाऊ बन जायेंगे भैया।
तू है मेरी प्यारी मैया।।
जो है अपना गांव यह सुथरा।
यही है गोकुल, यही है मथुरा।।
चीनी-पाकी खल-दल का मैं।
बन जाऊँगा नाश करैया।।
तू है मेरी प्यारी मैया।।

रेल

देखो बच्चो आई रेल।
करती कितना सुन्दर खेल।।
खाती आग है पानी पीती।
चलती है दे करके सीटी।।
इंजन आगे-आगे जाता।
छक-छक करता धुआँ उड़ाता।।
ओहो! कोई स्टेशन आया।
लोगों ने है शोर मचाया।।
कुली-कुली चिल्लाता कोई।
पानी, दूध मंगाता कोई।।
रेल है इक सुखदायक यान।
बच्चो लो इसको पहिचान।।
इसमें हैं सारे आराम।
नहीं कष्ट का कोई काम।।
गरम पकौड़ी पूरी वाला।
लस्सी रोटी चाय का प्याला।।
जो जो में आये वह ले लो।
पर कुछ पैसे भी तो खोलो।।
कुछ उतरे कुछ नये मुसाफिर।
आ बैठे गाड़ी के भीतर।।
गार्ड साहब ने सीटी दे दी।
देखो-देखो! गाड़ी चल दी।।
इधर उधर के खेत मैदान।
पीछे भाग रहे नादान।।
सुन्दर-सुन्दर नये नजारे।
हमको लगते प्यारे-प्यारे।।
झंडी हरी दिखाने वाले।
सिर पर टोप लगाने वाले।।
कहलाते हैं गार्ड बाबू।
ये रखते हैं रेल पै काबू।।
दौड़ी-दौड़ी चलती रेल।
कैसा मजेदार है खेल।।
रेल है चलता फिरता घर।
नहीं कोई भी इसमें डर।।
एक बात है खास यह देखो।
जब कभी आप रेल में बैठो।।
पहले टिकट खरीदो भाई।
नहीं तो होगी जगत-हंसाई।।

कुत्ता—कहानी

लेखक—जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

[१]

सन् १९३९ में मैंने दो मास तक आर्य समाज ओकाड़ा मण्डी जिला मिन्टगुमरी में रहकर वेद प्रचार का कार्य किया था। श्री ला० सुखानन्द जी प्रधान आर्य समाज ओकाड़ा बहुत सम्पन्न और आर्य सिद्धान्तों के मर्मज्ञ एवं उदार सज्जन थे। एक दिन मैं सायंकाल के समय उनके घर पर भोजन करने गया। भोजन बहुत उत्तम बना था। बैठने-परोसने आदि का प्रबन्ध भी अच्छा था। परोसने वाले युवक ने मेरे "नहीं-नहीं कहने पर भी एक परौंठा अधिक मेरी थाली में डाल दिया। उसे खा लेना मेरे बस में न था। थाली में छोड़ना भी मैं ठीक न समझता था। कमरे में मैं अकेला ही था। मेरे सामने घर का पालतू बहुत सुन्दर कुत्ता बैठा मुझे देख रहा था। वह बीच-बीच में दुम भी हिलाता जाता था। मैंने उसे एक टुकड़ा डालने का विचार किया था। परन्तु वह बचा हुआ पूरा परौंठा मैंने उस कुत्ते के आगे डाल दिया। कुत्ते ने उसे सूँघा तो सही; परन्तु खाया नहीं। क्यों? यह मैं कभी ठीक-ठीक समझ ही न सका। शायद कुत्ते को भूख ही न होगी या उसे परौंठा खाने का अभ्यास न होगा, या वह कोई परौंठ से भिन्न अथवा बढ़िया भोजन खाता होगा। तब मुझे तृतीय-श्रेणी [सी क्लास] के राजनैतिक बन्दियों का वह गाना याद आया था, जिसके बोल हैं—

अमीरों के जिन्हें कुत्ते बड़ी मुश्किल से खायेंगे।
असीरान-ए-वतन वे रोटियां खुश होके खाते हैं॥

[२]

सन् १९४१ के जौलाई-अगस्त में मैं डेढ़ मास तक आर्य समाज लक्कड़ बाजार शिमला में रहा था। प्रातःकाल के समय समाज में ऋग्वेद से बृहद् यज्ञ का अनुष्ठान प्रतिदिन चलता था। फिर मेरा प्रवचन होता था। दोपहर के भोजन के पश्चात् मैं सैर-सपाटे के लिए जंगलों पहाड़ों में निकल जाता था। एक अच्छे साथी मुझे वहाँ मिल गये थे। नाम था उनका पण्डित रामकृष्ण जी वे एक शुद्धि-संगठन के प्रचारक थे। जहां-तहाँ घूम-फिर कर तथा गरीबों और तथाकथित अछूतों के घरों में जाकर यज्ञोपवीत बाँटा करते थे। जिस किसी को यज्ञोपवीत देते थे, उसका नाम, पता आदि लिख लेते थे और उसके हस्ताक्षर अथवा अंगूठे का निशान भी ले लते थे। उनका कथन था कि इसी काम के लिए उनको शुद्धि-संगठन वालों ने शिमला भेजा है। इस चमत्कारपूर्ण रीति से उन्होंने कई हजार लोगों को शुद्ध कर डाला था। कभी-कभी मैं और पण्डित रामकृष्ण जी किसी सुन्दर सड़क या बाजार के किनारे बैठकर आने-जाने वाले देसी और विदेशी साहिबों तथा देशी और विदेशी मेमों, राजाओं, रानियों, रईसों सर सिकन्दर हयात खां और उनके वजीरों तथा उच्च राज्याधिकारियों और सेठ-साहुकारों को पैदल आते-जाते देखा करते थे। उन सभी के साथ-साथ उन-उनके, तरह-तरह के कुत्ते-कुत्तियाँ भी होते ही थे। कभी-कभी तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता था कि शिमले में जितने नर-नारी रहते हैं, उतने ही फैंसी कुत्ते और कुत्तियाँ भी रहते हैं। आश्चर्य की बात यह देखने में आई कि वे कुत्त-कुत्तियाँ आपस में लड़ते, काटते, गुर्राते, भौंकते न थे। एक दूसरे को छेड़ते न थे। कभी-कभार, कोई-कोई एक दूसरे को थोड़ा-सा सूंघ भर लेते थे और अपने-अपने मालिक मालिकन के साथ आगे बढ़ जाते थे। शिमले में मोटरों का व्यवहार तो कभी-कभी ही होता है। सवारी के लिये रिक्षा का उपयोग भी कम ही होता है। शिमले के अमीरों के कुत्तों में हमारे

ग्रामीण कुत्तों जैसे गुणों का तो सर्वथा ही अभाव था। उन दिनों मैं अपने व्याख्यानों में कहा करता था कि कुत्ते आपस में लड़ा करते हैं और उनमें फूट की बीमारी पाई जाती है। शिमले के सुसभ्य कुत्तों को प्रत्यक्ष देखने के बाद मैंने समझा कि असभ्य और भूखे कुत्ते ही आपस में लड़ते-झगड़ते हैं।

[३]

सन् १९६२ ई० में प्रोफेसर बाबूलाल दीक्षित एम० ए० की पुत्री का विवाह-संस्कार करवाने अतरौली गया था। विवाह के तीसरे दिन मैं नगौला ग्राम में जाने के लिये काली नदी के पुल के पास आर्य-जगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वर्गीय स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज द्वारा संस्थापित साधु आश्रम (हरदुआगंज) पहुंचा। यह आश्रम जिला अलीगढ़ में ही नहीं, अपितु आस-पास के कई जिलों में जागरण और प्रचार का प्रधान केन्द्र है। नागौला आर्य समाज के पुराने उपदेशक श्री ठाकुर सौवरणसिंह जी का गाँव है। मैंने कई वर्ष पूर्व उनके गांव में जाने का वायदा किया था, वह मैं पूरा करना चाहता था। नगौला जाने का दूसरा प्रेरक हेतु यह था कि अपने बचपन में मैंने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के एक उपदेशक ठाकुर-वीरेन्द्र जी से आर्य समाज की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। उनका देहान्त सन् १९३२ में हो हो गया था। वे भी नगौला के ही निवासी थे। उनके गांव में जाकर मैं उनका पुण्य स्मरण करना चाहता था।

साधु आश्रम में पूज्य स्वामी हरिहरानन्द जी, श्री पण्डित महावीर जी एम० ए०, व्याकरणाचार्य तथा श्री पंडित रामकिशोर जी साहित्याचार्य आदि सज्जनों से भेंट हुई। आश्रम मे एक छोटे गुरुकुल के रूप में एक संस्कृत पाठशाला है। उनके अनुरोध को मानकर मैं उस दिन आश्रम में ही रहा था। दूसरे दिन नगौला गया था। शाम को विद्यार्थी उधर रसोईघर के पास भोजन करने बैठे। मैं पूज्य स्वामी हरिहरानन्द जी की कुटिया के बाहर बैठकर भोजन करने लगा। पूज्य स्वामी जी ने मुझे यह एतिहासिक बात बताई कि यह सामने वही पाक-शाला है, जिसका एक पाचक अपने पुरुषार्थ के द्वारा पहिले राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री और फिर आर्य समाज का मूर्धन्य नेता अखण्ड ब्रह्मचारी परम पूज्य १०८ श्री स्वामी ध्रुवानन्द बने! खेद है कि गत वर्ष स्वामी जी का देहान्त हो चुका है। स्वामी जी ज्ञानवर्धक बातें बताते थे। मेरा ध्यान बार-बार आश्रम की उस कुतिया पर केन्द्रित हो जाता था, जो मेरी थाली की तरफ बढ़ रही थी। मैं उसे बार-बार लाठी दिखाता जाता था और डर रहा था कि कहीं वह मेरी थाली को खराब न कर दे। मुझे व्यस्त देखकर आचार्य महावीर जी बोले—"यह कुत्तिया ऐसे न जायेगी, टुकड़ा लेकर ही जायेगी। इसे टुकड़ा डाल दीजिए, चली जायेगी।"

मैंने कहा—"यह उधर क्यों नहीं जाती, जिधर विद्यार्थी भोजन कर रहे हैं।"

उन्होंने सहजभाव से उत्तर दिया—"विद्यार्थियों की रोटी तो बिना चुपड़ी होती है। इसे पता है कि आपकी रोटी चुपड़ी हुई है। बिना चुपड़ी रोटी यह नहीं खाती।"

उनके शब्द क्या थे? मानो किसी ने मेरे मुँह पर घूंसा दे मारा। मुझे भारी आघात लगा। भोजन करना मेरे लिये कठिन हो गया। मैं सोचने लगा—"ये वेद, दर्शन, व्याकरण और साहित्य के भावी विद्वान् हैं, जो रूखी रोटियाँ चबा रहे हैं, ऐसी रोटियां जिनको यह कुतिया भी नहीं खाती।"

अब तो आश्रम में बड़े सुन्दर-सुन्दर बंगले भी बन गए हैं। घी-दूध आदि की उचित व्यवस्था भी अवश्य ही हो गई होगी।

नई योजना ! नई घोषणा !!

'मधुर-लोक' मुफ्त मिलेगा

ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता। शीघ्रता कीजिये !

१—जो सज्जन 'मधुर-लोक' के पाँच ग्राहक बनाकर उनका वार्षिक मूल्य बीस रुपये भिजवा देंगे, उनको एक वर्ष तक 'मधुर-लोक' मुफ्त मिलेगा।

२—जो नीचे लिखी पुस्तकों में से कम से कम पन्द्रह रुपये की पुस्तकें एक साथ मंगवायेंगे, उनको 'मधुर-लोक' एक वर्ष तक बिना मूल्य मिलेगा। पुस्तकों का मूल्य मनि-आर्डर से आना आवश्यक हैं। डाक व्यय माफ होगा। जो पुस्तकें समाप्त हो जायेंगी, वे नहीं भेजी जा सकेंगी। सभी पुस्तकें नई और अच्छी हालत में हैं। अधिक प्रतियाँ मंगवाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

सचित्र रस-शास्त्र	१२.००	संध्या माता	०.५०	मधुर सामान्य-ज्ञान	०.७५
वैदिक-प्रवचन	२.२५	चलते पुर्जे	२.००	संस्कार चन्दिका (प्रथम भाग)	४.००
ईश्वर-दर्शन	१.५०	जीवन में खेलो	२.००	संस्कार चन्द्रिका (द्वितीय भाग)	३. ०
दृष्टान्त-मंजरी	२.००	विदेशों में एक साल	२.२५	स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा	०.२०
यमनियम-प्रदीप	१.५०	मनोविज्ञान शिव संकल्प	३.५०	हित की बातें	०.१५
उर्मिल-मंगल	०.५०	ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२.५०	दन्त-रक्षा	०.२०
मातृ-मन्दिर	०.५०	संस्कृतांकुर	१. ५	बन लो हीरे	१.००
शिबा-बावनी	०.७५	छात्रोपयोगी विचारमाला	०.२५	ब्रह्मचर्यामृत	०.२०
महर्षि-दयानन्द	०.५०	वैदिक-धर्म-परिचय	०-६५	वैदिक-पथ	१.२५
कलियात आर्य मुसाफिर	६.००	ब्रह्मचर्य-साधन के १० भाग	४.४५	आत्मानन्द लेखमाला	१.२५
श्रुति-सुधा	०.२०	स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	१.२५	मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.२५
वैदिक-प्रार्थना	१.५०	संस्कृत वाङ्मयका सं० परिचय	०.५०	मधुर हिन्दी निबन्ध माला	०.८०
वैदिक-युद्धवाद	१.००	हम संस्कृत क्यों पढ़ें ?	० ३७	बाल शिष्टाचार	१.५०
वैदिक-प्रवचन माधुरी	१.००	हितैषी-गीता	०.७५	विरजानन्द चरित	१.५०
विचित्र जीवन १०१	८.००	श्रुति सूक्ति शती	०. ०	भोज-प्रबन्ध	२.५०
अपने-अपने मुंह से	२.००	आसनों के व्यायाम	०.६०	चाणक्य-नीति	१.२५
कर्म और भोग	१.००	नित्यकर्म विधि	०.२५	विदुर-नीति	१.५०
धर्मवीर पं० लेखराम	१.२५	वैदिक मनुस्मृति	४.५०	पुष्पावली	०.५०
मेजिनी, (महात्मा)	१.००	आर्य सिद्धान्त दीप	१.२५	उपदेश-मंजरी	२.५०
महात्मा, मार्टिन लूथर	१.००	बनो लाल अनमोल	२.००	सत्यार्थ प्रकाश	२.५०
आर्य शिक्षावली	०.६३	ओंकार भजन माला प्रति सैकड़ा	[illegible].००	कर्त्तव्य-दर्पण	१.२५
कृषि-विज्ञान	०.७५	आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००	रण-भेरी	०.२५

मधुर-प्रकाशन, आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक ने श्री महामाया प्रिंटर्स, देहली में छपवाकर मधुर-लोक कार्यालय, सीताराम बाजार, देहली से प्रकाशित किया।

मधुर-लोक

सदाचार, वेदवाद,
मनोविज्ञान और नव-निर्माण
का
मासिक पत्र

वर्ष १ अंक १०

अगस्त, १९६६ ई०

देश में वार्षिक मूल्य चार रुपये
दो वर्ष का मूल्य सात रुपये
तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपये
एक प्रति ४० पैसे
विदेश में दस शिलिंग वार्षिक

संचालक और सम्पादक
राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक कार्यालय
आर्य समाज मन्दिर
सीताराम बाजार, देहली-६

23-8-66

प्रगति का पथ

परिस्तृणीहि परि धेहि वेदों, मा जामिं मोषीरमुया शयानम्,
होतृषदनं हरितं हिरण्यं, निष्काएते यजमानस्य लोके ।।
अथर्व० ७। ९९। १

(परिस्तृणीहि) परिमार्जन करो । (वेदिम्) वेदी को (परि धेहि) सुसज्जित करो, धारण करो । (अमुया) उस (शयानम्) सोई हुई, अविद्या में फंसी हुई (जामिम्) स्त्री को, अथवा जनता को (मा मोषी:) मत ठगो ।

(होतृषदनम्) यज्ञशील मनुष्य का घर (हरितम्) हरा-भरा और हिरण्यम्) शोभा एवं धन-धान्य से परिपूर्ण [होता है।] (यजमानस्य यजमान=शुभकर्म करने वाले के (निष्का:) सिक्के, निशान=झण्डे (लोके) संसार में (एते) चलते हैं, आगे बढ़ते हैं, ऊपर उठते हैं।

(१) परिमार्जन=सफाई करो। पवित्रताओं का सम्पादन करो। (२) वेदी तैयार करो। वेदों की सजावट करो। शुभ कर्मों का सम्पादन करने के लिए अनुकूल वातावरण और उचित स्थान का प्रबन्ध करो। अपने शरीर को पुष्ट करो । (३) यजमान् की इस भोली-भाली स्त्री को मत ठगो। इस प्रसुप्त और अबोध जनता को न ठगो। (४) यजमान का घर हरा-भरा और सुन्दर होता है। (५) संसार मे यजमानों अर्थात् शुभकर्मकर्त्ताओं के नाम के सिक्के चलते हैं।

झण्डे दुनिया में उनके गड़े हैं।
सीस जिनके धर्म पर चढ़े हैं।।

— साधु सोमतीर्थ

❀ ओ३म् ❀

मधुर-लोक

अगस्त, सन् १९६६ ई०

एक शुभ समाचार

आर्यसमाज और वैदिक-धर्म के सभी प्रेमियों को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि पंजाब की दोनों आर्य प्रतिनिधि सभाओं,अर्थात् आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब गुरुदत्त भवन जालन्धर और प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब हंसराज भवन जालन्धर को वैधानिक रूप में एक बनाने और आपस में मिलाने का काम विधिपूर्वक आरम्भ हो गया है और दोनों सभाओं के माननीय प्रधान श्री प्रोफेसर रामसिंह जी और श्री यश जी एवं दोनों सभाओं के सभी माननीय अधिकारी और सदस्य इस समय दोनों सभाओं के एकीकरण की घोषणा करने की तैयारियां कर रहे हैं। अब वह सुनहरी दिन शीघ्र ही आने वाला है जब कि हम सब यह घोषणा सुनेंगे और आर्य समाजके इतिहास में एक सर्वाधिक महत्व पूर्ण अध्याय की अभिवृद्धि होगी।

जहाँ तक सिद्धान्तवादिता, कार्य-शैली, संस्थावाद, खान-पान, आदि का सम्बन्ध है, दोनों सभाओं में कोई भेद नहीं है। सचमुच वह समय बहुत मनहूस था, जब महर्षि दयानन्द जी के निर्वाण के कुछ काल पश्चात् ही पंजाब के आर्यों में फूट की बीमारी फैली थी और आर्य समाज के माथे पर कलक का टीका लगा था, और लगा था आर्य समाज की प्रगति को एक भारी धक्का। मगर गड़े मुर्दे अब नहीं उखाड़े जायेंगे। वह कलक अब शीघ्र ही धुल जायेगा। आर्य समाज के प्रकर्ष का मार्ग अब अधिकाधिक प्रशस्त होगा।

धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर के अमर बलिदान की घटना के घटित होने पर पहले भी दोनों सभाओं का एकीकरण हुआ था। कुछ लोगों ने रंग में भंग करके तब बनी बनाई बात बिगाड़ दी थी। हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह में दोनों सभायें एक थीं और हिन्दी सत्याग्रह में भी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से भी दोनों का ही सम्बन्ध है। अब जो नाममात्र का वैधानिक भेद है वह भी हट जायेगा। यद्यपि विलम्ब हो चुका है, फिर भी शुभ और परमावश्यक निर्णय अब हो रहा है।

—राजपाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक का व्यवहार धर्म

१. मधुर-लोक का प्रकाशन प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में होता है। यदि किसी ग्राहक को महीने की बीस तारीख तक भी अंक न मिले, तो सूचना मिलने पर दूसरा अंक भेजा जायेगा।

२. मधुर-लोक का एक वर्ष का मूल्य चार रुपए, दो वर्ष का मूल्य सात रुपए और तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपए है।

'मधुर-लोक' के आजीवन ग्राहक

३. जो सज्जन एक सौ रुपये भेजकर मधुर-लोक के ग्राहक बनेंगे, उनको 'मधुर-लोक' के सभी अंक और विशेष-अंक, तब तक मिलते रहेंगे, जब तक कि 'मधुर-लोक' निकलता रहेगा। यदि किसी कारण-वश 'मधुर-लोक' दस वर्ष से पहिले ही बन्द हो जायेगा, तो आजीवन सदस्यों को उनका पूरा धन लौटा दिया जायेगा।

४. 'मधुर-लोक' में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि सामग्री—सम्पादक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये। लेखों के सम्पादन, संशोधन और प्रकाशन या अप्रकाशन का अधिकार सम्पादक को है।

५. प्रबन्ध विषयक पत्र, वार्षिक मूल्य तथा विज्ञापन आदि का धन—प्रबन्धक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये।

६. उत्तर के लिए जवाबी कार्ड या पत्र भजिये।

७. मधुर-लोक में विज्ञापन छपवाने की दर—

एक पृष्ठ	४०.००	चौथाई पृष्ठ	१५.००
आधा पृष्ठ	२५.००	पृष्ठ का आठवां भाग	१०.००

८. वर, वधू, उपदेशक, पुरोहित, अध्यापक या चपरासी आदि की आवश्यकता के विज्ञापन का शुल्क—५.००

९. विशेष अंकों की विज्ञापन दर पृथक् होगी।

१०. विशेष बातों का निश्चय पत्र-व्यवहार से कीजिए।

निवेदक :—प्रबन्धक, मधुर-लोक

आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

ऋषि और हम

लेखक श्री पी. एस. कुण्डु, आयुर्वेदिक डिग्री कालिज, अस्थल बोहर, रोहतक

इस विषय पर तुलनात्मक दृष्टिपात करने से सूर्य और दीपक की सी स्थिति प्रतीत होती है। ऋषि जी के पथ का अवलम्बन न करके आज हमने अपनी वह हास्यास्पद स्थिति पैदा कर ली है, जिसे देखकर सिर लज्जा से झुक जाता है।

ऋषि जी ने "आर्यावर्त-निर्माता" के रूप में आर्य-जनों के संगठन का निर्माण किया था जिसे आज 'आर्य समाज' कहा जाता है। यह निर्माण उस परमपूजनीय वीर सपूत ने उस समय प्रारम्भ किया था जब पाखंडी दानव, अविद्या के द्वारा आर्यावर्त की जनता को पथभ्रष्ट कर रहे थे, जब वेदों का ज्ञान लुप्त प्रायः हो चुका था, जब हम वेदमार्ग को त्यागकर अन्धकारमय तथा कण्टकपूर्ण मार्ग को ग्रहण कर रहे थे। धन्य है उस दण्डी सन्यासी को जिसने प्यारी आर्यजननी का मस्तक ऊँचा कर दिया, एक शक्ति को निर्मित कर दिया जिसे 'आर्य समाज' की संज्ञा दी जाती है।

ऋषि जी अकेले थे, अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ी, अनेक झड़पें लेंनी पड़ी, अनेक इच्छाओं को कुचलना पड़ा परन्तु अविचलित ऋषि अपने पथ पर अग्रसर होते चले गये और परिणाम यह हुआ कि विरोधी भी ऋषि जी के झण्डे के नीचे आ गए जिसके कारण उस समुदाय ने आर्य समाज की भव्यता में सहयोग दिया।

परन्तु क्या आज हम ऋषि जी के पद चिह्नों पर चल रहे हैं? क्या उनके अवशिष्ट कार्य को पूरा करके उनके स्वप्नों का भारत साकार करने में कृत संकल्प है? इन प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है। तो क्या ऋषि जी के द्वारा किया गया यह समुद्रमन्थन के समान विकट कार्य निरर्थक जायेगा? नहीं, इसे आर्य वीरों ने आगे बढ़ाना है। आज उच्च कोटि के विद्वान भी चिन्तित हैं कि हम आगे क्यों नहीं बढ़ रहे? यह सत्य है कि आगे बढ़ने से हमें अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है परन्तु इन सब पर "ओ३म्" की विजय-पताका लहराते हुए हमें आगे बढ़ना है क्योंकि ऋषि जी ने हमें पीछे हटना नहीं सिखाया।

ऋषि जी ने "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' रूपी दृढ़ संकल्प पूरा करने के हेतु हमें सौंपा था जिसका कुछ ही अंश पूरा हुआ है। प्रश्न उठता है कि क्यों नहीं हुआ? उत्तर स्पष्ट है कि जो स्वयं आर्य नहीं वह दूसरों को क्या आर्य बनायेगा। अनेक समाज मन्दिरों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जहाँ पुरातन आर्य सदस्य ही दृष्टिगोचर होते हैं।

जब संख्या न बढ़ने का कारण पूछा जाता है तो उत्तर मिलता है कि सदस्यों की संख्या तो बढ़ी है पर वे सत्संग में नहीं आते। इस उत्तर को दूसरे शब्दों में यूँ कह सकते हैं कि वे बिना नींव के बनाये गए भवन हैं। यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता कि जिसे समाज के सत्सङ्ग का ज्ञान हो जाये वह वहां उपस्थित रहे। यहां तो उस आनन्द और सन्तोष की प्राप्ति होती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। समझ नहीं आता कि यदि हम आर्य बनने में यत्नशील हैं तो यह असुरी-वृत्ति क्यों बढ़ रही है? ऋषि जी द्वारा निषिद्ध की गयी पाठ्य-पुस्तकों को देश-प्रसिद्ध गुरुकुलों में पढ़ाकर ऋषि के कथन की क्यों उपेक्षा की जा रही है?

इस लेख की पुष्टि के लिए गत मास में घटित हुए समाचार सहायक हो सकते हैं अर्थात् आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब तथा आर्य प्रतिनिधि सभाओं का पुनर्मिलन। अब शीघ्रमेव पूज्य श्री राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक मधुर-लोक, के मतानुसार एक सर्वसत्तासम्पन्न 'आर्य-आयोग' का गठन कर देना चाहिए तथा समाज में पनपी हुई बुराइयों को दूर कर देना चाहिए जिससे कि भूत में की गई भूलों के दुष्परिणाम का निराकरण हो सके। हम अपने

निज स्वार्थों की पूर्ति हेतु समाज में जो शत्रुता का नाटक प्रस्तुत करते हैं और प्रतिद्वन्द्वी की अवनति की इच्छा करते रहते हैं वह बन्द होना चाहिए क्योंकि वेदानुसार सबको मित्र की दृष्टि से दखने का निर्देश मिलता है। जैसा कि—

दृते दृहं मामित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहँ चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

आश्चर्य होता है कि ऋषि जी के महान् कार्यो के देखकर। उस अखण्ड ब्रह्मचारी ने अकेले ही आर्यावर्त की दशा पलट दी जिसे देखकर आज सारा संसार आश्चर्यान्वित हो रहा है! ऋषि जी पहले स्वयं आर्य बने थे, पहले स्वयं को उन्नत किया था पहले स्वयं ज्ञान की अग्नि में तपे थे, तब इस महान कार्य को करने में सफल हुए थे!

ऋषि जी के अवशिष्ट संकल्प को पूरा करने की हमें प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए। पाकिस्तान और चीन के मोर्चों के समान हमें 'इसाइयत' के मोर्चे पर भी लड़ना है और यदि उनके दर्शित किए गये मार्ग का अनुसरण करते रहे तो अन्ततः 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का संकल्प साकार हो उठेगा।

ऋषियों की सन्तान है प्रताप आर्यों का बढ़ायेंगे।
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का स्वप्न साकार बनायेंगे॥

रचनाकार—श्री दिवाकर प्रकाश 'दिवाकर'

बचपन

भेद न मिट्टी काँचन में,
कोई छोटा-बड़ा नहीं,
घुटनों के बल चले बिना,
कोई होता खड़ा नहीं।
कली-कली में किलक रहा,
आँगन-आँगन मचल रहा,
जीवन का यह प्रथम चरण,
और नहीं कुछ बचपन है।

यौवन

फूल-फूल में फूल रहा,
ऊपर-ऊपर उड़ता है,
आकांक्षा अरमानों का,
प्रतिपल मेला जुड़ता है।
नगन-नयन में गाता है,
आगे देख न पाता है,
मस्ती है, अल्हड़पन भी,
और नहीं कुछ यौवन है।

बुढ़ापा

जीर्ण-शीर्ण है वेश हुआ.
तनतरु पर पतझर छाया,
गात-पात, पीले-पीले,
और न कुछ बूढ़ापन है।

Directorate of Education : Delhi

(Social Education Branch)

D.E.V.2। Store-SE-lib-Books-65-66

Dt. the 2. 3. 66

To

The Editor
Madhur Parkashan.
Arya Samaj Mandir Bazar, Sita Ram
Delhi

Memo.

The Director of Edu. Delhi has been pleased to approve your following publications for the school Libraries and Reading Rooms during the year 1965-66.

The Schools will be informed later on

१. मधुर संस्कृत निबन्ध माला
२. वैदिक-प्रार्थना
३. वैदिक-प्रवचन
४. मधुर-लोक—मासिक पत्रिका

हस्ताक्षर... (B. R. Vyas)
सहायक संचालक शिक्षा (समाज शिक्षा)
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली

स्त्री समाज और शिक्षा

रामपाल सिंह आर्य, एच० ए० वी० इन्टर कालिज, देवबन्द

"एक नहीं दो-दो मात्रायें नर से भारी नारी।" उपरोक्त उक्ति के अनुसार न केवल आलंकारिक रूप से बल्कि वास्तविक रूप में नारी का महत्व पुरुष की अपेक्षा अधिक है। इसका प्रधान कारण यह है कि नारी जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव के साथ रहती है। बाल्यवस्था में माता बनकर उसको अच्छी-अच्छी शिक्षा देकर उच्च और विशाल बनाती है। उसे भावी देश का सुयोग्य नागरिक बनाती है। युवावस्था में पत्नि बनकर एक विज्ञ एवं विवेकशील मित्र के रूप में अपने पति को सुमन्त्रणा देकर उसको कर्तव्यों का पालन करने में सहयोग देती है। वृद्धावस्था में वह अपने अगाध प्रेम के द्वारा मानव को शांति प्रदान करती है। तभी तो हमारे धर्म-ग्रन्थों ने भी "यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती हैं वहां देवता निवास करते हैं कहकर उसके महत्व का उद्घोष किया है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही नारी को उच्च स्थान दिया गया है। स्त्री को अर्द्धांगिनी कहकर समान अधिकार प्रदान किये हैं। इतना ही नहीं नारी को शक्ति मानकर उसकी उपासना की गई है —

"या देवी सर्व भूतेषु; सर्व रूपेण संस्थिता।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते; नमो नमः॥"

भारतीय समाज एक संस्कृति प्रधान समाज रहा है और सदा से ही उसने नारी का मूल्यांकन भोग विलास के रूप में न करके उसे पारिवारिक जीवन की भी और अधिष्ठात्री मान कर उसपर श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं। कवि जयशंकर प्रसाद जी ने इन्हीं बातों को देखकर कहा था—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पद तल में।
पीयूष श्रोत सी बहा करो; जीवन के सुन्दर समतल में॥"

स्त्री और पुरुष गृहस्थ रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। जिस प्रकार गाड़ी को निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचाने के लिए दोनों पहियों के सुचारु रूप से चलते रहने की महती आवश्यकता है ठीक उसी प्रकार मानव समाज व देश की उन्नति के लिए स्त्री और पुरुष दोनों के सुशिक्षित होने की आवश्यकता है। स्त्री शिक्षा की आवश्यकता का वर्णन करते हुए एक कवि ने ठीक ही कहा है—

"नारी यदि शिक्षिता न होगी,
कैसे देश महान बनेगा।
अपने यश गौरव का,
कैसे कीर्ति वितान बनेगा॥
है कलंक अपने समाज का,
मूर्ख और अज्ञानी नारी।
शिक्षा का आलोक मिले तो,
पूरी करदे आशा सारी॥"

नवजात शिशु की प्रथम शिक्षिका उसकी माता ही होती है क्योंकि प्रथम शिक्षा ही शिशु के भावी जीवन के निर्माण की आधार शिला होती है। यह नितान्त आवश्यक है कि प्रथम शिक्षा उसे उच्च कोटि की मिलनी चाहिए। यह तभी संभव है कि जब मातृत्व के पद पर आसीन स्त्री समाज शिक्षित हो। बालक पर माता का जितना प्रभाव पड़ता है उतना अन्य किसी का नहीं। संसार के अधिकांश महापुरुषों के निर्माण में उनकी माताओं का विशेष हाथ रहा है। नैपोलियन; महात्मा गांधी; छत्रपति शिवाजी आदि को माताओं ने ही उन्हें योग्य एवं महान् बनाया था। माँ की एक-एक बात बालक के लिए ब्रह्म वाक्य बन जाती है। अतः यह निर्विवाद है कि किसी भी देश को अपने भावी नागरिकों की शिक्षा और समुन्नति के लिए सर्व प्रथम नारी जाति को सुशिक्षित बनाना चाहिए।

कुछ अंध विश्वासी लोग स्त्रियों को शिक्षा दने में हिचकिचाते हैं। प्रथम उनका कहना है कि हमें स्त्रियों से नौकरो तो नहीं करानी जो उन्हें पढ़ाया जाए।" शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी नहीं होती। सब पुरुष भी केवल नौकरी के लिए नहीं पढ़ते। जो शिक्षा हमें नौकरी योग्य बनाती है वह तो वास्तविक शिक्षा ही नहीं है। दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि "शिक्षा स्त्रियों को पथभ्रष्ट तथा विलासी बना देती है।" इस दोष का उत्तरदायित्व शिक्षा पर नहीं बल्कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पर है। अत. यदि इस प्रणाली में परिवर्तन किया जाये तो आधुनिक नारी देश तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर अपना आदर्श उपस्थित कर सकेगी।

अब प्रश्न उठता है कि स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए जो इनके लिए हित-कारिणी हो। यदि हम स्त्री-पुरुष के कार्य-क्षेत्र तथा स्वभाव को देखकर इनकी शिक्षा के प्रचार के अंतर को समझ लें तो हमें स्त्री-शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण करने में बड़ी सुविधा होगी। स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर से बाहर कम है। उनके जीवन का अधिकांश भाग घर के भीतर काम में व्यतीत होता है। गार्हस्थ्य कार्यों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम निर्माण कार्य, द्वितीय स्वच्छता सम्बंधी कार्य और तृतीय पोषण-कार्य। निर्माण काल में भोजन बनाना, सिलाई आदि कार्य, स्वच्छता सम्बंधी कार्यों में घर की सफाई, घर की सजावट करना, कढ़ाई, चित्रकारी आदि कार्य तथा पोषण-कार्यों में शिशु-पालन, रोगी परिचर्या आदि कार्य आते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे उनके इन उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। इस-लिए महिलाओं की पाठ्य विधि में पाक-शास्त्र, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, चित्र कला, साधारण चिकित्सा, शरीर विज्ञान, संगीत कला, प्राथमिक सहायता आदि विषयों को प्रमुखता देनी चाहिए। इनके अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा का समावेश भी होना चाहिए जिससे उनमें त्याग तथा कर्तव्य पालन की भावना बढ़ेगी।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्री शिक्षा को यहीं तक सीमित रखा जाये। इतिहास हमें बताता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयोगी प्रतिभा के कण स्त्री-समाज में विद्यमान हैं। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान धार्मिक, लेखिका, जज, वकील और यहाँ तक कि सैन्य का शृंगार बन चुकी है। अतः इनकी शिक्षा में ऐसे सभी तत्व होने चाहिए जिनके द्वारा वह अपनी प्रवृत्तियों के सम्यक् विकास करे किंतु उनकी शिक्षा से उनके गृहणी पद की अनुरूपता को प्राप्त करने वाली शिक्षा के प्रमुख तत्वों को सर्वथा अलग कर देना ठीक नहीं। सहानुकूल शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए अकबर इलाहाबादी ने क्या खूब कहा है—

"तालीम लड़कियों की गरचे बुरी नहीं।
खातूने खाना हो, सभा की परी न हो।"

हमारे देश में स्त्री-शिक्षा की बहुत कमी है परन्तु जो नारियाँ शिक्षित हैं वे अधिकांश पाश्चात्य संस्कृति का शिकार बनी हुई हैं। उनमें चरित्रहीनता, फैशन, कृत्रिम सज्जा आदि अवगुण घर कर गये हैं। अतः प्रधान आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री शिक्षा का उतार किया जाये तथा साथ ही साथ शिक्षा प्रणाली को दूषित पाश्चात्य प्रक्षावों से मुक्त करके उसे भारतीय आदर्शों से पूर्ण किया जाए। समय की पुकार है—

"चिर निद्रा को कर व्यक्त,
आज है भारतीय पावन नारी।"

श्री ज्ञानी

पुस्तक-प्रेमी

१—पुस्तक-प्रेमी बहुत प्रकार के होते हैं। कुछ लोग पुस्तक का आकर्षक नाम देखकर पुस्तक खरीदते हैं, कुछ लेखक की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर। कुछ प्रकाशक की प्रसिद्धि को महत्व देते हैं, कुछ पुस्तक-विक्रेता की दुकान की सजावट को। कुछ पुस्तक के विषय को महत्व देने वाले भी होते हैं। पुस्तक की सार-वस्तु, शब्द-योजना, भाव-व्यंजना, प्रतिपालन कुशलता के प्रेमी और पारखी तो कोई-कोई ही होते हैं। यदि ग्राहक ने कहीं पहिले पुस्तक को देखा-परखा नहीं है, तब तो दुकान पर जाकर उसे देखने-परखने का अवसर कम ही होता है। पुस्तक के महत्व और उसकी उपयोगिता का असली पता तो खरीदने के बाद घर पहुंचने के बाद पढ़ने पर ही चलता है। कुछ पुस्तकें तो केवल शब्द-जाल और कूड़े-करकट का ढेर ही होती है। बाह्य साज-सज्जा और विज्ञापन-बाजी से प्रभावित होकर पुस्तकें खरीदने वालों को प्रायः निराशा ही होती है। कुछ पुस्तकें वास्तव में बहुत अच्छी होती हैं; परन्तु उनके नाम, आकार-प्रकार, कागज़ और मुद्रण अच्छे नहीं होते। अच्छी पुस्तकों को अच्छे प्रकाशक और विक्रेता भी कम ही मिलते हैं।

२. बहुत से सुन्दरता प्रेमी पुस्तकोपासक होते हैं। वे छपाई, कागज, रंग और साज-सज्जा पर मोहित हो जाते हैं। नाम, विषय, महंगी और सस्ती का विचार वे नहीं करते। ज्ञानी बनारस जा रहा था। देहली से एक परिचित बंगाली महिला भी बनारस जा रही थी। उसके पतिदेव ने ज्ञानी की ड्यूटी लगाई कि रास्ते भर उसकी बंगालन की सुख-सुविधाओं का विशेष ध्यान रखे। अलीगढ़ के स्टेशन पर बंगालन उतर कर गई और तीन रुपए की एक सुन्दर अंग्रेजी पुस्तक खरीद लाई। ज्ञानी ने पुस्तक देखनी चाही और बंगालन की ओर अपना अंग्रेजी अखबार बढ़ा कर कहा—"लो, बहिन जी आज का अखबार पढ़ो।" वह बोली—"अंग्रेजी मुझे नहीं आती। आश्चर्य में पड़कर ज्ञानी ने कहा, "आपने यह पुस्तक जो खरीदी है। उसका उत्तर और भी अधिक आश्चर्यजनक था। बोली—"इसकी जिल्द मुझे बहुत सुन्दर लगती है।"

३. कुछ लोगों को पढ़ने का शौक तो होता है; परन्तु पुस्तकें उन्हें सुलभ नहीं होती। वे पुरानी पत्र-पत्रिकाओं, जन्तरियों और नाना प्रकार के सूचीपत्रों को बारम्बार पढ़ा करते हैं। पढ़े हुए को फिर-फिर पढ़ते हैं।

४. कुछ लोग उपन्यासों को इतिहास समझकर पढ़ा करते हैं। एवमेव कुछ लोग इतिहास को उपन्यास समझकर पढ़ते हैं। ऐसा उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द जी ने लिखा है। उपन्यास पढ़ना तो एक व्यसन-सा ही है। उपन्यास प्रेमियों को तो नित्य-प्रति नये-नये उपन्यास चाहिए। आजकल जादूई और जासूसी उपन्यासों के लखकों को घटिया लेखक समझा जाता है। अर्धशिक्षित पाठक तो प्रायः जादूई, जासूसी और कामोत्तेजक अर्थात् घासलेटी उपन्यास ही पढ़ा करते हैं। धार्मिक रुचि के कम पढ़-लिखे लोग ईसाइयों, मूसाइयों, मुहम्मदियों या भारतीय जैनियों, बौद्धों और पौराणिकों के वे काल्पनिक ग्रन्थ पढ़ा करते हैं। जिनमें चमत्कारों की कहानियां पढ़ते-पढ़ते जादूई, जासूसी कामोत्तेजक और वैराग्य-संवर्धक सब मजे एक साथ ही मिल जाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों की टीकायें, व्रत-कथायें और भजन पुस्तकें भी ऐसे लोगों को ही सुहाती हैं। अल्प शिक्षित ग्रामीण क्षेत्रों में सांग-तमाशे की और ग्रामीण भाषाओं की कविताओं में आबद्ध अतिरंजित कहानियाँ खूब पढ़ी जाती हैं।

५—कुछ लोग पुस्तकें पढ़ते तो हैं, परन्तु खरीदकर नहीं, माँग-मांग कर। ऐसे लोग पुस्तलयों के सदस्य नहीं बनते। क्योंकि वहाँ भी नियमित शुल्क आदि देने पड़ते हैं। ऐसे लोगों में पुस्तकों के कुछ बढ़िया शिकारी भी होते हैं। बहुत बचने पर भी वे पुस्तकों को किसी न किसी प्रकार ले ही जाते हैं। ऐसे लोग दूसरों की पुस्तकों को सम्भाल कर भी नहीं रखते। प्रथम तो वे पुस्तकों को लौटाते ही नहीं, और यदि पुस्तक-मालिकों के तकाजों से तंग होकर, उन्हें पुस्तकें लौटानी ही पड़े, तो वे पुस्तकों को उनका हुलिया बिगाड़ करके ही लौटाते हैं। ज्यों-ज्यों जनता में लिखने-पढ़ने का शौक बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों ही पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें माँग-माँग करके पढ़ने की दुष्प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। बड़े-बड़े विद्वान् एवं बुद्धिमान भी इस रोग से पीड़ित है। वे माँग-माँग कर रोटी नहीं खाते, माँग माँग कर कपड़े नहीं पहिनते, बिना टिकट के रेल-मोटरों में यात्रा भी नहीं करते, वे भूखे, नंगे और साधन-हीन भी नहीं होते। फिर भी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को माँग-माँग करके पढ़ने में उनको कुछ भी शर्म नहीं आती। इस प्रकार वे बासी और दूसरों का झूठा, मानसिक भोजन बिना संकोच खात रहते हैं। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से मानसिक भोजन और पोषण ही तो प्राप्त किया जाता है।

६—ज्ञानी बनारस के रेलवे स्टेशन पर मुसाफिर खाने में बैठा गोरखपुर जानेवाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था। समाचार-पत्र-विक्रेता आया, ज्ञानी ने "दैनिक आज" खरीदा। एक अनजान मुसाफिर लपककर आगे बढ़ा। "आज" को पकड़ कर माँगने नहीं, खींचने-छीनने लगा। ज्ञानी को बहुत क्रोध आया। ज्ञानी ने झुंझलाहट में 'आज' गोल करके मरोड़ा और बीच में से आधा तोड़कर उस मुफ्तखोरे की ओर बड़ा दिया। उसे लेने का साहस उस मुफ्तखोरे को न हुआ। पिटे हुए पठ्ठे को तरह वह सिर लटकाकर पीछे खिसक गया। आस-पास बैठे हुए मुसाफिर खूब हँसे। देर तक वे आपस में मुफ्तखोरे और ज्ञानी के व्यवहार पर टीका-टिप्पणी करते रहे। उस मुफ्तखोरे से भी ज्यादा शर्म आई थी, तब उन दो औरतों को, जो उस मुफ्तखोरे के साथ थीं।

७. ज्ञानी देहली में दीवान-हाल की एक दुकान पर बैठा था। "तेज" आया। खरीद लिया। झट एक कच्छ-धारी, लम्बा-तड़ंगा पंजाबी शरणार्थी आगे बढ़ा। उसने "तेज" माँगा। ज्ञानी को बुरा लगा। आधा अखबार टेढ़ा-मेढ़ा फाड़कर, ज्ञानी ने शरणार्थी जी के सामने रख दिया। बिना पढ़े ही वे चले गए। कुछ दिन के बाद वे फिर आकर ज्ञानी से मिले। अपने व्यवहार के लिए क्षमा-याचना करने लगे। परिणामतः समझौता भी हो गया, आपस का परिचय भी।

बड़ा मजा उस प्यार में है।
जो सुलह हो जाये जग होकर॥

वे शरणार्थी आजकल देहली के एक गवर्मेन्ट हायर सेकण्डरी स्कूल में संस्कृत के अध्यापक हैं।

८. एक कहावत है :—

लेखनी, पुस्तिका, नारी।
पर-हस्ते गता, गता॥

इस कहावत का भाष्य पाठक स्वयं कर लें।

९ पुस्तक-प्रेमियों की एक चोर-श्रेणी भी होती है हैं। वे सब प्रकार से सम्पन्न, सुशिक्षित, प्रतिष्ठित और सुसभ्य होते हैं। परन्तु फिर भी वे पुस्तकें चुराते हैं। जरा नजर बची और माल यारों का। मित्रों के घरों में से हो नहीं, वे तो सार्वजनिक पुस्तकालयों और दुकानों में से भी पुस्तकें चुरा लेते हैं। इन पुस्तक-चोरों में अध्यापक उपदेशक, डाक्टर, वकील, नेता, उपनेता और संन्यासी भी शामिल हैं। ये लोग ज्ञान-वृद्धि, सदा-

चार, आत्म-सुधार और परोपकार आदि-आदि के लिये ही पुस्तकें चुराया करते हैं।

१०. लन्दन के सुप्रसिद्ध पत्राकार श्री गार्डिनर लिखते हैं :—

"कुछ वर्ष पूर्व की एक घटना का मुझे स्मरण है। एक प्रसिद्ध धर्माचार्य का, जो अच्छे साहित्य-समालोचक भी थे, निजी पुस्तकालय मृत्यु के बाद बेचा गया। यह पुंस्तकालय दुर्लभ ग्रन्थों का अपूर्व संग्रहालय था। सत्रहवीं शताब्दी के साहित्य के सम्बन्ध में उनके पाण्डित्य को सभी स्वीकार करते थे। उनके संग्रहालय में उस शती के साहित्यकारों से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ विद्यमान थे। इनमें से सैंकड़ों ग्रन्थों पर देश के कोने-कोने में स्थित अनेक पुस्तकालयों की मोहरें अंकित थीं। इस यशस्वो विद्वान् ने इन ग्रन्थों को देखने के लिए उधार लिया था और इन्हें वापिस करने का सुविधाजन अवसर ही उन्हें न मिल सका था। वे उनके साथ वैसे ही चिपक गईं थीं, जैसे कानून के साथ नजीरें। यह भी सभी स्वीकार करेंगे कि वे बड़े ही धर्मप्राण व्यक्ति थे और उनके धर्मोपदेश हृदयग्राही हुआ करते थे। मैं स्वयं ही इसका साक्षी हूँ। इस सम्बन्ध में मेरा निगूढ़ मत यदि तुम जानना ही चाहोगे, तो मुझे संकोच के साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन पुस्तकों से ममत्व हो गया हो, उनका विछोह सरलता से नहीं सहा जाता।"

वे फिर लिखते हैं—

"पुस्तकों के सम्बन्ध में बड़ा ही ठोस नियम एक व्यक्ति ने बना रखा था। एक बार उसके मित्र ने उससे किसी ग्रन्थ की प्रति माँगी। "मुझे खेद है" उसने कहा "लेकिन मैं पुस्तक न दे सकूंगा।" मित्र ने प्रश्न किया—"क्या तुम्हारे पास वह है ही नहीं?" "है तो अवश्य" उत्तर मिला। 'मगर मैंने किसी को भी पुस्तक उधार न देने का नियम बना लिया है। बात यह है कि पुस्तक उधार लेने के बाद कम ही लोग उसे लौटाने आते हैं। यह बात मैं अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ, आओ मेरे साथ।" यह कहते हुए वह मित्र को पुस्तकों के कमरे में ले गया और बोला - "चार हजार पुष्तकें तुम्हारे सामने हैं। ये सब मैंने दूसरों से उधार ली हैं।"

१२. कुछ अधिक शिक्षित और पूज्य लोग दूसरों की पुस्तकों को भेंट-स्वरूप अर्थात् बिना मूल्य प्राप्त करना, अपना अधिकार समझते हैं। वे माँग कर और तंग करके भी लेखकों और प्रकाशकों से पुस्तकों की भेंट लेते हैं। भेंट न देने पर विरोध और बदनामी भी करते हैं। या ऐसा करने की धमकी देते हैं। फिर कुछ विद्वान् और सम्पादक तो भेंट में प्राप्त अथवा समालोचनार्थ आगत पुस्तकों को आधे-पौने में बेचा भी करते हैं।

१३. कुछ लोगों को थूक लगाकर पन्ने पलटने और पुस्तकों को रगड़ने या मोड़ने की आदत होती है। जहाँ वे रुकते हैं, या जहाँ उन्हें कोई बात पसन्द आती है, वहाँ कोई पाठक कोने मोड़ देते हैं। ऐसे लोगों को अशिष्ट, गन्दे, पुस्तक-शत्रु और रोग-प्रचारक भी माना जा सकता है। जो लोग पुस्तकों के पृष्ठों पर लिखा करते हैं, वे भी इसी श्रेणी में हैं। पाठ्य-पुस्तकों में बच्चे लिखें या अपनी पुस्तकों में कोई लिखे, तब भी कुछ बात है, परन्तु जिनकी आदत बिगड़ जाती है, वे तो पुस्त-कालयों और दूसरों की पुस्तकों को भी बिगाड़ते रहते हैं। कुछ विद्या-व्यसनी लोग तो दूसरों की पुस्तकों में से चित्र और अधिक महत्वपूर्ण पृष्ठ भी फाड़ लेते हैं।

१४. उत्तम पुस्तकें, उत्तम गुरुओं, उपदेशकों, शिक्षकों अच्छे मित्रों का काम करती हैं। जहां चटोरे, मंहगे और आराम-तलब उपदेशक नहीं जाते, वा जा ही नहीं सकते, पुस्तकें वहाँ भी पहुँच जाती हैं। संसार में बड़े-बड़े परिवर्तन अल्मारियों में सुसज्जित मोटी पुस्तकों से नहीं

लघु पुस्तिकाओं, ट्रैक्टों और जनगीतों से ही होते हैं। पुस्तकें यात्रा में साथी का काम देती हैं, उदासी में दिल-बहलावा बन जाती हैं, एकान्त में सहयोगी होती हैं, ज्ञान वृद्धि, मानसिक एवं बौद्धिक विकास और शान्ति की प्राप्ति के लिए तो उत्तम पुस्तकें ही सबसे अधिक उपयोगी होती हैं। जो सुसभ्य लोग हैं वे अपने घरों में उत्तम पुस्तकों का संचय करते हैं और उनको सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित ढंग से रखते भी हैं।

१५. आधुनिक युग छापेखाने का युग है। बहुत से धन-कामी लोग पुस्तक व्यवसाय करने लगे हैं। नाना प्रकार के अनधिकारी लेखक भी मैदान में आचुके हैं। प्रति दिन हजारों की संख्या में नई-नई पुस्तकें बाजार में आ रही हैं। फिर भी उत्तम पुस्तकों की अखरने वाली भारी कमी है। उत्तम पुस्तकों के साधना-सम्पन्न, सुविज्ञ और शब्द-ब्रह्म के सच्चे उपासक लेखक भी कम ही हैं और जो हैं वे भी पाठकों की उपेक्षा, प्रकाशकों के शोषण तथा परिस्थितियों की मार से पीड़ित हैं। सभी प्रकार के पुस्तक-लेखकों को ध्यान में रखकर और उनके पुरुषार्थ तथा उनकी साधना और सिद्धान्तवादिता के परिणाम स्वरूप उनकी आर्थिक विभन्नता को देखकर ज्ञानी तो यहीं कहेगा कि जो भाग्यवान है वे पुस्तकें पढ़ते हैं और जो भाग्यहीन हैं वे पुस्तकें लिखते हैं। यह भी ज्ञानी का अनुभव है कि भाग्यहीन व्याख्यान देते हैं और भाग्यवान व्याख्यान सुनते हैं।

अपनों से अपनी बात

धर्म प्रेमी भाइयो ! और बहिनो !!

१. कुछ अप्रिय बातें हैं। फिर भी मेरा वह कर्त्तव्य है कि मैं वे आपकी सेवा में निवेदन करूँ। और आपका यह कर्त्तव्य है कि आप मेरी बातों को सुनें, पढ़ें, विचारें एवं मेरी आशाओं को पूर्ण करें।

२. विगत दस महीने से 'मधुर-लोक' का प्रकाशन हो रहा है। आपकी सेवा के लिये, आपके सम्पूर्ण सहयोग के भरोसे पर ही 'मधुर-लोक' को आरम्भ किया गया है। यह मासिक-पत्र मेरे या श्री पण्डित राजपाल सिंह शास्त्री जी के रोजगार का साधन नहीं है। अपनी रोटी के लिये मैं विभिन्न नगरों में अलख जगाया करता हूँ। श्री पं० राजपाल सिंह जी भी अन्य व्यवसाय द्वारा अपना और अपने परिवार का पोषण करते हैं।

३. मैं सुस्पष्ट रूप में यह भी निवेदन करता हूँ कि कोई धनवान व्यक्ति या शक्ति मधुर-लोक के पीछे नहीं है। मधुर-लोक किसी चन्दा-भोजी सम्प्रदाय का पत्र नहीं है। कोई प्रच्छन्न लाभ प्राप्त करना भी मधुर-लोक का उद्देश्य नहीं। श्री पं० राजपाल जी 'मधुर-लोक' के कानूनी मालिक और संचालक तो आप ही हैं। मैं तो एक अनियमित, अस्थायी, अवैतनिक सेवक मात्र हूँ।

४. यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे 'मधुर-लोक' के द्वारा सेवा करने और धर्म का सन्देश आप तक पहुँचाने का अवसर मिला है। अपनी वाणी और लेखनी दोनों का ही उपयोग मैं विगत सैंतीस वर्ष से करता चला आ रहा हूँ। अब मैं लेखबद्ध कार्य में कुछ अधिक समय देने लगा हूँ। जब-तब आपके प्रशंसा-पत्र आया करते हैं। उनको पढ़कर मुझे प्रसन्नता भी होती है; परन्तु प्रशंशा पत्रों से तो 'मधुर-लोक' का काम नहीं चलेगा।

५. कोई बड़ी मांग नहीं है। केवल चार रुपये वार्षिक दीजिये, जो कि लगभग एक नया पैसा प्रति दिन के हिसाब से होता है। केवल चार रुपये वार्षिक दीजिए और स्थायी महत्व का स्वस्थ साहित्य लीजिये। एक स्वतन्त्र और निडर पत्र का संरक्षण भी कीजिये।

६. मधुर-लोक को और भी अधिक उन्नत, आकर्षक और पुष्ट रूप में प्रस्तुत करने के आयोजन हो रहे हैं। नये वर्ष के आरम्भ में एक मूल्यवान् स्थायी भेंट भी प्रस्तुत की जा रही है। सेवा करने के उत्साह में कोई कमी यहाँ नहीं है, परन्तु अर्थ-संकट और मंहगाई को देख-देख कर डर लगता है।

७. जिन भाइयों और बहिनों की सेवा में 'मधुर-लोक' भेजा जाता है वे इस वर्ष का मूल्य भेजकर कृतार्थ करें। ग्राहक बन्धु भी अपना आगामी वर्षों का मूल्य भेजने की कृपा करें। यह भी ध्यान रहे कि 'मधुर-लोक' का एक वर्ष का मूल्य चार रुपये, दो वर्ष का मूल्य सात रुपये और तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपये मात्र है। दो या तीन वर्ष वाले ग्राहकों को थोड़ी सी आर्थिक बचत होती है।

८. 'मधुर-प्रकाशन' की धार्मिक पुस्तकों के प्रसार को बढ़ाकर भी आप 'मधुर-लोक' को पुष्ट कर सकते हैं। 'मधुर-लोक-परिवार' का विस्तार करके इस लेख-बद्ध धर्म-प्रचार में अपना पूरा-पूरा सहयोग दीजिये।

—जगतकुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

मैडम क्यूरी

लेखक—श्री वीरेन्द्र कुमार जैन

सोलह वर्ष की सुकुमार अवस्था। वह बड़ी भोली और सुन्दर थी। एक धनी परिवार के यहाँ बच्चों को सम्भालने की नौकरी करती थी। घर का बड़ा लड़का उसके रूप पर मुग्ध हो गया। उसने उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा, तो उसकी दुनिया एक बार झिलमिला उठी। लेकिन विधि को यह कब स्वीकार था! लड़के के पिता ने अपनी असहमति प्रकट कर दी। घर की नौकरानी, टुकड़ों पर पलने वाली अट्टालिकाओं की स्वामिनी बनने का स्वप्न देखती है! उन्हें यह सहन न हुआ और हमेशा के लिए उसे घर से निकाल दिया गया।

युवती के कोमल हृदय पर इस अपमान ने जैसे एक अमिट खरोंच बना दी। नौकरी छोड़ कर वह पैरिस आ गई। उसने विज्ञान की पढ़ाई आरम्भ कर दी। गरीबी ने उसके मार्ग में अनेक रोड़े अटकाये लेकिन वह कर्म-युद्ध में पराजित होकर भी लौटना नहीं चाहती थी। सर्दी से बचने के लिए उसके पास पर्याप्त वस्त्र न थे। उसे कुर्सी के नीचे सिकुड़ कर सोना पड़ता था। किन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी।

एक दिन सफलता ने उसके भाल का चुंबन किया यह संघर्ष-कथा उसी युवती की है, जिसका नाम मैडम क्यूरी था, जिसने रेडियम का आविष्कार किया और विश्व में तहलका मचा दिया। इस प्रतिभावान् महिला को दो बार नोबल पुरस्कार से सम्मनित किया गया।

एक मामूली नौकरानी से एक महान वैज्ञानिक कोई नहीं जानता, किस में कौन सी प्रतिभा छिपी है और वह कब जाग्रत हो जायेगी। जब तक हम अपने भीतर के विराट् को नहीं जगाते, तब तक हम अपनी आत्म-शक्ति का आभास नहीं पा सकते। कोयले के भीतर हीरा छिपा रहता है; पर हम हीरे को नहीं खोजते, कोयले को ही देखते रहते हैं। प्रतिभा आपमें भी है, लेकिन शायद आप अपनी प्रतिभा से परिचित न हों। प्रसिद्ध पत्रकार जेम्स डगलस ने एक बार कहा था—"जो शक्तियाँ आप में नहीं हैं, उनके अस्तित्व में विश्वास करने और इस विश्वास के बल पर उन्हें प्राप्त करने की योग्यता का नाम ही प्रतिभा है।"

स्वदेश की पुकार

लेखक—श्री श्याम सुन्दर स्नातक महोपदेशक (पंजाब सभा)

देश की स्थिति को उन्नत करने हेतु हमारी राष्ट्रीय सरकार ने पंचवर्षीय योजनाएँ बनाईं। उन पर अमल करने के लिए अपने देश के धन से कार्य चलना कठिन जानकर अन्य समृद्ध देशों की सहायता लेना अनिवार्य समझा गया, अरबों रुपये की सहायता अनेक रूपों एवं आवरणों में लिपटी हमारे देश को प्राप्त हुई। इन प्राप्त धनराशियों से मशीनरी आई, जिनसे कारखाने लगे, सड़कें बनी, बाँध बने, युद्ध सामग्री बनी, स्कूल कालेज की इमारतें बनी, बड़े २ बिजलीघरों का निर्माण हुआ। अनेक दुर्गम स्थानों को सुगम बनाकर उन पर रेलें बिछाई गईं। इतना ही नहीं कृषि यन्त्र भी आये, सुदूर उत्तर में रहने वाले कश्मीर भाइयों के हृदयों तक पहुंचने के प्रयास में अरबों रुपयों की सुख-सुविधा सामग्री भेजी जाती रही। एक बात बचती गई और बची ही रहेगी, ये सब पुरुषार्थ तो इसलिए किया गया था, राष्ट्र के नागरिकों का जीवन-उत्थान होगा, वे उत्तम नागरिक बन सकेंगे, देश-भक्ति की भावना उनमें जागेगी, निर्बल एवं निर्धन व्यक्ति स्वतन्त्रता का सच्चे अर्थों में उपभोग करेंगे। परन्तु इसमें निराशा ही हुई प्रतीत होती है। राष्ट्र का सदाचार उत्तरोत्तर गिरता चला जा रहा है। आज पिता को पुत्र पर विश्वास नहीं, गुरू को शिष्य पर कोई आशाएं नहीं, सत्य. अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह ये सब ग्रन्थों की शोभामात्र रह गये हैं। आचरण में कहीं-कहीं ढूंढ़ने खोजने से ही इनके दर्शन होते हैं। देखा जाय तो राष्ट्र और व्यक्ति का निर्माणाधार धर्म एवं सदाचार को स्वीकार किया जाना चाहिए था, इनकी उन्नति को जीवन की उन्नति का मापदण्ड रखना था तभी पंचवर्षीय योजनाओं का अन्तोगत्वा लाभ व्यक्ति तक पहुंच पाता।

सुनते आये हैं कि अपने देश से ज्ञान का प्रकाश फैला। सब देशों ने प्राचीन काल में यहीं से उच्च ज्ञान व विज्ञान की शिक्षा ली, आज वे देश हमसे अनेक आधारभूत जीवन के सिद्धान्तों में आगे हैं। परन्तु जिस बात का गुरुत्व एवं गौरव भारत को प्राप्त था, वह आध्यात्मिक-सदाचार ज्ञान आज भी अन्य देशों में नहीं। वे इस पतनोन्मुख अपने देश की ओर अब भी यदा-कदा उत्सुक नेत्रों से निहारते हैं, आते हैं यहाँ के प्राचीन काल के इस वैभव के दर्शन करने, निराश लौट जाते हैं। अपनी संस्कृत और संस्कृति का स्थान अंग्रेजी और इंगलिश सभ्यता लेती जा रही है। भारत की शान को चार चाँद लगाने वाले गरीबों के प्राण बचाने वाले इस आयुर्वेद का स्थान यह एलोपैथी लेती जा रही है भारतका भविष्य मुझे अन्धकारमय प्रतीत होता है। आशा की किरण नहीं दिखाई देतीं, जो देशवासियों को स्वदेश भक्ति एवं सदाचार का अमृत पिलाये। रो-धोकर कुछ आशा थी तो आर्य समाज के अग्रणी व्यक्तियों पर हो सकती है राजनीति की डायन इन्हें भी वशीभूत किए जा रही है। अपने सिद्धान्त, अपनी नीति-रीति भुलाकर, आर्य अनार्यों से समझौता करने लग गये हैं। हे प्रभु! फिर से वे सच्चा समय दिखाओ हम आर्य स्वधर्म, स्वकीय संस्कृति और अपने पूर्वजों के ही मन्तव्यों पर दृढ़ रहकर देश के वर्तमान प्रकाश हीनता को दूर कर सकें।

महामूर्ख छात्रों की सफलता का रहस्य

लेखक—श्री रामजीवन एम० ए०, प्रबन्धक, गाडोदिया गर्ल्स मिडिल स्कूल दिल्ली

छात्रों के मुख से यह बार-बार सुनने को मिलता है कि आज की शिक्षा प्रणाली बड़ी दूषित है। अपने परिश्रम की वे बड़ी-बड़ी डींग हांकते हुए भी देखे जाते हैं; परन्तु क्या कभी उन्होंने यह भी सोचा है कि आज की इस दूषित-प्रणाली की ही कृपा है कि वे महामूर्ख होते हुए भी प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में उत्तीर्ण हो जाते हैं। अन्यथा साधारणतया उनमें अस्सी प्रतिशत ऐसे छात्र होते हैं जिनको परीक्षा में सफल कहलाने का कोई अधिकार ही नहीं है। न केवल यह अपितु सफल कहला कर भी वे जीवन भर के लिए असफल हो जाते हैं। उनकी जिन्दगी उन ही के लिए अपमान भरी तथा विषादमयी हो जाती है। यह सब होता है इस शिक्षा-प्रणाली के दोष से या शिक्षा-प्रणाली की उदार कृपा से, नवयुवक छात्र-छात्राओं के लिए ऐसी सफलता कलंक है परन्तु किया क्या जाय। बेचारे भोले छात्रों को यह पता नहीं कि सफलता का अर्थ क्या है ?

परीक्षाओं का आजकल एक साधारण नियम है कि तैंतीस प्रतिशत अंक प्राप्त कर लेने पर ही छात्र को उत्तीर्ण मान लिया जाता है। अर्थात् सौ अंकों में से तैंतीस अंक प्राप्त करने और सड़सठ अंक खो देने के द्वारा विद्यार्थी यह प्रदर्शित करता है कि वह सफल है, अपने विषय का ज्ञाता है, वह अपने कठोर परिश्रम से उसने यह सिद्ध किया है कि वह बुद्धिमान भी है और परिश्रमी भी। पर क्या कभी उसने यह भी सोचा है कि वह संसार को और अपने को धोखा दे रहा है। परीक्षा में उसने यह सिद्ध किया है कि वह न तो परिश्रमशील है और न उसने बुद्धि से ही काम लिया है। पूरे साल भर उसने अपने पाठ्यक्रम को पढ़ा। परीक्षा को पास करने के लिए उसने दिन रात एक किया और पास होकर उसने यह सिद्ध किया कि वह अपने अधीत विषय में जितना योग्य साबित हुआ है, उसने दुगना अयोग्य साबित हुआ है।

जब कोई छात्र-छात्रा मेरे सम्मुख आती हैं तब मैं उनसे यही निवेदन करता हूं कि जितने अंक आपने प्राप्त किये हैं, क्या वे इक्यावन प्रतिशत हैं। यदि नहीं, तो आप बताइए कि यह आप कैसे प्रमाणित करते हैं कि आपकी योग्यता आपकी अयोग्यता से अधिक है ?

अतः सभी छात्रों से यह निवेदन है कि वे अपनी परीक्षाओं में यह प्रमाणित करें कि वे परिश्रमी हैं, उन्होंने वास्तव में अपने अधीत विषय का ज्ञान प्राप्त किया है। अन्यथा समझ लीजिए कि इस लेख के पढ़ लेने के बाद यदि आपसे किसी ने आपके प्राप्तांक पूछे, तो निश्चय ही वह आपकी बुद्धिमत्ता को अंकों से मापने की कोशिश कर रहा होगा। फिर चाहे आपके मुँह पर वह कुछ न कहे, पर अपने मन में वह हिसाब लगा लेगा कि आप कितने बुद्धिमान और कितने परिश्रमी हैं। और यदि आपसे कम आयु के किसी व्यक्ति ने यह लेख पढ़ लिया तो उसकी निगाह में आपका गिर जाना मरण तुल्य हो जाएगा।

जुलाई मास १९६६ की सूचनायें

श्री डा० स्वामी महन्त जी की अध्यक्षता में एक आर्य सम्मेलन हस्तिापुर में अत्यन्त धूम-धाम से मनाया गया। जिसमें अनेक विद्वान पधारे।

—श्री डा० स्वामी महन्त जी की अध्यक्षता में एक विशाल आर्य सम्मेलन सम्पन्न हुआ। जिसमें डा० यशपाल सिंह जी संसद सदस्य, स्वामी विश्वानन्द जी आदि विद्वान-नेताओं के भाषण हुए।

—श्री राजपालसिंह शास्त्री का प्रवचन आर्य समाज अन्धामुगल देहली, नगर आर्य समाज शहादरा, आर्य समाज गांधी नगर तथा आर्य समाज महरौली में हुआ।

(लक्ष्मी की कामना करने वाले ध्यान से पढ़ें)

लक्ष्मी का निवास

(१)

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे,
दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे,
जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्वे ॥

यह लक्ष्मी का कथन है कि मैं सदा प्रसन्नचित्त उत्साही, कुशल, कर्म-परायण, शान्त, विद्वानों का सत्कार करने वाले, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और निरन्तर ही कुछ न कुछ उपयोगी कार्य करने वाले मनुष्य के पास ही रहती हूं ।

(२)

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि,
न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।
न भिन्न-वृत्ते, न नृशंस वृत्ते,
न चाविनीते, न गुरुष्वसूयके ॥

निठल्ले, निकम्मे, नास्तिक, उत्तम मर्यादाओं को तोड़ने वाले, कृतघ्न, विरुद्धाचारी, क्रूर, उद्धत और अपने गुरुजनों से विद्वेष करने वाले लोगों के पास मैं निवास नहीं करती ।

(३)

ये चाल्पज्ञाना बल-सत्वमाना,
क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु,
नरेषु संगुप्त मनोरथेषु ॥

जो अल्पज्ञ हैं, बल के घमन्ड में फूले हुए हैं, जो बात-बात पर रोते हुए या क्रोध करते हुए जहां-जहां मारे-मारे फिरते हैं, तथा जो लोग अपनी अभिलाषाओं को कभी प्रगट ही नहीं करते, ऐसे लोगों के पास भी मैं निवास नहीं करती ।

(४)

यश्चात्मने प्रार्थयतेन किंचित्,
यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा ।
तेषु-अल्पसन्तोषपरेषु नित्यं,
नरेषु नाहं निवसामि सम्यक् ॥

जो अपने लिए कुछ भी नहीं माँगते, जो स्वयं अपने स्वभाव से ही खिन्न रहते हैं, जो कुछ थोड़ा सा धन-वैभव वा अधिकार प्राप्त करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोगों के पास भी मैं निवास नहीं करती ।

(५)

वसामि धर्मशीलेषु, धर्मज्ञेषु महात्मसु ।
वृद्धसेविषु दान्तेषु, दान शौच रतेषु च ॥

जो धर्म को जानकर उसके अनुसार आचरण करते हैं, वृद्धों की सेवा करते हैं, अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखते हैं, जो दान-शील और पवित्र आचार-विचार वाले हैं, मैं तो उनके पास ही निवास करती हूं ।

यह कथन पुरुषों के विषय में है। मैं कैसी स्त्रियों के पास निवास करती हूँ ? यह भी सुनें—

(६)

स्त्रीषु कान्तासु शान्तासु देव द्विजपरासु च ।
विशुद्ध गृह भाण्डासु गो-धान्याभिरतासु च ॥

जो स्त्रियाँ सुन्दर, शान्त, उपासना और विद्वानों का आदर-सत्कार करने वाली, अपने घर के बर्तन आदि उपकरणों को शुद्ध और स्वच्छ रखने वाली, गो-पालन, विद्या-प्राप्ति तथा अन्न की वृद्धि की कामना करने वाली होती हैं । मैं उनके पास निवास करती हूं ।

(७)

प्रकीर्णभान्डामनवेक्ष्य कारिणीं,
सदा च भर्तुः प्रतिकूलगामिनीम् ।
परस्य वेश्माभिरतामलज्जां—
एवं विधां तां परि-वर्जयामि ॥

जो अपने घर के सामान की उचित देखरेख नहीं करती, जो सदा ही अपने पति के विरुद्धाचरण करती है जिसका मन दूसरों के घरों में ही

(पृष्ठ १ पर)

कुछ प्रश्न

प्रश्नकर्ता—श्री स्वामीनाथ 'विद्यारत्न' गुरुकुल सिराथू ।

१. प्रश्न—विष और विषय में क्या अन्तर है ?
उत्तर—कुछ नहीं ।

२. प्र० अपने सम्बन्धियों की मृत्यु पर दुःख क्यों होता है ? जबकि अन्य के मरने पर नहीं ।
उ० मोह, ममता और स्वार्थ वश ।

३. प्र० कुछ सनातनी कहते हैं आर्यसमाज एक मृत संस्था है । आपके क्या विचार हैं ?
उ० सनातनी विचार असत्य है ।

४. प्र० कृष्ण जी की क्या राधा भी पत्नी हैं ?
उ० नहीं, राधा कृष्ण की मामी थी ।

५. प्र० क्या पुनर्विवाह वैदिक है ?
उ० हाँ ।

६. प्र० क्या स्त्रियाँ भी सन्यास ले सकती हैं ?
उ० हाँ ।

७. प्र० मैं किसी आर्यसमाजका सदस्य नहीं हूं,परन्तु आर्य विचार धारा है । क्या मैं अपने को आर्य समाजी कहला सकता हूं ?
उ० हाँ ।

८. प्र० वैदिक-सन्ध्या के आचमन तथा मार्जन-मंत्र, क्या वैदिक हैं ?
उ० हाँ ।

९. प्र० कुछ वैज्ञानिक भी मृत आत्माओं के बुलाने, फोटो लेने, में विश्वास करते हैं । क्या वस्तुतः आत्मायें आकर बातें करती हैं ।
उ० नहीं । तथाकथित वैज्ञानिकों की बातें भ्रामक हैं ।

१०. प्र० मधुरलोक के श्रेष्ठ विद्वान श्री ज्ञानी जी का पूरा पता क्या है ?
उ० मारफत मधुर-लोक, कार्यालय सीताराम बाजार देहली—६

११. प्र० विवाह संस्कार के पहले यदि लड़का स्वयं, लड़की को देखना चाहे तो क्या आप कोई शिष्टाचार बता सकते हैं ?
उ० दोनों पक्षों के अभिभावकों की स्वीकृति से उनकी व्यवस्था के अनुसार ।

—सम्पादक

पृष्ठ १३ का शेष

बसा रहता है, और जो निर्ल्लज होती हैं, ऐसी स्त्रियों का मैं परित्याग कर देती हूं ।

(८)

सचलामदक्षामवलेपिनीं च,
व्यपेत-शोचां कलह प्रियां च ।
निद्राभिभूतां सततं शयानां—
एवं विधां स्त्रीं परिवर्जयामि ।।

चंचल, फूहड़, तथा घमण्ड करने वाली, सफाई पर ध्यान न देने वाली, झगड़ालू और सदा ही आलस्य में निमग्न रहने या सोई रहने वाली जो स्त्रियाँ होती हैं, मैं उन का परित्याग कर देती हूं ।

(९)

सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु,,
सौभाग्य युक्तासु गुणान्वितासु ।
वसामि नारीषु पतिव्रतासु,
कल्याण शीलासु पतिप्रियासु ।।

जो सदैव सत्य-भाषण करने वाली, सुन्दर और उत्तम स्वभाव वाली, सौभाग्य-शीला, उप गुण, कर्म और स्वभाव वाली,पति-व्रता और पति-प्रिया नारियाँ होती हैं, मैं तो उन कल्याण-शीलाओं के पास ही निवास करती हूँ ।

अलब्धं चैव लिप्सेत, लब्ध रक्षेत् प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव, वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ।।

अप्राप्त को प्राप्त करने की अभिलाषा करे, जो अन्न, धन, वैभव और अधिकार प्राप्त हो उसकी रक्षा प्रयत्न पूर्वक करे, सुरक्षित धन वंभव की वृद्धि करे । वृद्धि प्राप्त अन्न, धन, वैभव, अधिकार एवं ज्ञान अधिकारी जनों को प्रदान करता रहे ।

वैदिक-प्रवचन-माधुरी

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

(१६)

जीवन-माधुरी

मधुमन्मे निक्रमणं, मधुमन्मे परायणम्
वाचा वदामि मधुमद्, भूयासं मधु संदृशः।

अथर्व० १।३४।३

शब्दार्थ—हे प्रभो ! (मे) मेरी (निक्रमणम्) निवृत्ति (मधु-मत्) मधुर हो। (मे) मेरी (परायणम्) प्रवृत्ति भी (मधु-मत्) मधुर हो। (वाचा) वाणी से मैं (मधु-मत्) मधुरता युक्त शब्द (वदामि) बोलता हूं। आपकी कृपा से मैं (मधु-सन्दृशः) मधु सदृश=शहद जैसा मीठा, साक्षात् माधुर्य (भूयासम्) बन जाऊँ।

भावार्थ—साँसारिक कार्यों से मेरी निवृत्ति मधुर हो। सांसारिक कार्यों में मेरी प्रवृत्ति भी मधुर हो। वाणी से मैं सदैव मीठा-मीठा ही बोलूँ। मैं साक्षात् शहद जैसा मधु-मय बन जाऊँ।

प्रवचन

प्रत्येक मनुष्य—नर और नारी, को उचित है कि वह आत्मानुशासन करे, अपने आपको शिव-संकल्पवान् बनाये और अपने जीवन में कुछ करके दिखाये, कुछ बनके दिखाये। आत्मानुशान के बहुत से उपाय वेदों में बतलाये गये हैं। ऐसा ही एक प्रसंग यहां भी प्रस्तुत है। जबानी जमा खर्च तो कुछ अधिक कठिन नहीं होता। फिर बातें ही बातें बनाने से क्या लाभ ? प्रत्येक मनुष्य दूसरों के ही सुधार और उत्थान की बातें करता है। आत्म-सुधार एवं आत्मोत्थान के मार्ग पर वह क्यों नहीं चलता ? वृक्ष अपने फलों से पहिचाने जाते हैं। मनुष्य अपने कार्यों, कार्यों के परिणामों और अपने-अपने जीवन की उपलब्धियों से पहिचाने जाते हैं।

मानव-जीवन का अन्तिम उद्देश्य है—माधुर्य। यही होना भी चाहिये। इस माधुर्य को ही अंग्रेजी भाषा में "हारमोनी" कहते हैं। यही माधुर्य शाँति एवं शिव भी कहलाता है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को समझदारी के साथ आगे बढ़ाये, और निरन्तर ही ऐसे प्रयत्न करता रहे, जिनके परिणाम स्वरूप उसकी कार्य में प्रवृत्ति भी मधुर हो, और कार्य से निवृत्ति भी।

जब मनुष्य किसी कार्य को आरम्भ करे, तब भय, चिन्ता, लज्जा, दुविधा और सफलता की आशंका आदि दोष उसे उद्विग्न न करें। जब मनुष्य अपने कार्य को पूर्ण कर चुके, तब निराशा, निन्दा, विफलता, असुरक्षा और तृष्णा आदि दोष उसे उद्विग्न न करे। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उभार हो, निखार हो, सुधार हो, सन्तुलन हो, आशा और उत्साह हो, और हो पूर्ण तृप्ति, मादकता एवं सरसता। यही जीवन का माधुर्य है, यही सच्चा सौन्दर्य और यही वास्तविक शान्ति।

जिसे हम शान्ति कहते हैं, वह दुःखाभाव स्वरूपा नहीं हैं, अपितु वह तो सुखातिरेक स्वरूपा है। यह सुखातिरेक और इसकी अनुभूति सभी शुभकर्मी नर-नारियों का एक समान ही अधिकार है। जब मनुष्य शुभ कर्मों का अनुष्ठान करता है, तब उसे ईश्वर का दी हुई हर्ष, उत्साह, आनन्द और आत्म-तृप्ति की प्राप्ति और अनुभूति भी अवश्य ही होती है। यही तो है जीवन की माधुरी। जीवन-माधुरी की प्राप्ति के लिये शुभ-कर्मों के अनुष्ठान परमावश्यक हैं। जो पुरुषार्थ नहीं

(शेष पृष्ठ १६ पर)

(पृष्ठ १५ का शेष)

करते, वे तो इस जीवन-माधुरी को कभी पा ही नहीं सकते। जो अशुभ कर्मों के अनुष्ठान करते हैं, उनकी गति इससे सर्वथा ही विपरीत होती है। उनके जीवन में विषैली कटुता व्याप्त हो जाती है। कटुतापूर्ण जीवन तो पशुता से भी गया वीता होता हैं।

शुभ-कर्म की पहिचान बहुत सरल है। जिस कर्म के करने से हर्ष और उत्साह की वृद्धि एवं यश की प्राप्ति होती है, वह शुभ हैं। जिस काम के करने से भय, शंका और लज्जा की प्रतीति एवं बदनामी होती है, वह अशुभ है। अशुभ कर्मों से स्वयं बचना और दूसरों को भी बचाना, यही सच्ची मानवता है। यह मानवता ही मानव-जीवन की सफलता की कुंजी है। जो मनुष्य मन, वचन और कर्म से सदैव जागरूक रहकर, शुभ-कर्म ही करते हैं, वे अपनी-अपनी साधना, ध्येय-निष्ठा, निष्पापता और कर्तव्य-परायणता के द्वारा, एक दिन अपने जीवन के लक्ष्य, सौन्दर्य और माधुर्य को भी प्राप्त कर ही लेते हैं।

निज जीवन को मधुर कर, आदि-अन्त समेत।
वाणी में माधुर्य भर, चेत रे मानव! चेत॥

'मधुर-लोक' का प्रथम विशेष अंक

मधुर-भजन-पुष्पांजलि अंक

"मधुर-लोक" के सभी प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हम नवम्बर १९६६ में दिवाली के अवसर पर मधुर-भजन-पुष्पांजलि के रूप में विशेष अंक भेंट कर रहे हैं।

इस अंक में प्राचीन एवं नवीन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गायकों कवियों तथा भजनोपदेशकों के उत्तम और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भजन जलूसों, उपासनाओं, सत्संग-प्रसंगों, संस्कारों एवं सार्वजनिक अवसरों पर गाने के लिए संग्रहीत होंगे।

यदि आप भी अपनी पसन्द का कोई भजन इस पुष्पांजलि में छपवाना चाहते हैं तो तुरन्त भेजें।

यह विशेष अंक पुस्तक रूप में छपेगा। पृष्ठ संख्या १६० होगी। इसका मूल्य १·५० रुपये और डाक व्यय पृथक् होगा।

"मधुर-लोक" के नियमित सदस्यों या ग्राहकों से कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं लिया जायेगा। जो संस्थाएँ या व्यक्ति अभी तक ग्राहक नहीं बने हैं कृपया वे शीघ्र ही ४) रु० मनीआर्डर से भेज कर इस विशेष अंक को प्राप्त कर सकते हैं।

—सम्पादक

एक हजार रुपये का साहित्य मुफ्त

हमने अपने सभी ग्राहकों को श्रावणी के पुत्य अवसर पर एक हजार रुपये की पुस्तकें मुफ्त वितरण करने का निश्चय किया है।

यह मास स्वाध्याय का मुख्य पर्व है। अतः उत्तमोत्तम ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा अपने जीवन को आध्यात्मिकता से पवित्र बनायें। हमारी योजना के अनुसार जो संस्था या व्यक्ति ६०) रुपये की पुस्तकें मंगायेंगे उन्हें २०) रुपये का साहित्य, जो ३०) रुपये की मंगायेंगे उन्हें १०) का साहित्य, जो १५) रु० की मंगायेंगे उन्हें ५) रुपये का धार्मिक सामाजिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मुफ्त वितरण की जायेंगी।

डाक व्यय पृथक् होगा। पुस्तकों का मूल्य पेशगी भेजें। पता तथा रेलवे स्टेशन साफ व सुन्दर लिखें। सूचीपत्र मुफ्त मंगायें। उसमें से पुस्तकों के नाम लिखें। यह रियायत १४-९-६६ तक है।

मधुर-प्रकाशन
आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम, देहली-६

जीवनोपयोगी साहित्य

तत्व ज्ञान	३.००	प्रभु दर्शन	२.५०	प्रभु भक्ति	१.५०
घोर घने जंगल में	२.००	महामंत्र	१.००	भक्त और भगवान	१.००
सचित्र रस-शास्त्र	१२.००	संध्या माता	०.५०	मधुर सामान्य-ज्ञान	०.७५
वैदिक-प्रवचन	२.२५	चलते पुर्जे	२.००	संस्कार चन्द्रिका (प्रथम भाग)	४.००
ईश्वर-दर्शन	१.५०	जीवन में खेलो	२.००	संस्कार चन्द्रिका (द्वितीय भाग)	३.५०
दृष्टान्त-मंजरी	२.००	विदेशों में एक साल	२.२५	स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा	०.२०
यमनियम-प्रदीप	१.५०	मनोविज्ञान शिव संकल्प	३.५०	हित की बातें	०.१५
उर्मिल-मंगल	०.५०	ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२.५०	दन्त-रक्षा	०.२०
मातृ-मन्दिर	०.५०	संस्कृतांकुर	१.२५	बन लो हीरे	१.००
शिवा-बावनी	०.७५	छात्रोपयोगी विचारमाला	०.६५	ब्रह्मचर्यामृत	०.२०
महर्षि-दयानन्द	०.५०	वैदिक-धर्म-परिचय	०-६५	वैदिक-पथ	१.२५
कलियात आर्य मुसाफिर	६.००	ब्रह्मचर्य-साधन के १० भाग	४.४५	आत्मानन्द लेखमाला	१.२५
श्रुति-सुधा	०.२०	स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	१.२५	मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.२५
वैदिक-प्रार्थना	१.५०	संस्कृत वाङ्मयका सं० परिचय	०.५०	मधुर हिन्दी निबन्ध माला	०.८०
वैदिक-युद्धवाद	१.००	हम संस्कृत क्यों पढ़ें ?	०.३७	बाल शिष्टाचार	१.५०
वैदिक-प्रवचन माधुरी	१.००	हितैषी-गीता	०.७५	विरजानन्द चरित	१.५०
विचित्र जीवन १०१	८.००	श्रुति सूक्ति शती	०. ०	भोज-प्रबन्ध	२.५०
अपने-अपने मुंह से	२.००	आसनों के व्यायाम	०.६०	चाणक्य-नीति	१.२५
कर्म और भोग	१.००	नित्यकर्म विधि	०.२५	विदुर-नीति	१.५०
धर्मवीर पं० लेखराम	१.२५	वैदिक मनुस्मृति	४.५०	पुष्पावली	०.५०
मेजिनी, (महात्मा)	१.००	आर्य सिद्धान्त दीप	१.२५	उपदेश-मंजरी	२.५०
महात्मा, मार्टिन लूथर	१.००	बनो लाल अनमोल	२.००	सत्यार्थ प्रकाश	२.५०
आर्य शिक्षावली	०.६३	ओंकार भजन माला प्रति सैकड़ा	[illegible].००	कर्त्तव्य-दर्पण	१.२५
कृषि-विज्ञान	०.७५	आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००	रण-भेरी	०.७५
आगे बढ़ो	१. ०	भारतीय शिष्टाचार	०.७५	सनातन धर्म	२.७५
नैतिक जीवन	२.५०	हमारे स्वामी	०.७५	भारत में मूर्ति पूजा	२.००
देशभक्त बच्चे	१.५०	संस्कार विधि	१.५०	गीता समीक्षा	२.००
हम क्या चाहते हैं	१.५०	पाक भारती	६.००	मृत्यु और परलोक	१.२५
विश्व शान्ति का सन्देश	२.५०	योग दर्शन	४.००	चरित्र निर्माण	३.२५
कर्म योग	२.०	वेदान्त दर्शन	४.५०	संध्या पद्धति मीमांसा	५.००
भक्ति योग	२.००	मीमांसा दर्शन	६.००	वैशेषिक दर्शन	३.५०
भक्ति और वेदान्त	२.००	सन्तति निग्रह	१.२५	सांख्य दर्शन	२.००
पाठशाला के हीरे	१.५०	वेद और विज्ञान	०.७०	न्याय दर्शन	३.२५

मधुर-प्रकाशन आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक ने श्री महामाया प्रिंटर्स, देहली में छपवाकर मधुर-लोक कार्यालय, सीताराम बाजार, देहली से प्रकाशित किया।

मधुर-लोक

सदाचार, वेदवाद,
मनोविज्ञान और नव-निर्माण
का
मासिक पत्र
वर्ष १ अंक ११
सितम्बर, १९६६
देश में वार्षिक मूल्य चार रुपये
दो वर्ष का मूल्य सात रुपये
तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपये
एक प्रति ४० पैसे
विदेश में दस शिलिंग वार्षिक

संचालक और सम्पादक
राज पाल सिंह शास्त्री
मधुर-लोक कार्यालय
आर्य समाज मन्दिर
सीताराम बाजार, देहली-६

सत्य और असत्य का संघर्ष

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय, सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरद् ऋजीयः, तदित्सोमो अवति हन्त्यासत् ॥
ऋ० ७ । १०४ । १२
अ० ८ । ४ । १२

(सुविज्ञानम्) उत्तम ज्ञान को (चिकितुषे) प्राप्त करने के इच्छुक (जनाय) मनुष्य के लिये (सत्=च, असत्+च) सत्य भी और असत्य भी [दोनों ही प्रकार के] (वचसी) वचन, ज्ञान, विचार (पस्पृधाते) आपस में स्पर्धा करते हैं। (तयोः) उन दोनों में से (यत्) जो (सत्यम्) सत्य है, (यतरत्) और जो (ऋजीयः) सरल है, छल, प्रपंच और कुटिलता से रहित है (तत् इत्) उसकी ही (सोम.) सोम—ईश्वर (अवति) रक्षा करता है। [और वह] (असत्) असत्य को (हन्ति) मार देता है।

जब कोई मनुष्य उत्तम ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है, तब सत्य और असत्य दोनों आपस में स्पर्धा करते हुए एक साथ ही उसके दर्शन-पथ में आते हैं। तब जिज्ञासु के लिये यह जानना भी कठिन हो जाता है कि उन दोनों में से कौन-सा सत्य है? और कौन-सा असत्य है?

उन दोनों में से जो सरल अर्थात् छल-प्रपंच रहित और वास्तविक सत्य है, वह आनन्द स्वरूप भगवान् तो बस, उसकी ही रक्षा करता है। असत्य को तो वह नष्ट ही कर देता है।

जगत की यही सनातन रीत, सत्य का होता बेड़ा पार।
मगर पापी की भरकर नाव, डूब जाती है बीच मझार॥

—साधु सोमतीर्थ

—=—

मुझको नई गति चाहिये

रचनाकार—श्री रमानाथ अवस्थी

—:०:—

जीवन कभी सूना न हो।
कुछ मैं कहूं, कुछ तुम कहो॥
तुमने मुझे अपना लिया।
यह तो बड़ा अच्छा किया।
जिस सत्य से मैं दूर था।
वह पास तुमने ला दिया।
अब जिन्दगी की धार में।
कुछ मैं बहूं, कुछ तुम बहो॥
जिसका हृदय सुन्दर नहीं।
मेरे लिये पत्थर वही।
मुझको नई गति चाहिये।
जैसे मिले वैसे सही।
मेरी प्रगति की साँस में।
कुछ मैं रहूं, कुछ तुम रहो॥
मुझको बड़ा सा काम दो।
चाहे न कुछ आराम दो।
लेकिन जहाँ थक कर गिरूँ।
मुझको वहीं तुम थाम लो।
गिरते हुए इन्सान को—
कुछ मैं गहूं कुछ तुम गहो॥
संसार मेरा मीत है।
सौंदर्य मेरा गीत है।
मैंने अभी समझा नहीं।
क्या हार है, क्या जीत है?
सुख-दुख मुझे जो भी मिले।
कुछ मैं सहूं, कुछ तुम सहो॥

(पृष्ठ १ का शेष)

देश को जय जवान और जय किसान की भावनाओं को चरितार्थ करना चाहिए। जिससे इन शब्दों के परस्पर के मेल को देखकर गीता की।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूति ध्रुवा नीतिर्मति मम॥
१८। ७८॥

ये भावनाएँ साकार हो उठें।

हास्य-कहानियाँ—

जन्म सोलह आने व्यर्थ

लेखक—श्री पण्डित विजयकुमार पुजारी

एक पढ़े लिखे बाबू साहेब पोरबन्दर से कच्छ जाने के लिए नौका में सवार हुए। बाबू ने मल्लाह से पूछा—

'तू कुछ पढ़ा भी है?'

'नहीं बाबूजी!' मल्लाह ने उत्तर दिया।

'तब तो तेरा चार आने जन्म व्यर्थ है। बाबू ने यह परिणाम निकाला। फिर बाबू ने नया प्रश्न किया—-

'क्या तूने शादी की है?'

'नहीं बाबूजी! अपना पेट पालना ही कठिन हो रहा है। शादी कैसे करूँ? मल्लाह ने वस्तु स्थिति बता दी।

'यदि शादी नहीं की तब तो तेरा आठ आना जन्म व्यर्थ हो गया।' यह बाबू ने नई सूचना दी। बाबू ने फिर पूछा—'अच्छा कुछ कला कौशल सीखा है?'

'नहीं बाबूजी! मैं केवल किश्ती चलाना ही जानता हूं।' भोले मल्लाह ने साफ बताया।

'तब तो तेरा बारह आना जीवन व्यर्थ है।' बाबू ने भूल सुधारी।

इतने में समुद्र में बड़े जोर का तूफान उठा। नौका डगमगाने लगी। चिन्तित होकर मल्लाह ने कहा—'बाबूजी! तूफान में नौका का चलना अब मुशकिल है। क्या आप तैरना जानते हैं?'

'नहीं, मैं तैरना तो नहीं जानता।' बाबू घबरा कर बोला।

इतने में नौका उलट गई। तैरकर किनारे की तरफ जाते हुए मल्लाह ने कहा—'बाबूजी! मेरा तो बारह आने भर जीवन ही व्यर्थ हुआ, परन्तु तैरना न जानने के कारण आपका जन्म तो सोलह आने व्यर्थ गया।

—श्री ज्ञानी

भांड-लीला

१. देहली के एक आर्य समाज का वार्षिक उत्सव था। पण्डाल में उपस्थिति पर्याप्त थी। एक तथाकथित शास्त्रार्थ महारद्दी महोपदेशक जी का गर्जन-तर्जन भरा जनूना भाषण हो रहा था। मंच पर बैठे हुए सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की नजरें बड़ी तेजी से चारों तरफ घूम रही थीं। उनके चेहरे पर परेशानी और विक्षोभ की मिश्रित छाप अंकित थी। ज्ञानी ने देखा और समझा कि पूज्य उपाध्याय जी को कोई कष्ट है और वे किसी को खोज रहे हैं। बात सच निकली। वे किसी परिचित व्यक्ति को ढूंढ रहे थे। ज्ञानी और उपाध्याय जी की आंखें आपस में लड़ गईं। ज्ञानी जाकर उनके दृष्टि-पथ में खड़ा हो गया था।

२. वे धीरे-धीरे, बैठे ही बैठे, खिसक कर ज्ञानी की ओर बढ़े। समीप आकर उन्होंने ज्ञानी के कन्धे पर अपना हाथ रखा। बोले:—

"ज्ञानी! मुझे जल्दी से कहीं दूर ले चल।"

३. उनकी बात गम्भीर भी थी और सर्वथा ही अप्रत्याशित भी। ज्ञानी चला। ज्ञानी के कन्धे का सहारा लेकर वृद्ध उपाध्याय जी भी धीरे-धीरे चले। अब, दोनों कोलाहल से दूर, अपेक्षाकृत एक एकान्त स्थान में होकर चल रहे थे। ज्ञानी ने समझा था कि पूज्य उपाध्याय जी के ऊपर किसी रोग ने अचानक ही आक्रमण कर दिया है। एक स्थान पर कुछ रुककर, ज्ञानी ने श्री उपाध्याय जी की तरफ प्रश्न सूचक ढंग से देखा और यह जानना चाहा कि क्या बात है? वे क्या चाहते हैं? अथवा कहाँ जाना चाहते हैं?

४. ज्ञानी के अभिप्राय को समझ कर बोले:—

"आपने देखा, यह मूर्ख कैसी-कैसी डींगें मार रहा है और क्या-क्या अनाप-शनाप हाँक रहा है? इस मूढ़ को इतना भी पता नहीं है कि मैं देहली की सुशिक्षित जनता के सामने बोल रहा हूँ। इसकी मूर्खतापूर्ण बातों को सुनकर लोग आर्य समाज के विषय में यही तो कहते होंगे कि आर्य समाज के उपदेशक अनाप-शनाप बोलकर लोगों का समय नष्ट किया करते हैं, दूसरों पर कीचड़ उछाला करते हैं और चिल्ला-चिल्ला कर हानिकारक विचारों का घास-कूड़ा जनता के दिल और दिमाग में भरा करते हैं। मुझे खेद है कि मेरी मौजूदगी में ही यह सब हो रहा है। यहाँ बैठने से तो लोगों की धारणा मेरे विषय में भी खराब हो जायेगी। यह सब कुछ न मैं सुन सकता हूं, न सहन ही कर सकता हूँ। इस भीषण-भाषण को मैं रोक भी नहीं सकता। इसलिए मुझे बहुत अधिक आत्म-ग्लानि हो रही है। शर्म के मारे मैं मरा जा रहा हूँ। चल, आगे चल। मुझे वहाँ ले चल, जहाँ इस ऊट-पटाँग भाषण के शब्द मेरे कानों से न टकरायें।"

५. महोपदेशक जी गर्ज-गर्ज कर अपने व्याख्यान का तूफान उठाये चले जा रहे थे। अपने व्याख्यानों की मोटी कापी जो उन्होंने उर्दू में लिख रखी है और जिसे ज्ञानी कई बार देख चुका है, उनके सामने मेज पर धरी थी। बीच-बीच में उसमें से वे कुछ न कुछ पढ़ते-सुनाते जाते थे और फिर अपनी कापी के पाठों पर जबानी जमा-खर्च द्वारा चैन, बेल, गोटा, फीता, झालर, सितारे, वगैरा-वगैरा भी लगाते थे।

६. उनके अप-भाषण का उद्घोषण था—"ईसाई-मत की पोल" इसमें शक नहीं कि पोल खोलने में वे तथाकथित महोपदेशक जी पागल-से हो रहे थे। उनका सम्पूर्ण भाषण "छोटा मुंह और बड़ी बात" का एक बहुत अच्छा नमूना था। उसमें हेत्वाभासों और शाब्दिक छल की भारी भरमार थी। महोपदेशक जी का वह रटन्त और

पेटेन्ट भाषण ज्ञानी ने पहले भी कई नगरों में कई बार सुना था, बाद में भी सुना। नया स्वाध्याय करना उन्होंने मुद्दत से छोड़ रखा है। पांच-सात रटे हुए भाषणों में ही वे जीवन भर वैदिक-धर्म का डंका बजाते रहे हैं। सब पेशेवर उपदेशक ऐसा ही किया करते हैं। जो कसर रहती है, वह खुशामद और चुगलखोरी से पूरी कर ली जाती है।

७. अस्तु, वे आवेश में अपनी सुध-बुध खोकर, "ईसाई-मत की पोल" खोल रहे थे। और, इसके साथ ही उनकी अपनी पोल भी खुलती जा रही थी। वे कभी हजरत लूत और उनकी बेटियों की मद्य-पान वाली व्यभिचार-कहानी ले बैठते थे, कभी माता मरियम के कुमारावस्था में ही गर्भवती होकर, महात्मा ईसा को जन्म देने का ठठ्ठा करने लगते थे। कभी उस मेरी मगदलनी का उपहास करते थे, जिसने इंजील के अनुसार ईसा के पाँव पर बहुमूल्य इतर डाला था और जो ईसा के सूली पर चढ़ा कर मारे और गाड़े जाने के बाद उसकी कब्र पर, ईसा की माँ मरियम के साथ जाकर रोती रहती थी। महोपदेशक जी की अश्लील-वार्ता से वातावरण गन्दा हो रहा था। स्त्रियों को तो वहाँ बैठना भी कठिन हो गया था।

८. क्योंकि श्रोता लोग शिष्टाचार-वश किसी भाषण के बीच में प्रायः कुछ भी बोलते और रोक-टोक नहीं करते हैं, भाषण के बाद भी कोई पूछ-ताछ नहीं होती, न ही अप-भाषणों के दोष दर्शाने, स्पष्टीकरण करने और भ्रम-निवारण के कोई निश्चित् विधि-विधान कहीं हैं, एवमेव प्रायः ठसाठस भरे हुए कार्यक्रमों में आलोचना या शंका-समाधान के लिए समय भी नहीं होता, अतः अप-भाषण-कर्त्ताओं को कभी भी अपने भाषणों की त्रुटियों का पता नहीं चलता। यही नहीं, पूछ-ताछ, रोक-टोक, जाँच पड़ताल के अभाव और मिथ्या-शिष्टाचार क प्रतिपालन के कारण उनको अनुचित बढ़ावा भी मिलता रहता है।

९. ऐसे अप-भाषकों की भूलों, भ्रान्तियों, अप-शब्दों, दुष्ट-प्रयोगों, अशुद्ध उच्चारणों, मिथ्या-तथ्यों, अनुचित परिणामों, अप्रासंगिक बातों और उन-उन की भीषणतम मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के विषय में अन्य सुयोग्य उपदेशक और सुविज्ञजन भी उन अप-भाषकों को कुछ नहीं बताते और उनको सुधारने का उद्योग नहीं करते। क्यों? इस लिये कि भूल के जताने पर अप-भाषकगण उनके व्यक्तिगत शत्रु बन जाते हैं, और झगड़ा-फिसाद करने लगते हैं।

सीख ताहि को दीजिये, जाको सीख सुहाय।
सीख जो दीजे बानरा, बैये का घर जाये।

१०. इस प्रकार भूलों, भ्रान्तियों, त्रुटियों, छल-प्रपंचपूर्ण वाग्जालों, हानिकारक और प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले अप-भाषणों की एक अत्यन्त अवाँछनीय परम्परा-सी इन दिनों चल चुकी है। जनता के अज्ञान, संकोच, मिथ्या शिष्टाचार और विज्ञजनों के कायरता मिश्रित उपेक्षा भाव के कारण अप-भाषकों को अनुचित प्रोत्साहन मिलता रहता है। भाण्ड-लीला का प्रसार दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। राजनीति के विवादों को धार्मिक सभा-सम्मेलनों में फैला कर, जनता की रुचि को बिगाड़ा भी जाता है।

११. पेशेवर उपदेशकों और अप-भाषक लोगों ने भ्रान्तिवश यह समझ लिया है कि निन्दा-चुगली के चक्कर चलाना, किसी की खुशामद और किसी से झगड़ा-फिसाद करना ही कामयाबी का गुर है। पढ़ने लिखने, स्वाध्याय वा साधना करने, उत्तम भाषण देने, उत्तम लेख लिखने, उत्तम काम करने और सत्य-शास्त्रों का बोध प्राप्त करने में वे कुछ विशेष रुचि नहीं रखते। वे तो चन्दा मांगना अर्थात् दमगज्जे चलाकर भोली-भाली, धर्म-प्रेमी जनता का शोषण करना ही उत्तम सम-

झते हैं। इसी कला में वे अधिक दक्षता प्राप्त करते हैं। खुशामदों, षड़यन्त्रों, भाई-भतीजावाद अथवा जात-पात के पक्षपात और स्वार्थपूर्ण सम्पर्कों के आधार पर वे धर्म-प्रचार का दम भरने वाली किसी चन्दा-एजेंसी के साथ अपना वैतनिक या कमीशन का सम्बन्ध बना लेते हैं। इस प्रकार अयोग्य होने पर भी वे लायसेंसदार उपदेशक वा किसी तथाकथित धर्म सभा के सूबेदार बन जाते हैं। जितना चन्दा माँगते हैं, उसी के अनुपात से ही इकरारनामे के अनुसार कमीशन-एजेंटों के बिल बन जाते हैं। अधिकस्य अधिकं फलम्। हाये चन्दा! वाये चन्दा!!

१२. एक भजनीक, जिसके सामने "कविरत्न" और पीछे "रेडियो सिंगर" के दो दुम-छल्ले भी जोड़े जाते हैं, एक जलसे में झूम-झूम कर गा रहा था—

अय राम के फरजादो! कुछ करके दिखा दो अब।
अय राम के फरजादो! अय राम के फरजादो!

१३. ज्ञानी सुनता रहा। सोचता रहा कि यह "राम के फरजादो!" क्या बला है? राम के काफरजादे तो कोई होतें ही नहीं। विचार कर-करके ज्ञानी ने भजनीक की भूल समझ ली।

१४. एकान्त में ज्ञानी ने भजनीक को बतलाया कि उसके गीत में भूल है। वह भूल को सुधार ले। यथा—

अय राम के फरजन्दो! कुछ करके दिखा दो अब।

वह मूर्ख बुरा मान गया। बिगड़ कर बोला—

"ज्ञानी जी! आपको तो दूसरों की गलतियां निकालने की बीमारी हो गई है। ज्ञानी ने चुप साध ली।

शराफत को सरे-आफत,
दुआ को अब दगा समझे।
पड़ें इस अक्ल पर पत्थर,
अगर समझे तो क्या समझे॥

१५. जिला अलीगढ़ के अतरौली नामक नगर में आर्य समाज के एक वयोवृद्ध विद्वान्, धनी-मानी नेता रहते हैं। मैजिस्ट्रेटी का मजा भी वे चख चुके हैं। नाम है उनका—श्री पण्डित राजेन्द्र जी। भारत में मूर्ति पूजा, सनातन-धर्म, महर्षि दयानन्द के पुण्य-संस्मरण और पुनर्जन्म-स्मृति आदि-आदि कई उत्तमोत्तम पुस्तकों के वे यशस्वी प्रणेता हैं। एक पुस्तक-विक्रेता के कहने से उन्होंने एक नौजवान अप-भाषक को सुयोग्य व्याख्याता समझ कर अतरौली बुला लिया था, वैदिक-धर्म का प्रचार करने के लिये।

१६. नवयुवक अप-भाषक वहां अपनी विचित्र धजा बना कर पहुंचा था। हूलिया देखिये—सर पर लम्बे बाल, मुख-मण्डल दाढ़ी से आच्छादित, पाँव में खूंटी वाली खड़ाकेदार खड़ाऊँ और हाथ में संन्यासियों जैसा काल दरयायी नारियल का कमण्डल। आंखों में घरेलु काजल शायद नहीं। "एक बड़े तरुण-तपस्वी विद्वान् का व्याख्यान होगा।" ऐसा कह-कह कर लोगों को व्याख्यान सुनने के लिए आर्य समाज मन्दिर में आमन्त्रित किया गया। नियत समय पर व्याख्यान आरम्भ हुआ। अत्यन्त निराशाजनक। टांय-टांय, फिश। श्रोतागण आपस में एक दूसरे के मुंह ताकने लगे। श्री पंडित राजेन्द्र जी को भरी सभा में लज्जित होना और पछताना पड़ा। मारे शर्म के वे सभा-स्थल को छोड़कर चले गये। फिर तो एक-एक करके सभी समझदार लोग उठ गये। अभिभापक जी बोलते रहे। शायद घुटे हुए व्याख्यान को बन्द करने की कला वे जानते न होंगे। उलटा असर पड़ा। बदनामी हुई आर्य समाज की।

१७. एक नौजवान उपदेशक जी उत्तर प्रदेश में अधिक घूमते और अपने आपको प्रकाशवीर शास्त्री का अवतार समझते हैं। वे एक सभा में कह रहे थे:—

"जब रूस के राजा, बलगानिन और खुरश्चेव जब भारत आये, तब एक अवसर पर उनको कुछ

पुस्तकें भेंट की गईं । पुस्तकों को देखकर वे बोले—"इन पुस्तकों की हमें आवश्यकता नहीं है। यदि भेंट देनी ही है, तो हमें वेद दो, वेदों का महर्षि दयानन्द कृत भाष्य दो और महर्षि दयानन्द के ग्रन्थ हमें दो।"

वातावरण मूर्ख-श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

१८. ये ही महामान्य जी एक अन्य सभा में बता रहे थे—"जब इंगलैड की महाराणी भारत में आई, तब संवाददाताओं को उन्होंने बतलाया—"महर्षि दयानन्द के भारत में आकर आज मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।"

वहां भी मूर्खों ने तालियाँ बजाईं।

१९. एक प्रसिद्ध टोटका है। एक नगर-कीर्तन में एक भजनीक जनता की ओर हाथ करके गाता था—

बिन भजन जन्म तू खोता है।
तू खोता है, तू खोता है ॥ बिन……

स्त्रियों की ओर हाथ नचा कर वह कहता था—

बिन भजन जन्म तुम खोती हो।
तुम खोती हो, तुम खोती हो ॥ बिन…

एक सज्जन ने आगे बढ़कर भजनीक का हाथ झटका दिया और डाँट कर कहा –

"ओ खोते के बच्चे ! कोई अच्छी बात सुना सके तो सुना। इस बकवास को बन्द कर।"

२०. गोरखपुर की एक घटना बताई जाती है—

एक भजनीक जलसे में गाता था—

स्वामी जी तुम पतित उधारनहार।
स्वामी जी तुम पतित, पतित, पतित,
पतित, पतित, पतित, पतित उधारनहार।
पिता जी तुम……

वह मूर्ख आलाप भरता, पतित, पतित बकता, और अपना हाथ मंच पर विराजमान एक पूज्य संन्यासी जी की ओर बढ़ा देता था। दु:खी होकर वे संन्यासी जी उठकर चले गये थे।

२१. यदि कोई रट्टा-वादी अप-भाषकों के नमूने देखना चाहे तो वह दस-बीस रविवारों को देहली के आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्संग देखे। ऐसा करने से उन्हें चूर्ण, चटनी, दवाई और पुस्तक बेचने वाले एवं बेर को तरबूज बतलाकर चन्दा मांगने वाले नाना प्रकार के भड़ाम सिंह बहुत ही आसानी से मिल जायेंगे। एक दिन डाकखाने का एक चपरासी अपनी धार्मिक वीरता दिखाने के लिए आर्य समाज लाजपत नगर में गया था। सत्संग में चार-पांच बूढ़े थे और सात-आठ बूढ़ी-बूढ़ी देवियां। अपने भाषण में उन श्रीमान् ब्रह्म बंधु जी ने सबको अपना रटा हुआ "ब्रह्मचर्य-वाद" का भाषण सुनाया। वीर्य रक्षा और सन्तान निर्माण के उपायों से वे बूढ़े श्रोता कुछ भी लाभ न उठा सके। क्योंकि उनकी बहार तो पहले ही लुट चकी थी। लेकिन अभिभाषक जी का क्या दोष ? उनको तो तमंचा चलाना था, सो चला दिया। बूढ़ा मरे या जवान ! रोटी तो किसी तौर कमा खाये कलन्दर। यदि दोष है, तो उस एजेंसी का है, जो ऐसे-ऐसे वीरों को धर्मोपदेशक बनाकर चलाती हैं। या उन श्रोताओं का दोष है, जो गली-सड़ी और बदबूभरी बातों को चुपचाप पी जाते हैं।

२२. देहली में २१-५-६१ को रात के समय नौवें आर्य महा सम्मेलन में एक भजनीक को गाने का समय मिला। उसने ठुमक-ठुमक और मटक-मटक कर टटियाना शुरू कर दिया—

चीन पै चढ़ाई है जी, चीन पै चढ़ाई है।
चीन पै चढ़ाई है जी, चीन पै चढ़ाई है ॥

२३. आचार्य भवानीलाल भारतीय एम० ए० और आचार्य शिवपूजन सिंह [अब एम० ए०] तब ज्ञानी के पास बैठे थे। आर्य-संसार भली प्रकार से जानता है कि आर्य समाज के ये दोनों

प्रबुद्ध लेखक और समर्थ समालोचक बहुत वर्षों से अपनी लेखनी द्वारा वैदिक-धर्म की अत्यन्त सराहनीय सेवा करते आ रहे है। उकता कर वे बोले—

"क्या इस भजनीक का यह प्रलाप सुनने के लियें ही हम यहाँ आये हैं? आर्य समाज तो सभी का समालोचक है; परन्तु कोई आर्य समाज की समालोचना करने वाला भी अवश्य ही होना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि आर्य समाज भी एक दब्बू और रूढ़ीवादी टोला बन जाये।"

२४. होता प्रायः यह है कि कोई एक वक्ता नाटकीय ढंग से मंच पर आता है और रटैत-भाषा में बोलता है। थोड़ी-थोड़ी देर में हंसी-मजाक के चुटकलों, घिसी-पिटी हुई कहानियों और भूंडों, अनावश्यक एवं अप्रासंगिक बातों की पुट दे देकर, वह अपने भाषण को मनोरंजक, हास्य-रस-पूर्ण और सफल बनाने में जुट जाता है। कभी-कभी तो वह सभा वा सम्मेलज के उद्देश्य और अपने मुख्य वक्तव्य को भी भूल जाता है। गंवार-वक्ता या ग्राम-प्रचारों के वक्ता तो अपने मनोकल्पित विरोधियों को बहुत भद्दी और सीधी गालियां भी दिया ही करते हैं। ऐसे-ऐसे प्रसगों में उस सुयोग्य शान्त, समर्थ, साधना सम्पन्न वक्ता को अपमानित भी किया जाता है, जो गम्भीरता पूर्वक धर्म की ही बातें बोलता है और हास्यारसावतार नहीं बनता, या बनना ही नहीं चाहता।

२५. और भी एक हास्यास्पद दृश्य वारम्बार देखने में आता है। कोई एक अर्ध-शिक्षित भाषक बोलने के लिए खड़ा होता है। उसका उच्चारण अत्यन्त भ्रष्ट है। वह ऐसे ग्रन्थों की प्रशंसा या निन्दा करता है, जिनके उसने कभी दर्शन भी नहीं किये। वह ऐसे सिद्धान्तों का खंडन या मंडन करता है, जिनको वह समझता नहीं, समझ सकता नहीं, और समझना चाहता भी नहीं। वह ऐसी बातें बोलता है, जिनकी उसके अपने जीवन से स्पष्ट और प्रत्यक्ष असंगति हैं। इन बातों का प्रभाव सर्वत्र उलटा ही होता है।

२६. उपदेशक का कार्य तो सुयोग्य, अधिकारी और सदाचारी जनों को ही शोभा देता है। यह कार्य अन्य पेशों जैसा धन कमाने का एक पेशा न बने, और पेशेवर उपदेशकों को इस कार्य में प्रवृत्त होने पर बढ़ावा न मिले, तभी उत्तम है। जब सुयोग्य जन उपदेश-कार्य में प्रवृत्त होते हैं, तभी इष्ट-लाभ भी होता है। अन्यथा तो शक्ति और साधनों का अपव्यय ही होता है।

२७. सत्यार्थ-प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं...

"जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धकार-परम्परा चलती है।"

२८. सच है—

तुम्हारी तहजीब अपने खंजर
से आप ही खुदकुशी करेगी।
जो शाखे नाजुक पै आशियाना
बनेगा नापायेदार होगा॥

ईश्वरीय-ज्ञान वेद

लेखक—स्वर्गीय श्री अरविन्द घोष

अनुवादक—श्री स्वामी अभयदेव जी वरथावल

वेद एक ऐसे युग की रचना है जो हमारे बौद्धिक दर्शनों से प्राचीन था। उस प्रारम्भिक युग में विचार हमारे तर्कशास्त्र की युक्ति प्रणाली की अपेक्षाभिन्न प्रणालियों से आरम्भ होता था और भाषा की अभिव्यक्ति के प्रकार ऐसे होते थे, जो हमारी वर्तमान आदतों में बिल्कुल अनुपादेय ठहरते हैं उस समय बुद्धिमान से दुद्धिमान मनुष्य अपने सामान्य व्यवहारिक बोधों तथा दैनिक क्रिया-कलापों से परे के बाकी सब ज्ञान के लिए आभ्यान्त अनुभूति पर और अन्तर्ज्ञानियुक्त मन की सूझों पर निर्भर करता था। उस का लक्ष्य था ज्ञानालोक, न कि तर्क सम्मत निर्णय, उसका आदर्श था, अन्तः प्रेरित द्रष्टा, न कि यथार्थ तार्किक।

भारतीय परम्परा ने वेदों के उद्भव के इस तत्व को बड़ी सच्चाई के साथ सम्भाल कर रखा हुआ है। ऋषि सूक्त का वैयक्तिक रूप से स्वयं निर्माता नहीं था, वह तो द्रष्टा था एक सनातन सत्य का, और एक अपौरषेय ज्ञान का। वेद की भाषा स्वयं "श्रुति" है एक छन्द है, जिसका बुद्धि द्वारा निर्माण नहीं हुआ, बल्कि जो श्रुति-गोचर हुआ। एक दिव्य वाणी है, जो कम्पन करती हुई असीम में से निकल कर, उस मनुष्य के अन्तःकरण में पहुंची, जिसने पहले से ही अपने आपको अपौरषेय ज्ञान का पात्र बना रखा था।। "दृष्टि" और "श्रुति" दर्शन और श्रवण ये शब्द स्वयं वैदिक मुहावरे हैं। ये और इनके सजातीय शब्द मन्त्रों के गूढ़ परिभाषाशास्त्र के अनुसार स्वतः-प्रकाश--ज्ञान को दिव्य अन्तः श्रवण के विषय को बताते हैं।

स्वतः प्रकाश-ज्ञान अर्थात् इलहाम या ईश्वरीय-ज्ञान की वैदिक कल्पना में किसी चमत्कार या अलौकिकता का निर्देश नहीं मिलता। जिस ऋषि ने इन शक्तियों का उपयोग किया, उसने एक उत्तरोत्तर वृद्धि-शील आत्मसाधना के द्वारा इन्हें पाया था। ज्ञान स्वयं एक यात्रा और लक्ष्य प्राप्ति थी। एक अन्वेषण और एक विजय थी; स्वतः प्रकाश की अवस्था केवल अन्त में आई; वह प्रकाश एक अन्तिम विजय का पुरस्कार था। वेद में यात्रा का यह अलंकार सत्य के पथ पर आत्मा का प्रमाण, सतत रूप से मिलता है। उस पथ पर जैसे यह अग्रसर होता है, वैसे ही आरोहण भी करता है। शक्ति और प्रकाश के नवीन क्षेत्र इसकी अभीप्साओं के लिए खुल जाते हैं। यह एक वीरतामय प्रयत्न के द्वारा अपने विस्तृत हुए आध्यात्मिक ऐश्वर्यों को जीत लेता है।

मानव-धर्म

लेखक—श्री पण्डित नरदेव जी शास्त्री, व्याकरणाचार्य वाराणसी

यह संसार सुख के सभी साधनों से सुसम्पन्न है। मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए उत्तम से उत्तम साधन यहाँ मौजूद हैं। भौतिक विकास तो अब मनुष्य के लिए अलभ्य आनन्द को जुटाने में भी संलग्न है। आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति के लिये आचार्यों ने समय-समय पर जो खोज और उहापोह की है, वह सब भी उत्तम रूप में उन-उनके ग्रन्थों में सुरक्षित और पुस्तकालयों में सुरक्षित है। भौगोलिक दूरियाँ भी अब तो नगण्य-सी होकर रह गई। रेलों, मोटरों और जल एवं नभ-यानों से आगे बढ़ कर अब तो हम राकेट-युग में आ पहुंचे हैं।

फिर भी संसार अशान्त क्यों? मनुष्य का जीवन कष्टमय हैं। एक महाभयंकर संघर्ष में अखिल मानवता झूझ रही है। मानव-जीवन में न भौतिक-सुख का संचार है, न ही आत्मिक सुख और मानसिक सन्तोष अथवा तृप्ति की कोई झलक। आज तो मनुष्य ही मनुष्यता का सबसे बड़ा बैरी सिद्ध हो रहा है। वह एक दूसरे को अपने आधीन करने, आत्मसात करने, उसे चूसने और सन्तानहीन करने के लिए उत्साही हो रहा है। अपने नीच स्वार्थों की पूर्ति के लिए नीचता की निम्नतम सीमाओं को भी आज का तथाकथित सुसभ्य मानव निर्लज्जतापूर्वक लाँघ चुका है। ये असंगत, दुःखद और विक्षोभकारी दृश्य दृष्टि-पथ में क्यों आ रहे हैं? इसलिये कि आज-कल की भौतिकता भी अपूर्ण है और नैतिकता भी। मानव-जीवन में उच्च-आदर्शों का सर्वथा ही अभाव है। और, मनुष्य का दृष्टि-कोण भी सदोष एवं स्वार्थ-भरा है। उदार-विचार, त्यागशीलता और कर्तव्य-परायणता के अभाव में कैसा सुख और कहां की सरसता। उलटे कामों का उलटा परिणाम तो होता ही है।

वेद कहता है [मनुर्भव—ऋ० १०।५३।६] मनुष्य बन। मननशील बन। मानवता का जो अकाल आज-कल दिखाई देता है, यह कोई नया नहीं है। यह तो बहुत पुराना है। आज तो खोज करके भी किसी सच्चे मनुष्य को प्राप्त कर लेना अत्यन्त कठिन है। ● कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान। कोई सिख, कोई ईसाई या मूसाई। मानवता का तो मानो स्रोत ही सूख गया है। जात-पात और साम्प्रदायिकता के विष से परिपूर्ण नामों एवं भावों ने सम्पूर्ण मानवता को ही विषाक्त, नष्ट-भ्रष्ट अथवा निस्सार बना डाला है। जो हिन्दु है, वही पहले ब्राह्मण वा क्षत्रिय भी है। यहां तो जात में से जात निकलती है और अछूत-दर-अछूत की विनाशक परम्परा भी चलती है। कैसी विचित्रता है? एक तथाकथित अछूत अपने अधिकारों को तो लेना चाहता है; परन्तु वह दूसरे तथाकथित छोटे अछूतों के अधिकारों को देना नहीं चाहता। वैश्य और शूद्र ये दोनों शब्द भी बहुत पुराने हैं। इन दोनों शब्दों के जो किताबी या शास्त्रीय अर्थ हैं, उनका प्रचलन तो आज-कल कहीं नहीं है, तथापि स्थिति बुरी ही है। शास्त्रों के लेख अस्पष्ट भी हैं, भ्रामक भी। आत्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति के सभी अवसर और प्रसंग बेचारे तथाकथित वैश्यों और शूद्रों के लिए शास्त्रों की उलझनों एवं रस्म-रिवाजों और रूढ़िवादों में फंस कर दम तोड़ चुके हैं। लांछन, परिताप, अभाव, अपमान और प्रवंचन ही उनके पल्ले पड़े हैं। सामर्थ्य और बोध के रहने पर भी उच्चतर जीवन यापन की सुख-सुविधाओं से कुछ थोड़े से लोगों ने ही, बहुत बड़े मानव-समाज को वंचित कर रखा है। यहाँ तो शोषितों को लोरियाँ और थपकियाँ दे-देकर

● हमने माना है फरिश्ते शेख जी।
आदमी होना बड़ा दुश्वार है॥

सुलाया भी जाता है। ऐसी स्थिति में वेद यह अपूर्व ज्योतिश्छटा छिटकाता है हम मनुष्य हैं। हम पहले मनुष्य हैं, फिर कुछ और।

जिस दिन मानवता की विशुद्ध भावना अखिल मानव-समाज में सम-रस हो जायेगी, उसी दिन मानवता के वर्तमान क्लेशों, अभावों, विक्षोभों और पतनोन्मुख प्रवाहों का अन्त होगा। तभी मनुष्य और मनुष्य के पारस्परिक राग-द्वेष तथा छीना झपटी के उद्योग भी समाप्त होंगे और तभी मानवता की आशा-लता हरी होगी, दिल की कली खिलेगी।

वेदादि सत्य-शास्त्रों में सुन्दर-सुन्दर उपदेशों की कोई कमी न पहले थी, न अब है। + परन्तु आजकल के मनुष्य और समाज का जीवन तो शास्त्रों के उपदेशों से विपरीत दिशा में ही सवेग बहता चला जा रहा है। शास्त्रों के उपदेशों से आज का मनुष्य बहुत दूर जा पड़ा है। शास्त्रीय उपदेश आज कल या तो अलमारी की शोभा बढ़ाते हैं, अथवा वे जबानी-जमा-खर्च के काम आते हैं। हमारे वर्तमान जीवन की असंगतियों और शास्त्र-विमुख प्रगतियों को देखकर तो आज बुद्धिमानों को इस विषय में भी सन्देह हो चला है कि ये शास्त्रोपदेश हमारे ही पूर्वजों के हैं, या किसी और के?

स्थिति विषम है। यदि हम शीघ्र ही न सम्भलेंगे और अपने जीवन की असंगतियों को न सुधारेंगे, तो हमारे वर्तमान और भविष्य दोनों ही नष्ट हो जायेंगे। हमारी महत्ता का ही नहीं, सत्ता का भी विलोप हो जायेगा। लोक और पर-लोक दोनों ही बिगड़ जायेंगे। क्या हममें से कोई कभी इस बात पर कुछ विचार करता है कि हमारे असंगत; अनुदार, भौतिकतावादी, विकार-ग्रस्त और लोलुपतापूर्ण जीवन-क्रम ने हमारे महान ऋषि-मुनियों, श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थों और सर्वहित-कारी शास्त्रीय उपदेशों को भी निन्दित एवं अवां-छनीय वर्ग में ला पटका है? संसार हमारे जीवन-क्रम को देखकर ही अपना मन्तव्य स्थिर कर लेता है। हमारे शास्त्रों की ओर देखने की तो वह आव-श्यकता ही नहीं समझता। +

हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि हमारे संकीर्ण दृष्टि-कोण, मिथ्या-व्यवहार और दूषित आदर्शों ने बहुत से मेधावी आत्माओं के बुद्धि-वैभव को कुण्ठित ही किया है। हमने अपने काले कानूनों द्वारा बहुत से पुण्यात्माओं का शोषण भी किया है और उनके उन्नति-पथ में भारी बाधायें भी डाली हैं। यद्यपि कुछ सहृदय पुरुषों ने जागृति फैला कर और कानून बनवाकर अखिल मानवता को समता के आधार पर प्रतिष्ठित करने और पुरानी भूलों को सुधारने के कुछ प्रयास भी पिछले कुछ ही वर्षों में किये हैं; परन्तु उनका परिणाम कुछ नहीं निकला। सुधार की गति अप्रगति बनकर ही रह गई है। प्रतिदिन वर्ग-संघर्ष उग्रतर रूप धारण करता जा रहा है। हमें चाहिये कि हम मानवता के सच्चे सीधे और सुलझे हुए मार्ग पर चलकर वर्ग-संघर्ष को शान्त करें और प्रतिशोध की ज्वालाओं को अधिक भड़कने न दें। अन्यथा रही सही मानवता के साथ ही शोषक वर्गों के सर्वनाश के अवाँछनीय दृश्य हमें देखने ही पड़ेंगे।

वैदिक-पथ तो संसार से आजकल ऐसे लुप्त हो गया है, जैसे बाढ़ में विशुद्ध गंगा-जल। सुधार का उपाय एकमात्र यही है कि मनुष्य, मनुष्य बने।

(शेष २४ पेज पर में)

+ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। [यजु० ३६-१८]
हम प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखें।

+ खुदा के बन्दों को देखकर ही,
खुदा से मुमकिर हुई है दुनिया।
कि ऐसे बन्दे हैं जिस खुदा के,
वह कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

वह फूल जो काँटों में खिला

कहानीकार—कुंवर जगदीश शरण "अबोध" बरेली

नरेशचन्द्र एक जमींदार थे। कई गांवों में उनकी जमींदारी थी। उनका जीवन सुख पूर्वक व्यतीत होता था। उनके दो बहन और दो भाई थे। वे भी सुखपूर्वक रहते थे। उनके एक लड़का था। उसका था नाम सुरेश।

सुरेश, नरेशचन्द्र का इकलौता पुत्र था। सुमित्रा, नरेश की धर्मपत्नी थी; कहते हैं—जब गर्दिश के दिन आते हैं तो ईश्वर उसी प्रकार का प्रपंच रचते हैं।'

वही हुआ—

नरेशचन्द्र का झगड़ा एक राज्य कर्मचारी से कई दिनों से चल रहा था, एक दिन उस झगड़े ने उग्र रूप धारण कर लिया, तू-तू, मैं-मैं तक नौबत आई, विरोधी कर्मचारी ने जमींदार नरेशचन्द्र को चेतावनी दी।

\+ + +

समय का चक्र चालू रहा, लापरवाह जमींदार ऐश-आराम में निमग्न होते गए। विपक्षी कर्मचारी की चेतना को एक स्वप्न की नाईं समझने लगे।

एक दिन अचानक—

धांय!

धांय!!

धांय!!;

तीन फायर वेग के साथ हुए; जिनमें दो खाली गए, एक फायर जमींदार के हाथ पर पड़ा। जमींदार विलासप्रिय अवश्य थे किन्तु कायर न थे जब तक कि उन्होंने बन्दूक में कारतूस डाला कि···धांय! एक फायर और···और फिर तो फायरों की झड़ी लग गई, और अन्त में जमींदार का शरीर एक छलनी की भांति छिद्र युक्त पाया। इस घटना के शिकार उनके बड़े भाई और माता जी भी स्वर्गवासी हुईं।

अब रहा सुरेश और अभागिनी सुमित्रा।

सुरेश अनाथ था और सुमित्रा विधवा, अब जमींदार का छोटा भाई रमेश कार्यकारी जमींदार बना, रमेश ने सुमित्रा व सुरेश को पेन्शन के रूप में जमींदारी की आय का कुछ भाग दिया। अनजान सुरेश और निष्कपट सुमित्रा ने उस पेंशन को जमींदारी का सम्पूर्ण भाग ही समझा।

सुरेश अभी दस वर्ष की आयु का अपर प्राइमरी की सीनियर कक्षा का छात्र था। कार्यकारी जमींदार रमेश जमींदारी का असली मालिक बनना चाहता था।

परिणाम यह हुआ कि रमेश ने क्रूरता पूर्ण अत्याचार सुरेश पर करने प्रारम्भ किए "चाहे सुरेश स्कूल जाए या न जाए किन्तु उसे कार्यकारी जमींदार रमेश की आज्ञा का पालन करना होगा" यही रमेश की आज्ञा सुरेश के लिए थी।

जमींदार रमेश, सुरेश को समझाता था।

हमारा मुख्य धन्धा खेती है। खेती से गुजारा होता है। खेती करने वाले के घर में अन्न देवता हर समय वास करते हैं आदि।

सुरेश यदि स्कूल जाए या न जाए कोई पाबंदी नहीं थी, किन्तु सख्त सजा थी यदि वह रमेश के समझाए हुए मार्ग पर नहीं चलता, कृषि कार्य न करने पर गाली गलौज की बौछार के उपरान्त लाल-लाल आंखें सुरेश को देखनी पड़ती, परन्तु सुरेश एक आज्ञाकारी था। प्रत्येक कार्य मन लगाकर करता किन्तु रमेश उसे चैन से बैठने ही न देता।

एक दिन रमेश, सुरेश को समझा रहा था, "कल भलुआ का लड़का पशु चराने नहीं गया, भलुआ ने आज दिन भर रोटी नहीं दी, आज भूखा ही पशु चराने गया है। तुम्हारे तो हिय की भी

गौ माता

गाये हमारे घर जो रहती ।
इक दिन वह हमसे थी कहती ।।
लड़को सुन लो बात हमारी ।
मैं हूं मात-समान तुम्हारी ।।
कड़वी घास है मेरा चारा ।
भूसा भी है मुझको प्यारा ।।
मैं जो जल्दी-जल्दी खाती ।
धीरे-धीरे उसे पचाती ।।
पहले झट-पट पेट हूं भरती ।
पीछे बैठ जुगाली करती ।।
मेरा दूध पिया है तुमने ।
रोगी तक को दिया है तुमने ।।
यूं तो बकरी भैंस भी पालें ।
उनके थन से दूध निकालें ।।
होता मेरा दूध है जैसा ।
होता नहीं है उनका वैसा ।।
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई
मेरे दूध की करें बड़ाई ।।
मेरे दूध को सब औटाते ।
भाँति-भाँति के भोग बनाते ।।
खोया, रबड़ी, दही, मलाई ।
क्या-क्या वस्तु न तुमने खाई ।।
खोये में जब खाँड मिलावें ।
पेड़े, बरफी लोग बनावें ।।
दूध ही से निकले घी-मक्खन ।
जिनके बिना है फीका भोजन ।।
देखो मेरे बेटे पोते ।
नगर गाँव में बोझा ढोते ।।
जाते मरे बोझ के मारे ।
करें तुम्हारा काम बिचारे ।।
रक्खो लड़को मेरा ध्यान ।
इसमें सबका है कल्याण ।।

फूट गई, कहते हैं कि पढ़ने वाले की चार आंखें होती हैं पर तुम्हारे एक आँख भी नहीं ।"

सुरेश एक दिन बारह बजे स्कूल से लौटा था कि रमेश ने पहली जैसी ही गाथा आरम्भ कर दी। बेचारा सुरेश, आज्ञा समझ कर ठीक उसी समय अप्रैल के महीने में पशु चराने चल दिया, स्वास्थ्य की चिन्ता भी न की। दूसरे ही दिन सुरेश उस ठीक दुपहरी को रास्ते में एक पेड़ के नीचे बैठकर स्कूल से आते समय ही पढ़ लिया करता था।

विद्यार्थी रात में पढ़ते हैं पर किसका वश था, जो रात को पढ़ता, दिन भर थका हुआ, रात को निद्रा घेर लती थी।

सुरेश ने सभी कठिनाइयों का सामना अपनी माता के सहयोग से युक्ति पूर्वक किया।

कबीर ने कहा है—

"बुरा जो मैं देखन चला, मुझ सा बुरा न कोय।"

अर्थात् रमेश ने सुरेश के बारे में बुरा सोचा तो फल हुआ कि जमींदारी उन्मूलन हुआ, अंग्रेजी राज्य गया। रमेश ने जमींदारी का असली मालिक बनने की सोची किन्तु उसके हाथ से भी जमींदारी चलीं गई।

किसी ने कहा है कि जो पुरुष कठिनाइयों का मुकाबला धैर्य और साहस से करते हैं सदैवविजयी होते हैं ।

सुरेश ने अथक परिश्रम के बाद द्वितीय श्रेणी में हाईस्कूल किया और स्टेशन मास्टर के सलेक्शन में बैठा और वह पास हो गया।

अब लोग उसके बारे में कहते हैं सुरेश, "वह फूल है जो काँटों में खिला है।"

अच्छा चारा मुझे खिलाओ।
अच्छा पानी मुझे पिलाओ ।।
अच्छी जगह में मुझको रक्खो।
फिर तुम अच्छा दूध भी चक्खो ।।
जैसे करोगे मेरी सेवा ।
वैसा ही पाओगे मेवा ।।

कौड़ी के तीन हैं !

[स्वर्गीय महाकवि "नजीर"]

(१)

कौड़ी है जिनके पास वे अहले यकीन हैं।
खाने को उनके नेमतें सौ बेहतरीन हैं॥
कपड़े भी उनके तन में निहायत महीन हैं।
समझे हैं उनको वे जो बड़े नुकता चीन हैं॥
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(२)

कौड़ी बगैर सोते थे, खाली जमीन पर।
कौड़ी हुई तो रहने लगे शहनशीन पर॥
पटके सुनहरी बन्ध गये जामू की चीन पर।
मोती के लच्छे लग गये, घोड़ों की जीन पर॥
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(३)

कौड़ी ही चाहती है सदा बादशाह को।
कौड़ी ही थाम लेती है फोज औ सिपाह को॥
लेकर छड़ी रूमाल गदा भी निबाह को।
फिरता है हर दुकान पर कौड़ी की चाह को॥
कौड़ी के सब जहान में नकशो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(४)

कौड़ी न हो तो फिर यह झमेला कहाँ से हो।
रथखाना, फीलखाना, तबेला कहाँ से हो॥
मण्डवा के सिर फकीर का चेला कहाँ से हो।
कौड़ी न हो तो साईं का मैला कहां से हो॥
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(५)

कान्धे पै तेग धरते हैं कौड़ी के वास्ते।
आपस में खून करते हैं कौड़ी के वास्ते॥
याँ तक तो लोग मरते हैं कौड़ी के वास्ते॥
जी जान दे गुजरते हैं कौड़ी के वास्ते॥
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(६)

गाली व मार खाते हैं कौड़ी के वास्ते।
शर्म-ओ हया उठाते हैं कौड़ी के वास्ते॥
सौ मुल्क छान आते हैं कौड़ी के वास्ते।
मस्जिद व मन्दिर ढाते हैं कौड़ी के वास्ते।
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(७)

बिन कौड़ी खोरदे के बराबर भी पत न थी।
कौड़ी जब आई पास तो बन बैठे सेठ जी।
आगे गुमश्तों के खुली हर तरफ बही।
फिर वह जो कुछ कहे तो वही बात है सही॥
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(८)

बिन कौड़ी थीं जो तेल की बासी पकौड़ियाँ।
कौड़ी हुई तो छनने लगी लम्बी-चौड़ियाँ॥
यूं खल्क दौड़ी मक्खियाँ ज्यूं गुड़ पै दौड़ियां।
खालिक ने क्या ही चीज बनाई हैं कौड़ियाँ॥
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन है।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन है॥

(९)

खासे महल उठाते हैं कौड़ी के जोर से।
पक्के कुएं बनाते हैं कौड़ी के जोर से॥
पुल और सरा बनाते हैं, कौड़ी के जोर से।
बागो चमन लगाते हैं, कौड़ी के जोर से।
कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

(१०)

ले मुफलिस और फकीरसे ता शाह और वजीर।
कौड़ी वह दिलरुबा है कि सबके दिल पजीर॥
देते हैं जान कौड़ी पै तिफ्लो जवान, पीर।
कौड़ी अजब ही चीज है, मैं क्या कहूँ नजीर॥
कौड़ी के सब जहान हैं नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥

क्या हम आर्य हैं ?

लेखिका—श्रीमती शारदा देवी जी. 'प्रभाकर', 'सिद्धान्त शास्त्री' देहली

सोलह संस्कारों में से नाम करण संस्कार भी एक है। स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति या समाज के उत्थान में उसका श्रेष्ठ और उत्तम नाम होना भी एक विशेष महत्व रखता है, तभी तो ऋषियों ने इसे मानवी जीवन के लिए आवश्यक संस्कारों में स्थान दिया है। यदि एक व्यक्ति का नाम 'रणवीर' है और वह कायरता की बातें करता है तो हम उसे लज्जित करते और उसके नाम की दुहाई देते हुए कह सकते हैं कि—अरे ! 'रणवीर' हो कर यह कायरता !! उठ ! खड़ा हो !! अपने आपको सचमुच ही रणवीर सिद्ध कर !!! सचाई तो यह है कि बचपन से ही जब उसे 'रणवीर', 'रणवीर' करके पुकारा जावेगा तोउसमें, चाहे बहुत कम सही, अवश्य ही वीर भाव उत्पन्न होंगे। जिसका नाम ही 'रणछोड़ दास' है उसे किस नाम से उत्साहित करें ? अस्तु।

इसी आधार पर हम अपने आपको 'आर्य' कहलाने में गौरव समझते हैं। 'आर्य' के अथवा "श्रेष्ठ' उत्तम, कर्मशील, अग्रगामी, सच्चा, तपस्वी इत्यादि"। किन्तु अपने आपको आर्य कहला कर ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिएं। हमें ऐसा आचरण भी करना चाहिए जिससे कि हम अपने 'आर्य नाम को लज्जित न करें। हमें नित्य प्रति अपने आपको टटोलना और देखना चाहिए कि हम में कहाँ तक आर्यत्व के गुण हैं और कहाँ तक नहीं। कहां तक आर्यमर्यादानुकूल आचरण करते हैं, कहाँ तक नहीं।

यह ठीक है कि सर्वगुण सम्पन्न तो स्वयं ओ३म् ही है। मनुष्य में कुछ न कुछ कमी तो रहती ही है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम आर्यत्व की ओर बढ़ने का कुछ भी यत्न करें। जितने भी श्रेष्ठ गुणों का धारण एवं शुभ आचरण हम करेंगे उतने ही हम भगवान् के निकट आ जावेंगे। हम सत्+चित् (नित्य और चैतन्य) हैं। ईश्वर सत्+चित्+आनन्द (नित्य, चैतन्य और सम्पूर्ण आनन्द युक्त) सच्चिदानन्द है। स्पष्ट है हममें आनन्द की कमी है। आर्योचित कर्म करके ही हम 'सच्चिदानन्द' की ओर बढ़ सकते हैं, आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। जिस वास्तविक सुख की हमें अभिलाषा है—जिसके लिए हम निरन्तर भटकते रहते हैं—उसे प्राप्त कर सकते हैं।

आगे कुछ आर्योचित कर्म दिये जाते हैं जो हमें अवश्य करने चाहिए और इस प्रकार हमें अपने आर्योचित कर्मों की वृद्धि करनी चाहिए। इन कर्मों में बुद्धिमान् महाशय और अधिक वृद्धि कर सकते हैं और आचरण कर सकते हैं। प्रत्येक कर्म के अंकों और मूल्यांकन में मतभेद भी हो सकता है। फिर भी हमें इस तालिका द्वारा अपने आर्यत्व का स्तर नापने में सहायता ही मिलेगी। अब हम इस तालिका द्वारा देखें कि आर्यत्व की परीक्षा में हम कितने अंक ले सकते हैं। अंकों का सर्वयोग २५० है यदि हम १७५ अंक प्राप्त कर लेते हैं तो निस्सन्देह हम 'दृढ़ आर्य' कहे जा सकते हैं। यदि हम १५० और १७४ तक अंक लेते हैं तो 'आर्य' कहे जा सकते हैं। यदि हम १२५ से १४९ तक अंक ले लेते हैं तो 'कच्चे आर्य' कहे जा सकते हैं। इससे कम अंक लेने पर हम 'आर्य' नाम को सार्थक नहीं करते। अब हमें इस परीक्षा द्वारा अपने 'आर्यत्व' का स्तर निर्धारित करना चाहिए और यत्न करना चाहिए कि अगले मास तक और भी अधिक अंक लें। इस प्रकार यदि प्रतिमास 'आर्यत्व' की ओर बढ़ने का यत्न किया गया तो निस्सन्देह हम सत्—चित्—आनन्द 'सच्चिदानन्द'—ओ३म् की ओर अग्रसर होकर सच्चे सुख और आनन्द को प्राप्त करेंगे।

क्या हम नित्य प्रति—

		अंक
१.	चार बजे उठते हैं ?	५
२.	प्रातःकाल और सायंकाल के मन्त्रों को बोलते तथा उन पर विचार करते हैं ?	४ (२—२)
३.	उठ कर माता, पिता तथा गुरु आदि को नमस्ते करते हैं ?	

४. शौच जाते समय पर्याप्त जल का प्रयोग करते हैं और तत्पश्चात भली भाँति हाथ मांजते हैं ? यदि हम जंगल में या घर में शौच जाते हैं तो क्या बाद में विष्ठा को मिट्टी से ढांप देते हैं ? अथवा प्रवाहित कर देते हैं ? ४ (२+१+१)

५. दन्त धावन करते हैं ? २

६. व्यायाम करते हैं ? ४

७. भली भाँति स्नान करते हैं ? ३

८. प्राणायाम करते हैं ? ६

९. दोनों समय न्यून से न्यून २० मिनट प्रति दिन संध्या करते हैं ? ८ (४+४)

१०. दोनों समय हवन करते हैं ? ६ (३+३)

११. बलिवैश्वदेव यज्ञ करते हैं ? २

१२. पितृ यज्ञ करते हैं ? २

१३. न्यून से न्यून १५ मिनट स्वाध्याय करते हैं ? ३

क्या हम—

१४. अतिथि यज्ञ करते हैं ? २

१५. उचित मात्रा में ही भोजन करते हैं ? ३

१६. माँस, मदिरा, मिर्च, खटाई, चाय, कहवा-काफी, बरफ-सोडा, अंडे आदि तामसिक और अभक्ष्य पदार्थों का तो सेवन नहीं करते ? १७ (३+३+३+२+२+२+३)

१७. यथा सम्भव हाथ का पिसा हुआ आटा खाते हैं ? २

१८. छना हुआ जल पीते हैं ? २

१९. मुँह उघाड़ कर ही सोते हैं ? ३

२०. दिन भर का कार्य-क्रम बनाकर उस पर आचारण करने का यत्न करते हैं ? ४

२१. सांयकाल दिन में किये गये पापों पर पश्चात्ताप करते हैं ? ४

२२. अपने पर्व विधि पूर्वक मनाते हैं ? ३

२३. जात कर्म संस्कार से पूर्व के समस्त संस्कार मानते हैं ? ३

२४. जात कर्म संस्कार से लेकर अन्त तक के समस्त संस्कार मानते हैं ? ५

२५. आर्य समाज के कर्तव्यों और मन्तव्यों तथा उसके नियमों को जबानी याद रखते हैं ? ५ (३+२)

२६. वर्ष भर में आर्यसमाज, आर्य स्त्री समाज वा आर्यकुमार सभा के कम से कम ३० साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित होते हैं ४

२७- जिस भी सभा के सदस्य हैं उसके नियमों और उपनियमों का पालन करने का यत्न करते हैं ? ४

२८. सामाजिक कार्यों के लिए सप्ताह में न्यून से न्यून ५ घंटे दे देते हैं ? ४

२९. ऋषि दयानन्द के समस्त ग्रन्थ पढ़ चुके हैं ? ५

क्या

३०. हमें न्यून से न्यून ५२ वेद मन्त्र तथा श्लोक आदि कंठस्थ हैं ? ३

३१. हमारे घर में वेद, उपनिषद् ब्राह्मणग्रन्थ, मनुस्मृति, षड्दर्शन तथा ऋषि दयानन्द के समस्त ग्रन्थ हैं ? ४

३२. हम, यदि ७५ वर्ष या इससे अधिक आयु के हैं तो संन्यासी हैं ? ५० या इससे अधिक वर्ष की आयु के हैं तो वानप्रस्थी हैं ? ५० वर्ष से कम के हैं तो इन आश्रमों में जाने की प्रतिज्ञा बद्ध है ? अविवाहित हैं तो २५ वर्ष की आय के पश्चात् विवाह करने की प्रतिज्ञा बद्ध है ? ४

३३. हम जन्म गत जात-पात में विश्वास तो नहीं करते और किसी भी स्वच्छ मनुष्य के हाथ का बना भोजन आदि कर सकते हैं। ४

३४. हम अपना, अपने बच्चों अथवा अपने पर निर्भर अन्य भाई आदि का विवाह गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ही करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं ? ४

३५. हम एक स्थान से वस्तु उठाकर समय बीतने पर वहीं रख देते हैं ? हमने प्रत्येक वस्तु के लिए स्थान नियुक्त किया हुआ है ? ३

३६. हम जिसकी वस्तु माँग कर लाते हैं उसे शीघ्र ही स्वयं लौटाने का यत्न करते हैं ? ३

३७. हम ऋणी तो नहीं हैं ? ३

३८. हमें अकारण ही क्रोध का स्वभाव तो नहीं ? क्रोध के समय होश तो ठीक रहते हैं ? ३

३९. हम यदि किसी की पड़ी हुई कोई वस्तु मार्ग आदि में मिल जावे तो उसके स्वामी तक पहुँचाने का यत्न करते हैं ? और उस का पता न मिलने पर किसी संस्था को दान दे देते हैं ?

४०. हम राष्ट्र के उन नियमों का जिनके ठीक होने में कभी भी दो मत नहीं हो सकते (यथा गली में कूड़ा न फेंकना) पालन करते हैं ? ८

४१. हमें यदि राष्ट्र शासन नीति के किसी नियम अथवा नीति से मतभेद है, तो केवल वैधानिक उपायों द्वारा ही उसके परिवर्तन में विश्वास रखते हैं ? ४

४२. हम फलित ज्योतिष और श्राद्ध आदि के चक्र में तो नहीं ? ४

४३. हम ने निश्चित किया हुआ है कि अपनी आय का न्यून इतने प्रतिशत प्रति-मास दान देंगे ? (१० प्रतिशत तक दान करने की आशा की जाती है । जितने प्रतिशत दान देते हों १० में से उतने ही अंक अपने लगा सकते हैं ।) १०

४४. हम छल, कपट और चोरी आदि से तो पैसा नहीं कमाते ? ३

४५. हम रिश्वत तो नहीं लेते देते ? ५(३+२)

४६. हम गंदे सिनेमा, नाच, थियेटर आदि तो नहीं देखते ? अश्लील गाने तो नहीं सुनते ? ३

४७. हम में गाली देने की कुटेव तो नहीं ? ३

४८. हम धूम्रपान तो नहीं करते ? अथवा अन्य रूप में तम्बाकू का सेवन तो नहीं करते ? ४

४९. हमारे बच्चे, स्त्री, भाई, बहिन गंदे सिनेमा आदि तो नहीं देखते ?

५०. हम कुमार हैं तो जितेन्द्रिय, यदि विवाहित हैं तो ऋतुगामी हैं ? ४

५१. हम शुद्ध और सादे वस्त्र पहिनते हैं ? ८

५२. हम स्वयं अथवा हमारे बच्चे अच्छी संस्थाओं में पढ़ रहे हैं ।

५३. हमारी स्त्री पौराणिक पाखण्डादि में तो भाग नहीं लेती ? क्या वह पर्वों एवं पञ्च यज्ञों में भाग लेती है ? हिन्दी पढ़ लिख सकती है ? १० (३+५+२)

५४. हम अपने परिचित अथवा पड़ौसियों के दुःख में बिना किसी भेद भाव के (अर्थात् बोल चाल न होने पर भी) सम्मिलित होते हैं ? ४

५५. हमें अपने देश का राष्ट्रीय गान याद है ? ३

५६. हम किसी से मिलने का समय निर्धारित होने पर यथासम्भव उसका पालन करते हैं ? ३

५७. हम जिसके यहाँ नौकर हैं उसका काम ईमानदारी से करते हैं ? ३

५८. हम ने यदि किसी का कोई काम करना स्वीकार किया है तो उसे करने का भरसक यत्न करते हैं ? ३

५९. हम में व्यर्थ समय खोने का स्वभाव तो नहीं ? ३

६०. हम वर्ष में कम से कम एक दिन अपने आचरण की भली प्रकार पड़ताल करते हैं । ३

कुल अंक २५

कोई भी आत्मा
बिना कर्म-फल के जन्म नहीं ले सकता !

लेखक—श्री पण्डित सुरेन्द्र शर्मा गौड़, वेद-काव्यतीर्थ, देहली

जुलाई सन् १९६९ ई० के मधुर-लोक के पृष्ठ दो पर—"क्या मुक्त आत्मायें स्वेच्छा से संसार में जन्म ले सकती हैं ?" इस शीर्षक से श्री पं० चखन लाल जी वेदार्थी एम० ए० आगरा का एक लेख छपा है।

उन्होंने यद्यपि यह तो ठीक ही लिखा है कि –

"किसी आत्मा का शरीर धारण करना, यह भी ईश्वर की व्यवस्था के अन्तर्गत है। इसलिए मुक्त आत्मायें स्वेच्छा से ही शरीर धारण नहीं कर सकतीं।" किन्तु इसके आगे ही फिर यह भी लिखा है कि—

"मुक्त आत्मायें तो अमैथुनी सृष्टि में ही शरीर धारण कर सकती हैं। यही व्यवस्था परमात्मा की है। वे माता के गर्भ से नहीं आ सकती हैं। माता के गर्भ से तो साधारण मनुष्य जन्म लेते हैं।"

यदि लेखक महोदय का ऐसा निज-विचार या मत हो, तो वे जानें। किन्तु उनका ऐसा समझना वेद– विरुद्ध और भ्रामक ही है। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त कहा गया है कि जीव शुभाशुभ कर्म करने में तो स्वतन्त्र हैं; परन्तु उन कृत-कर्मों का फल ईश्वर के द्वारा प्रदत्त किसी भी शरीर के द्वारा ही भोगा जा सकता है। किसी भी सकाम कर्म का फल शरीर के बिना नहीं भोगा जा सकता। योग दर्शन का प्रमाण है –

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः।

अर्थात् जीवात्मा निज कृत कर्मों का फल जाति, आयु और भोग्य के रूप में प्राप्त करता है।

यहाँ तक कि निष्काम भाव कर्म—जिनके द्वारा मुक्ति या मोक्ष प्राप्त होता है—उनका फल भी निज कारण अथवा संकल्पात्मक शरीर द्वारा ही भोगता है। यह विषय सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास में भी ऋषि दयानन्द जी महाराज ने विस्पष्ट किया है।

वेदार्थी जी का यह लिखना कि—

"मुक्त आत्मायें अमैथुनी सृष्टि में ही शरीर धारण कर सकती हैं।" सत्य नहीं है। आदि सृष्टि में तो मनुष्येतर गधा, घोड़ा, ऊंट, भेड़, बकरी, गेण्डे, मृग, आदि-आदि के शरीर भी अमैथुनी सृष्टि में ही उत्पन्न हैं। तो क्या वे सब मुक्त जीवों के ही जन्म हैं ?

जिन कर्मों से मुक्ति या मोक्ष प्राप्त होता है, वे सब ससीम ही होते हैं। अतः उन कर्मों का फल भी ससीम ही होता है, और मुक्ति की अवधि भी एक परान्त-काल अर्थात् ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षों की मानी गई है। इसको ऋषि दयानन्द जी महाराज ने यूं भी समझाया है कि— ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष सृष्टि की आयु होती है। और इतनी ही आयु प्रलय की भी होती है। अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का काल चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष जो ब्रह्म का एक दिन माना जाता है, और इतने ही वर्षों की प्रलय भी होती है, जो एक ब्रह्म-रात्रि कहलाती है। दोनों के मिलाकर आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्ष की एक बार सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय होती है।

यह उत्पत्ति और प्रलय का क्रम छत्तीस हजार बार तक होता रहता हैं। जिसके ३१ नील, १० खरब, और ४० अरब वर्ष होते है। इसी संख्या का नाम एक परान्त-काल माना गया है। जो जीव मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं; वे इसकी अवधि तक पुन, जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आते। मुक्ति काल की इस अवधि के समाप्त होने पर ही मुक्त

जीवों को ईश्वर पुनः उन-उनके कुछ शेष कर्म-फलानुसार ही शरीर प्रदान करता है। वे मुक्त जीव उस शरीर द्वारा जन्म पाकर पुनः कार्यक्षेत्र में आ जाते हैं।

मुक्ति प्राप्त करने के समय उन मोक्ष-इच्छुक जीवों के कुछ ऐसे शेष कर्म प्रच्छन्न रह जाते हैं, जिनके आधार पर ही ईश्वर उनको पुनः जन्म अर्थात् शरीर प्रदान करता है। ये कर्म क्षीण बल रहते हैं, जो मुक्तिप्रद कर्मों के प्रभाव से प्रच्छन्न अर्थात् दबे हुए रहते हैं और मुक्ति-काल की अवधि समाप्त होते ही फलोन्मुख होकर जीवों के पुनः जन्म का कारण बनते हैं।

अतः यह आवश्यक नहीं है कि मुक्त-जीव सृष्टि के आरम्भ में—अमैथुनी-सृष्टि में ही जन्म लेते हों। वे मुक्ति की कालावधि की समाप्ति होने पर ही आते हैं। चाहें वह अवधि सृष्टि के आदि में हों, या मध्य में।

ऋषि दयानन्द जी महाराज ने मुक्त जीवों का पुनरागमन अथवा जन्म ऋग्वेद, मण्डल १, सूक्त २४, मन्त्र १ व २ के भाष्य में माता-पिता के द्वारा होना ही माना है। यथा—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां,
मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्,
पितरं च दृशेयं मातरं च ॥
ऋ० १। २४। १

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां,
मना महे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्,
पितरं च दृशेयं मातरं च ॥
ऋ० १। २४। २

इन दोनों मन्त्रों को ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के ९ वें समुल्लास में भी उद्धृत किया है। दोनों मन्त्रों का अर्थ प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा है—

प्रश्न – हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है? हमको [कौन] मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है ॥१॥

उत्तर—हम इस स्वप्रकाश स्वरूप, अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगा कर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता, सबका स्वामी है ॥२॥

ऋषि के इस लेख से सर्वथा ही स्पष्ट है कि परमात्मा मुक्त जीवों को भी मुक्ति की समाप्ति पर माता-पिता के संयोग द्वारा, सृष्टि के नितान्त आदि में अमैथुनी- सृष्टि में नहीं, प्रत्युत मैथुनी-सृष्टि में ही जन्म देता है।

ऋषि का यह लेख इतना अधिक विस्पष्ट है कि इस पर किसी भी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं है। अतः जो सज्जन यह समझते हैं कि मुक्त जीव सृष्टि के आदि में अमैथुनी-सृष्टि में ही जन्म लेते हैं, उनका यह विचार ठीक नहीं है।

मुक्ति कब होती है? उपनिषदों में कहा है कि—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥
मुण्डक० २। २। ८

जब जीव के अन्तःकरण की विषय-वासना की ग्रन्थि टूट जाती है और उसके सब संशय भी समाप्त हो जाते हैं, तथा इसके सकाम कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब भी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं। अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

"क्षीयन्त चास्य कर्माणि" इस वाक्य का वास्तविक अर्थ तो यह कि भावी जन्मकारक इसके वे कर्म क्षीण हो जाते हैं, दुर्बल हो जाते हैं। अतः

जन्म नहीं होता। "क्षीयन्ते" इस शब्द का अर्थ इतना ही है कि जीव के कर्म तो कुछ मुक्ति-काल में भी शेष रहते ही हैं; किन्तु वे क्षीण-बल होते हैं। उनका अभाव नहीं होता। जैसे कोई वैद्य किसी के लिए कह दे कि अमुक व्यक्ति का धातु क्षीण हो गया है। तब इसका तात्पर्य यही होता है कि उसमें धातु तो है; किन्तु क्षीण है। अर्थात् धातु कम मात्रा में है, दुर्बल है।

ठीक इसी प्रकार उक्त उपनिषद-वाक्य में "क्षीयन्ते" पद का अर्थ समझ लेना चाहिए। अर्थात् मुक्ति-काल उपस्थित होने पर भी कुछ कर्म शेष रहते हैं जिनके फल से ईश्वर पुनरपि मुक्त जीवों को शरीर प्रदान कर देता है।

यदि कर्म शेष नहीं, और ईश्वर बिना किसी भी कर्म के, किसी भी जीव को, किसी भी शरीर में बंद कर देता है, तब तो उसकी न्यायकारिता में ही दोष आ जाता है। फिर तो मुसलमानों के मतानुसार जीवों के जन्म, मरण, मोक्ष=निजात, दोजख आदि सब कुछ उस ईश्वर की इच्छा पर ही निर्भर हो जायेगा।

शुभाशुभ कर्मों के फल-भोगार्थ जीव को कहाँ-कहाँ जन्म लेना होता है? वैदिक विद्वानों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है कि—जीव को किस-किस कर्म के फल-भोगार्थ कहाँ-कहाँ ? किस-किस लोक में ? तथा किस-किस शरीर में जन्म लेना पड़ता है, उसका वैदिक-आर्य-साहित्य में भलोभाँति वर्णन किया गया है। मनु स्मृति के बारहवें अध्याय में भी इस-विषय का विचार-विस्तार है। उपनिषदों में भी इसका वर्णन है। ऐसे सभी उल्लेखों का तात्पर्य यह है कि पाप-पुण्य की समता में जीव सामन्यतया पृथ्वी लोक में मनुष्य-शरीर को पाता है।

जब पाप की मात्रा अधिक होती है, तब जीव मनुष्य शरीर से निकल कर, पाप-पुण्य की मात्रा के अनुसार क्रमशः गोरेला, वानर, पशु, गाय, मृग आदि-आदि की योनि को प्राप्त होता है। पापों की प्रचंडता अधिक होने पर, जघन्य कीट, पतंग आदि की योनि को प्राप्त होता है। तथा—जब पाप निःशेष हो जाते हैं, और केवल पुण्य-कर्म ही रह जाते हैं, तब अनेक फल-भोगार्थ जीव चंद्र-लोक (मनोमय-जगत्) को प्राप्त होते हैं।

जब सकाम पुण्य कर्मों का फल भी चंद्र-लोक में जाकर समाप्त हो जाता है, तब उन पुण्य-कर्मों की वासना=संस्कार मात्र शेष रहती है। तब इस वासना को भी जाव सूर्य-लोक (विज्ञानमय-जगत्) में जाकर भस्म कर देता है। तदन्तर उसको मुक्ति वा मोक्ष प्राप्त होता है।

इसके लिये—

प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्विशः।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो यांति परांगतिम्॥
गीता ७। ४५

अनेक जन्मों में किया हुआ पुण्य-प्रयत्न सहायक होता है। तथा—

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्प वर्जिताः।
ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥
गीता ४। १९

जिसके सकाम कर्म निःशेष हो जाते हैं और जिसकी कामनायें=वासनायें=संस्कार भी ज्ञान-रूपी अग्नि में भस्म हो जाते हैं, उसको ही बुद्धिमान् सच्चे प्रज्ञानी कहते हैं।

ऐसा विद्वान् ही अन्त में सूर्य-लोक में जाता और मोक्ष को प्राप्त करते हैं—

सूर्य द्वारेण विरजः प्रयान्ति,
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्यात्मा॥
मुंडकोपनिषद् १। २। ११

अनेक जन्म-जन्मान्तरों में कृत शुभ कर्मों के फलभोगानन्तर, वि-रज होकर जीव सूर्य [ज्ञानाग्नि दग्ध-कर्म] द्वारा अन्त में "ओम्" पद को प्राप्त कर पाता है।

इत्यादि उपनिषदादि आर्ष-ग्रंथों में जीवों की

वैदिक-प्रवचन-मंजरी

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

(१)

वेद माता

स्तुता मया वरदा वेद माता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं
द्रविणं ब्रह्मवर्चसं
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।

अथर्व० १९ । ७१ । १ ।।

शब्दार्थ—(प्रचोदयन्ताम्) मन को प्रेरित=उत्साहित करने वाली (द्विजानाम्) द्विजों को (पावमानी) पवित्र करने वाली और (वरदा) मन चाहे वर प्रदान करने वाली (वेद माता) की (मया स्तुता) मैंने स्तुति की है। (मैंने विधि विधान सहित वेदों को सांगोपांग पढ़ा है।) वेद-विद्या से ही (आयु) दीर्घ आयु (प्राणम्) जीवन शक्ति, (प्रजाम्) सन्तान (पशुम्) पशु अथवा परीक्षक (कीतिम्) यश (द्रविणम्) धन, माल (ब्रह्मवर्चसम्) और ब्रह्म तेज (मह्यम्) मुझे (दत्वा) देकर (मुझको) (ब्रह्मलोकम्) ज्ञान और सुख से पूर्ण ऊंची अवस्था में (व्रजत) पहुँचाया है।

भावार्थ—मैंने मन को उत्साहित करने वाली और द्विजों को पवित्र करने वाली भगवती श्रुति का विधिपूर्वक अध्ययन किया है। इस वेदाध्ययन ने ही मुझे चिरजीवन उत्तम जीवन-शक्ति, सन्तान, पशु, यश, विविध प्रकार का ऐश्वर्य और ब्रह्म-तेज प्रदान किया है और मुझे ज्ञान एवं सुख से परिपूर्ण उच्च अवस्था का अधिकारी बनाया है।

प्रवचन

सचमुच मैंने वेद माता का दूध पिया है। जी भरकर स्तन-पान किया है। ऐसा करके मैंने अपने शरीर को पुष्ट किया है। मन को पवित्र किया है। आत्मा को उन्नत किया है। अपने ज्ञान में वृद्धि की है। रहस्यों को समझा है। तत्वों को पाया है। वेद-माता अपने पुत्रों का पालन और परिपोषण किस प्रकार करती है? इस विषय-क्रम और तारतम्य को मैंने पूर्णतया समझ लिया है। तभी तो यह सिद्धान्त प्रचलित किया गया कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म। निसन्देह—

धर्म जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमं श्रुतिः

जो लोग धर्म का सम्यक् बोध प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये श्रुति ही परम प्रमाण है। वेद स्वतः प्रमाण है। जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं वे परतः प्रमाण हैं अर्थात वे वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं। जो वेद विरुद्ध ग्रन्थ और वाद हैं, वे तो स्पष्ट ही अप्रमाण और त्याज्य हैं।

वेद की वाणी कल्याणी है। यह सभी का कल्याण करती है। यह उत्तम कार्यों में मनुष्य की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। जो महत्वाकांक्षा करने वाले लोग हैं, उनके हृदयों को यह बल प्रदान करती है। निराश हृदयों में यह आशा का संचार करती है। मानव के जीवन-पथ को यह प्रशस्त एवं आलोकित करती है। जिज्ञासु जनों को यह गुप्त भेद और गूढ़ रहस्य बताती है, जीने और मरने की कला सिखाती है।

एक माता वह है, जिसने हम को गर्भ में धारण किया था और पाल-पोष कर बड़ा कर दिया है। दूसरी माता यह वेद माता है। यदि इस दूसरी माता के दुग्धपान का अवसर हमें न मिलता, तब तो हमारे ज्ञान चक्षु कभी भी न खुलते। तब तो हमारी स्थिति भी दीन, हीन और मूक पशुओं के समान नगण्य-सी ही होती।

ईश्वर का बारम्बार धन्यवाद है, जिसकी कृपा से वेद माता का वरद हस्त हमारे सिर पर है। कोई अभाव नहीं है, भय नहीं है। भ्रम नहीं है। मन में किसी प्रकार की व्यथा, द्विविधा और चिन्ता नहीं है। आयु, जीवन-शक्ति सन्तान, पशु, परिचारक, कीर्ति, आवश्यक साधन और, जीवनोपयोगी पदार्थ एवं सांसारिक और आध्यात्मिक

आनन्द की प्राप्ति के सभी साधन हमें प्राप्त हैं। यह जो विशेष सुख और सुख की सामग्री हमें प्राप्त है, सो सब वेद माता के वरदान का ही तो परिणाम है। वेद माता की कृपा से ही मैं सुख पूर्वक बैठा हूं और आनन्द के तार बजा रहा हूँ।

हे भाइयो! वेद पाठ करो। वेद संसार के सम्पूर्ण साहित्य का मुकुट-मणि है। संसार के पुस्तकालय का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही है। "साहित्य" शब्द सर्वांश में तो वेद के लिए ही चरितार्थ होता है, क्योंकि यह सर्व हितकारी है। यह सब के लिए है। सब देशों के लिये भी हैं, सब कालों के लिये भी। भाइयो! यदि तुम्हें पुष्टि और तुष्टि की आवश्यकता है, तो मेरे पास, मेरी वेद-माता की गोद में आ जाओ। यह जगद्धात्री है, विश्व धारा, वरदा और शिवा है। यहां आने के लिये सभी प्रकार की पवित्रताओं को प्राप्त कर लेना और अपने जीवन को श्रद्धामय अवश्य बना लेना।

वेद-माता द्विजों का ही पोषण क्यों करती है? इस लिये कि उनको ज्ञान की कुछ विशेष भूख होती है। उनके हृदय में जिज्ञासु-भाव होते हैं। सत्य के प्रति प्रगाढ़ आकर्षण भी उनके हृदय में होता है। सत्यज्ञान के अनुसार आचरण करने का दृढ़ संकल्प और तीव्र उल्लास भी उनके अन्दर होता है। वे कुछ करके दिखाना और कुछ बनके दिखाना चाहते हैं। वेद माता उनके पथ को आलोकित करती है। कल्याण यात्रा आरम्भ हो जाती है। बढ़ते बढ़ते द्विजगण ब्रह्म लोक तक भी जा पहुंचते हैं। यहां एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। पहिले वेदाध्ययन होता है, तदुपरान्त द्विजत्व की प्राप्ति होती है। 'वेद माता ही द्विजत्व को उत्पन्न करती है।

है वेद प्रभु की वाणी कुछ कसर नहीं।
कोई किस्सा और कहानी, जरा इसमें नहीं॥

मनुष्य जो कुछ कामना करता है, अथवा जो कुछ भी कामना कर सकता है, वह सभी कुछ वेद माता के अशीर्वाद से उसे प्राप्त हो जाता है। मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाओं का विचार कीजिये और मनुष्य की इच्छाओं के अनुक्रम पर विचार कीजिये। पहिले चिर-जीवन फिर जीवन शक्ति, फिर सन्तान, पशु, परिचारक, फिर कीर्ति धन माल खजाना, फिर मानसिक और आत्मिक बल एवं सर्वोपरि आनन्दोपभोग। अन्त में ब्रह्मलोक। यह ब्रह्म लोक कोई स्थान विशेष नहीं है। ज्ञान की परिपक्व और भ्रान्ति रहित अवस्था को ही ब्रह्म लोक कहते हैं।

दुविधा-ग्रस्त

मूल लेखक—श्री ए० जी० गार्डिनर
अंग्रेजी से हिन्दी में प्रोफेसर चन्द्रदत्त पाण्डेय,
महाराजा कालिज छतरपुर मध्य प्रदेश द्वारा अनुवादित

आपने अठारहवीं शताब्दी के उस राजनीतिज्ञ के विषय में सुना ही होगा, जो निर्णय ही नहीं कर पाता था कि घर के सामने से जाने वाली सड़क में किस दिशा को चुनना चाहिये। अपने घर के दरवाजे पर खड़ा होकर कभी तो वह उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाता और कभी दक्षिण की ओर। और अन्त में बड़ी देर तक निर्णय न कर सकने पर घर के भीतर लौट आता। यही नहीं, प्रातःकाल से मध्याह्न तक उसका सारा समय इसी तर्क-वितर्क में निकल जाता कि उसे घोड़े पर जाना चाहिये या पैदल। मध्याह्न के बाद का समय इस पश्चाताप में चला जाता कि न तो वह घोड़े पर ही सैर करने को जा सका और न पैदल।

इस भद्र पुरुष के प्रति मुझे पर्याप्त सहानुभुति है, क्योंकि मेरे स्वभाव में भी इसी प्रकार के निर्णय करने की आवश्यकता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। किसी प्रकार का निर्णय कर सकना मेरे स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। मैं कभी कपड़े की दुकान पर पहुंचता हूं। मुझे अपने लिये पैंट खरीदना है। नये-नये नमूने मेरे सामने आते हैं और प्रत्येक नमूने के साथ मेरा निर्णय बदलने लगता है। मेरी व्यग्रता बढ़ती जाती है। अन्त में खिन्न होकर मैं निकृष्ट कोटि की वस्तु खरीद कर लौटता हूं। ●

मृत्यु से कुछ पूर्व

श्री खुशीलाल शर्मा, ज्वालापुर, सहारनपुर

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।। गीता २।२७

जन्म और मृत्यु जीवन रूपी नदी के दो किनारे हैं । जो भौतिक शरीर इस संसार में आया है, उसे जाना होगा । भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि जिस का जन्म हुआ है उस की मृत्यु निश्चित है । आत्मा अजर अमर है । शहीद भगत सिंह की माता ने भगत सिंह से कहा था—"बेटा, मातृभूमि के लिए बलिदान हो कर मरना तो सौ बार जन्म लेने के समान है ।" महान पुरुषों के लिए मृत्यु नदी में डुबकी लगाने के समान है । वृक्ष पर जब फल पक कर तैयार हो जाता है तो पृथ्वी पर गिरना उसके लिए प्राकृतिक नियम है । जीवन एक पुस्तक है, पुस्तक को अध्ययन के लिए खोलना जन्म और अध्ययन समाप्त कर लेने के बाद बन्द करना मृत्यु का अन्तिम अध्याय है । मनुष्य पैदा हुआ, खा पीकर जिन्दगी गुजार दी और फिर मृत्यु हो गई, कीड़ों की तरह मल से पैदा होकर कुछ समय पश्चात् मल में ही शरीर छोड़ दिया । यह जन्म लेना कोई सार्थक नहीं, हड्डियों से युक्त चमड़े के ढांचे में सांस लेना यह जीवन नहीं, केवल जन्म और मृत्यु के अन्तर की शर्त को पूरा करना ही है । इस प्रकार के निम्न जीवन को अपने स्वार्थ के लिए जीवन कह भी दें तो भी निम्न स्तर से अधिक कुशलता नहीं रखता । किन्तु, महापुरुष का जन्म सारी मानवता के लिए होता है । उन का जीवन कोई साधारण जीवन नहीं होता, वे संसार के हित के लिए जीते हैं, और श्रेष्ठ आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए इस भौतिक शरीर को त्याग देते हैं । महान आत्माओं का जन्म लेना इस संसार में सार्थक होता है । वे अपने जीवन को अपने तक ही सीमित नहीं रखते, वरन् सारी मानवता ही उनके जीवन की सीमा है । सारी मानवता उनकी तथा वे सारी मानवता के लिए होते हैं । जीवन भर मानवता के कल्याण हेतु कार्य करना उनके जीवन का मुख्य ध्येय होता है । इसलिए हम सब ऐसे व्यक्तियों के सदा आभारी हैं ।

जो मान्य व्यक्ति संघर्ष में सफल रहे हैं, जिन्होंने अपने युग के निर्माण में प्रमुख रूप से भाग लिया है, उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षणों में जो कुछ कहा, उन वाक्यों का हमारे लिए बड़ा महत्व है और उनके अन्तिम शब्द बड़े रहस्यवादी तथा गम्भीर अर्थ लिए होते हैं । समाज के कुछ कर्णधारों और महान पुरुषों के अन्तिम समय के कहे गये वचन निम्न प्रकार से प्रस्तुत किये जाते हैं :—

१—पण्डित जवाहर लाल नेहरू (शान्ति दूत) "मेरे शरीर की मुट्ठी भर भस्मी गंगा-जमना में प्रभावित होनी चाहिए, क्योंकि इनसे मुझे स्नेह रहा है । शेष भस्मी को देश के खेतों में बिखेर दिया जावे जहाँ किसान मेहनत करते हुए पसीना बहाता है ।"

२—स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री, (ताशकन्द से अन्तिम सन्देश में) ने कहा था :—

"अब हमें शान्ति के लिए भी उसी हिम्मत और हौंसले से काम करना है, जिससे हमले का सामना किया था ।"

३—वीर सावरकर (भारतीयता के विशुद्ध पुजारी और देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले महान देश भक्त ने मरने से पूर्व कहा था)—"मैं ईश्वर के मन्दिर को लौट रहा हूं । मेरा मरणोपरान्त शोकादि न मनाया जावे। मेरी यही इच्छा है । हम रहें या न रहें, इस देश का ध्वज सदैव ऊंचा रहेगा ।"

४—राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी (अहिंसा का प्रबल समर्थक):—

"हे राम । हरे राम । हे राम ।"

५—स्वामी दयानन्द सरस्वती:—"ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो ।"

६—शहीदे आजम भगतसिंह (मातृ भूमि की स्वतंत्रता के लिए फांसी के फंदे को हंसते हंसते गले लगाने वाला देश भक्त):—"फांसी देने के बजाय हमें गोलियों से उड़ाया जाये जिसकी आवाज से मेरे देश के नौजवान जाग्रत हो जायें और मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने के पश्चात ही चैन लें । मरते समय मेरा मस्तिष्क दुश्मन के सामने न झुकने पाये ।"

७—मेजर उस्मान (काश्मीर की पहाड़ियों पर पाकि-

...वर १९६६ ई०

साहित्य

२.५० ... १.५०

स्तान के विरुद्ध लड़ने वाला प्रसिद्ध भारतीय थल सेना का योद्धा) ने जब पानी पीने के लिए गिलास होठों पर लगाया ही था कि दूसरे घायल सिपाही को पानी पीने के लिए लालायित देखकर—"मैं घायल अवस्था में हूं, और मुझे काफी प्यास लगी हुई है लेकिन मुझ से ज्यादा जरूरत मेरे दोस्त को है, अतः मेरा पानी मेरे वीर सैनिक साथी को पिला दो। मैं बचूं चाहे मर जाऊं, मेरा साथी बच जाये तो अच्छा हो।"

८—मेजर भूपेन्द्रसिंह जिसको मरणोपरान्त, परमवीर चक्र प्राप्त हुआ। आक्रमणकारी के सात पैटन टैंक नष्ट करने वाला वीर। एक बार स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री सैनिक अस्पताल में इस बहादुर वीर को मिलने गये, उस समय भूपेन्द्रसिंह घायल अवस्था में ही अपनी शैया से उठते हुए कहने लगे :—

"आज भारत के प्रधान मन्त्री मुझ से यहाँ मिलने आये हैं और मैं शैया पर सोया हुआ हूं, आदरणीय प्रधान मन्त्री साहब मेरे विषय में क्या कहेंगे।" इन शब्दों को सुन कर श्री शास्त्री जी का हृदय भर आया और उनकी आंखों से आँसू बह निकले थे।

९—वीर हकीकत राय :—"शरीर छोड़ दूंगा, किन्तु धर्म न त्याग करूंगा।"

१०—ओ हेनरी :—एक प्रसिद्ध अमेरिकन कहानी-कार।

"बत्तियां जला दो, मैं अंधेरे में नहीं जाऊंगा।"

११—जांन कीट्स :— महान अंग्रेजी कवि "लगता है कि मेरे बदन में फूल ही फूल उग रहे हैं।"

१२—जान ब्रोस :—"उफ। अब घर कितनी दूर है।"

१३—जार्ज वाशिंगटन :— स्वतन्त्र अमेरिका का प्रथम सैनानी 'मौत आ गई चलो अच्छा हुआ।"

१४—राबेलाय :—"अच्छा भाई, परदा गिरता है। प्रहसन समाप्त हुआ।"

१५—एडगर एलन :— प्रसिद्ध अमेरिकन कथाकार "मुझे यह संसार छोड़ने कुछ में भी पश्चाताप नहीं है।"

१६—लुडीवन जान विठोवन :— एक प्रसिद्ध संगीत... और उस... अवस्था में नये संगीतों का आविष्कार किया था

"मैं इन संगीतों को स्वर्ग में अवश्य सुनुंगा।"

१८—महा कवि सूरदास :—खंजन नैन रूप रस भाते। सूर श्याम अंजन गुन अटके, तातक तब उड़ पाते।

जन्ममृत्युजराव्याधिवेदनानिरूपद्रवम्।
संसारमिपमुत्पन्नसंसारं त्यजतः सुखम्॥

—हितोपदेशः

'मधुर-लोक' का प्रथम विशेष अंक

मधुर-भजन पुष्पांजलि अंक

"मधुर-लोक" के सभी प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हम नवम्बर १९६६ में दिवाली के अवसर पर **मधुर-भजन-पुष्पांजलि** के रूप में विशेष अंक भेंट कर रहे हैं।

इस अंक में प्राचीन एवं नवीन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गायकों, कवियों तथा भजनोपदेशकों के उत्तम और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भजन जलूसों, उपासनाओं, सत्संग-प्रसंगों, संस्कारों एवं सार्वजनिक अवसरों पर गाने के लिए संग्रहीत होंगे।

यदि आप भी अपनी पसन्द का कोई भजन इस पुष्पांजलि में छपवाना चाहते हैं तो तुरन्त भेजें।

यह विशेष अंक पुस्तक रूप में छपेगा। पृष्ठ संख्या १६० होगी। इसका मूल्य १.५० रुपये और डाक व्यय पृथक् होगा।

"मधुर-लोक" के नियमित सदस्यों या ग्राहकों से कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं लिया जायेगा। जो संस्थाएं या व्यक्ति अभी तक ग्राहक नहीं बने हैं कृपया वे शीघ्र ही ४) रु० मनीआर्डर से भेज कर इस विशेष अंक को प्राप्त कर सकते हैं।

—सम्पादक

मृत्यु

श्री खुशीलाल

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृत्यस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।। गीता २।२

शेख सादी

एक मनुष्य ने बहुत ऊँचे विचार रखने वाले एक साधु से कहा--'क्या आपको पता नहीं कि अमुक व्यक्ति आपकी पीठ-पीछे आपके विषय में क्या कुछ बुरा-भला कहता रहता है ?'

साधु बोला—'भाई ! कृपा करके चुप ही रहो । जाओ, आराम करो । उसके विषय में मुझे कुछ भी न बतलाओ । जो मनुष्य शत्रु का सन्देश लेकर आता है, वह तो शत्रु से भी बड़ा शत्रु है । इस विषय में तू सन्देह न कर । कोई मित्र तो अपने मित्र के पास उसके शत्रु का सन्देश कभी लाता ही नहीं । हाँ, जो ऊपर से तो मित्रता प्रगट करता है और अन्दर ही अन्दर शत्रुता रखता है, उसकी बात दूसरी है ।❀

'कोई शत्रु मेरी ऐसी बुराई नहीं कर सकता, जिसे सुनकर मेरा शरीर मारे क्रोध के थर-थराने लगे । शत्रु तो मेरी बुराई मेरी पीठ पीछे ही करता है, परन्तु तू तो मेरे सामने ही अपनी कैंची जैसी जबान चलाता है । अतः तू तो मेरा उससे भी बड़ा शत्रु है ।'

'इस प्रकार आ-आकर बातें सुनाने वाले लोग तो पुराने लड़ाई-झगड़ों को नया कर देते हैं, और शान्त रहने वालों को भी आपस में लड़ा देते हैं । जो आये दिन नये-नये झगड़े-फिसादों को जगाते रहते हैं, ऐसे मित्रों से तो दूर रहना ही उत्तम है ।❀

❀ दोस्तों से हमने वो सदमे उठाये जान पर ।
दुश्मनों की दुश्मनी का सब गिला जाता रहा ।।
❀ जो दोस्ती के परदे में करता हो दुश्मनी ।
हमको तो ऐसे दोस्त से है आरे दोस्ती ।।
❀ ईश्वर हमें हमार दोस्तों से बचाये । शत्रुओं को हम देख लेंगे ।

—आचार्य कृपलानी

'जो व्यक्ति इधर-उधर लगाई-बुझाई करता फिरता है और निन्दा-चुगली क चक्कर चलाता है, उसे तो किसी अंधेरे कुएँ में कैद कर देना ही अच्छा है । यदि कोई निन्दा-चुगली करके आग भड़काने और ईंधन डालने वाला मौजूद हो तो दो भले आदमियों के बीच में भी विद्वेष की ज़्वाला भभक सकती है ।'

—साधु सोमतीर्थ

(१९ पृष्ठ का शेष)

कर्म फलानुसार जो-जो गतियाँ दर्शाई गई हैं, वे पृथिवी-लोक, चंद्र-लोक, तथा द्यु-लोक की प्राप्तियों से सम्बन्धित हैं । इनके बाद ही जीव मोक्ष तक जा सकता है ।

अतः श्री वेदार्थी जी ने "मधुर-लोक में जो लिखा है कि—"महर्षि दयानंद जी ने अपने तप, त्याग और ब्रह्मचर्य से ब्रह्म पद को प्राप्त कर लिया था । अन्य धर्मातमा जन भी इसी प्रकार इसी जन्म में मोक्ष पद को प्राप्त कर सकते हैं ।" प्रमाणाभावशात् सर्वथा ही अमान्य है । विज्ञजनों को वेदादि शास्त्रीय सिद्धांतों की दृष्टि से ही वास्तविकता को समझने और समझाने का प्रयत्न करना चाहिये । अंध श्रद्धा या भावावेश में बहते-भटकते चले जाना आर्यजनों को शोभा नहीं देता ।

(१० पृष्ठ का शेष)

जात-पाँत, रंग, नस्ल, प्रान्तीयता देश-विदेश और मत-पन्थ आदि के आग्रह से रहित विशुद्ध मानवतावादी वैदिक दृष्टिकोण को अपनाया जायें और बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के आने पर भी दृढ़ता पूर्वक मानववाद कहे, या मानव-धर्म, बात एक ही है। खण्डित, संत्रस्त और शोषित एवं अभाव-ग्रस्त जन-समुदाय अब किसी के अन्याय को अधिक समय तक सहन न करेंगें ।

जीवनोपयोगी साहित्य

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
तत्व ज्ञान	३.००	प्रभु दर्शन	२.५०	प्रभु भक्ति	१.५०
घोर घने जंगल में	२.००	महामंत्र	१.००	भक्त और भगवान	१.००
सचित्र रस-शास्त्र	१२.००	संध्या माता	०.५०	मधुर सामान्य-ज्ञान	०.७५
वैदिक-प्रवचन	२.२५	चलते पुर्जे	२.००	संस्कार चन्द्रिका (प्रथम भाग)	४.००
ईश्वर-दर्शन	१.५०	जीवन में खेलो	२.००	संस्कार चन्द्रिका (द्वितीय भाग)	३.५०
दृष्टान्त-मंजरी	२.००	विदेशों में एक साल	२.२५	स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा	०.२०
यमनियम-प्रदीप	१.५०	मनोविज्ञान शिव संकल्प	३.५०	हित की बातें	०.१५
उर्मिल-मंगल	०.५०	ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२.५०	दन्त-रक्षा	०.२०
मातृ-मन्दिर	०.५०	संस्कृतांकुर	१.२५	बन लो हीरे	१.००
शिक्षा-बावनी	०.७५	छात्रोपयोगी विचारमाला	०.३५	ब्रह्मचर्यामृत	०.२०
महर्षि-दयानन्द	०.५०	वैदिक-धर्म-परिचय	०.६५	आत्मानन्द लेखमाला	१.२५
कलियात आर्य मुसाफिर	६.००	ब्रह्मचर्य-साधन के १० भाग	४.४५	मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.२५
श्रुति-सुधा	०.२०	स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	१.०५	मधुर हिन्दी निबन्ध माला	०.८०
वैदिक-प्रार्थना	१.५०	संस्कृत वाङ्मयका सं० परिचय	०.५०	बाल शिष्टाचार	१.५०
वैदिक-युद्धवाद	१.००	हम संस्कृत क्यों पढ़ें ?	०.३७	विरजानन्द चरित	१.५०
वैदिक-प्रवचन माधुरी	१.००	हितैषी-गीता	०.७५	भोज-प्रबन्ध	२.५०
विचित्र जीवन १०१	८.००	श्रुति सूक्ति शती	०.२०	चाणक्य-नीति	१.२५
अपने-अपने मुंह से	२.००	आसनों के व्यायाम	०.६०	विदुर-नीति	१.५०
कर्म और भोग	१.००	नित्यकर्म विधि	०.२५	पुष्पावली	०.५०
धर्मवीर पं० लेखराम	१.२५	वैदिक मनुस्मृति	४.५०	उपदेश-मंजरी	२.५०
मेजिनी, (महात्मा)	१.००	आर्य सिद्धान्त दीप	१.२५	सत्यार्थ प्रकाश	२.५०
महात्मा, मार्टिन लूथर	१.००	बनो लाल अनमोल	२.००	कर्त्तव्य-दर्पण	१.२५
आर्य शिक्षावली	०.६३	ओंकार भजन माला प्रति सैकड़ा	६.००	रण-भेरी	०.२५
कृषि-विज्ञान	०.७५	आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००	उपनिषदों का सन्देश	१.२५
आगे बढ़ो	१. ०	भारतीय शिष्टाचार	०.७५	आनन्द गायत्री कथा	०.७०
नैतिक जीवन	२.५०	हमारे स्वामी	०.७५	आनन्द भगवतकथा	०.६०
देशभक्त बच्चे	१.५०	संस्कार विधि	१.५०	मृत्यु और परलोक	१.२५
हम क्या चाहते हैं	.५०	पाक भारती	३.००	चरित्र निर्माण	१.१५
विश्व शान्ति का सन्देश	२.५०	योग दर्शन	४.००	संध्या पद्धति मीमांसा	५.००
कर्म योग	२.०	वेदान्त दर्शन	४.५०	वैशेषिक दर्शन	३.५०
भक्ति योग	२.००	मीमांसा दर्शन	६.००	सांख्य दर्शन	२.००
भक्ति और वेदान्त	२.००	सन्तति निग्रह	१.२५	न्याय दर्शन	३.२५
पाठशाला के हीरे	१.५०	वेद और विज्ञान	०.७०		

मधुर-प्रकाशन, आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक ने श्री महामाया प्रिंटर्स, देहली में छपवाकर मधुर-लोक कार्यालय, सीताराम बाजार, देहली से प्रकाशित किया।

मधुर-लोक

सदाचार, वेदवाद,
मनोविज्ञान और नव-निर्माण
का
मासिक पत्र

वर्ष १ अंक १२

अक्तूबर, १९६६

देश में वार्षिक मूल्य चार रुपये
दो वर्ष का मूल्य सात रुपये
तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपये
एक प्रति ४० पैसे
विदेश में दस शिलिंग वार्षिक

संचालक और सम्पादक
राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक कार्यालय
आर्य समाज मन्दिर
सीताराम बाजार, देहली-६

यात्रा का अन्त

इदमुच्छ्रेयो अवसानमागां, शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु, न वै त्वा द्विष्मा अभयं नो अस्तु ॥

अथर्व० १९।१।१

(इदम्) यह = इस [उत श्रेयः) ऊँचे, उत्तम और श्रेष्ठ (अवसानम्) ठिकाने, स्थान, यात्रा के अन्त, पद, मंजिल, पड़ाव, आदर्श पर (आगाम्) मैं आ पहुँचा हूँ। (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक दोनों ही (मे) मेरे लिये (शिवे) कल्याणकारी (अभूताम्) होवें। (प्रदिशः) सभी दिशायें (मे) मेरे लिये (असपत्नाः) शत्रु-रहित (भवन्तु) होवें। (वै) निसन्देह (त्वा) तुझसे (न द्विष्मः) हम द्वेष नहीं करते। (नः) हमारे लिए भी (अभयम्) अभय (अस्तु) हो।

देखो, यह मेरी यात्रा का अन्त आ गया है। मैंने अपने जीवन में एक उत्तम लक्ष्य, सिद्धि या सिद्धान्त को प्राप्त कर लिया है। अब तो मैं केवल यही चाहता हूँ कि पृथिवी-लोक और द्यु-लोक दोनों ही मेरे अनुकूल बने रहें। सभी दिशायें भी मेरे लिये शत्रुताओं से रहित हों। संसार के लोगो! विश्वास रखो, मैं या मेरा कोई साथी तुम से द्वेष नहीं करता। मेरे लिये भी अभय हो। न मैं किसी को डराता हूँ, न किसी से डरना चाहता हूँ।

नाम-रूप लेने लगे, अब थोड़ा विश्राम।
बड़े भाग्य से है मिला, मुझको वैदिक-धाम ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ तज, होता हूँ स्वाधीन।
सुखी बसे संसार सब, बनकर अभय, अदीन ॥

—साधु सोमतीर्थ

❀ ओ३म् ❀

मधुर-लोक

अक्तूबर, १९६६

गौ रक्षा

हम आर्य-हिन्दू लोग गौ-रक्षा के आर्थिक पक्ष की उपेक्षा नहीं करते। गौ-रक्षा एक लाभदायक व्यापार भी है, बल, बुद्धि की वृद्धि एवं खेती-बाड़ी की उन्नति का प्रमुख साधन भी। परन्तु हमारे लिये तो गौ-रक्षा का धार्मिक और सांस्कृतिक पक्ष ही सर्वोपरि है। यही वह पक्ष है, जिसकी गौ-रक्षा के विरोधियों द्वारा या तो पूर्णतया उपेक्षा की जाती है, या हंसी उड़ाई जाती है, या समझ कर भी नासमझी का व्यवहार किया जाता है। यह अधिक परिताप का विषय है कि मुसलमान और ईसाई भाई गौ-रक्षा के कार्यों में आये दिन बाधायें डालते रहते हैं, वे भारत की बहुसंख्यक गौ-रक्षक जनता के साथ सहयोग एवं सद्भावना पूर्वक रहने के लिये तैयार नहीं हैं। यहाँ साम्प्रदायिक झगड़ों का बड़ा कारण भी यही है।

गौ-रक्षा का आन्दोलन आज नया या तात्कालिक नहीं। भारत में मुसलमान आक्रमणकारियों के आगमन-काल से यह चला आता है। मुगल-शासन के दौरान इसमें थोड़ी सफलता भी हुई थी। सन १८५७ ई० के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक बड़ा कारण यहीं था। महर्षि दयानन्द ने गौ-रक्षा पर बहुत बल दिया था। महात्मा गांधी जी कहा करते थे कि मैंने गौ-रक्षा के लिये ही हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफत जैसे विशुद्ध मजहबी आन्दोलन में शामिल किया था।

अंग्रेजों के शासन-काल में हमें बताया जाता था कि स्वतन्त्रता के आगमन के साथ ही गौ-रक्षा की समस्या भी सुलझ जायेगी। परन्तु आज तक का परिणाम तो अत्यन्त निराशाजनक और अशोभनीय है। क्या सरकार द्वारा भारतीय-जन-मानस का निरादर इसी प्रकार होता रहेगा?

—राज पाल सिंह शास्त्री

मधुर-लोक का व्यवहार धर्म

१. मधुर-लोक का प्रकाशन प्रत्येक अंग्रेजी महीने के प्रथम सप्ताह में होता है। यदि किसी ग्राहक को महीने की बीस तारीख तक भी अंक न मिले, तो सूचना मिलने पर दूसरा अंक भेजा जायेगा।

२. मधुर-लोक का एक वर्ष का मूल्य चार रुपए, दो वर्ष का मूल्य सात रुपए और तीन वर्ष का मूल्य नौ रुपए हैं।

'मधुर-लोक' के आजीवन ग्राहक

३. जो सज्जन एक सौ रुपये भेजकर मधुर-लोक के ग्राहक बनगे, उनको 'मधुर-लोक' के सभी अंक और विशेष-अंक, तब तक मिलते रहेंगे, जब तक कि 'मधुर-लोक' निकलता रहेगा। यदि किसी कारणवश 'मधुर-लोक' दस वर्ष से पहिले ही बन्द हो जायेगा, तो आजीवन सदस्यों को उनका पूरा धन लौटा दिया जायेगा।

४. 'मधुर-लोक' में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि सामग्री—सम्पादक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये। लेखों के सम्पादन, संशोधन और प्रकाशन या अप्रकाशन का अधिकार सम्पादक को है।

५. प्रबन्ध विषयक पत्र, वार्षिक मूल्य तथा विज्ञापन आदि का धन—प्रबन्धक, मधुर-लोक, सीताराम बाजार, देहली-६ के पते पर भेजिये।

६. उत्तर के लिए जवाबी कार्ड या पत्र भजिये।

७. मधुर-लोक में विज्ञापन छपवाने की दर—

एक पृष्ठ	४०.००	चौथाई पृष्ठ	१५.००
आधा पृष्ठ	२५.००	पृष्ठ का आठवां भाग	१०.००

८. वर, वधू, उपदेशक, पुरोहित, अध्यापक या चपरासी आदि की आवश्यकता के विज्ञापन का शुल्क—५.००

९. विशेष अंकों की विज्ञापन दर पृथक् होगी।

१०. विशेष बातों का निश्चय पत्र-व्यवहार से कीजिए।

निवेदक :—प्रबन्धक, मधुर-लोक

आर्य समाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

व्रतपते ! व्रत हों पूर्ण हमारे

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"

अग्ने व्रतपते ! व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं,
तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥
यजु० १ । ५

(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप ! (व्रतपते) हे सत्यव्रत-परायण साधक पुरुषों के पालक पोषक ! (व्रतं चरिष्यामि) मैं भी व्रत धारण करता हूं, मैं दृढ़ता पूर्वक अपने व्रत का पालन करूंगा । आपकी कृपा से (तत्) उस अपने व्रत का (शकेयम्) मैं पालन कर सकूँ । (तत्) मेरा वह व्रत (राध्यताम्) सफल करो, सिद्ध हो । वह व्रत यह है कि (अहम्) मैं (अनृतात्) मिथ्याचारों को छोड़कर (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य को (उपैमि) प्राप्त करता हूं ।

अग्ने ! मैं भी व्रत धारण करना चाहता हूं ।

व्रतपते ! आपकी कृपा से मेरा व्रत सफल हो ।

मुझे व्रत पालन की सामर्थ्य प्रदान करो ।

यह मैं झूठ को छोड़ना, और सत्य को ग्रहण करना चाहता हूं ।

हे सर्व-जगाधार ! व्रतपते ! परमेश्वर ! आप ही इस अखिल-ब्रह्मांड की उत्पत्ति करने वाले हैं । आप ही इसकी स्थिति के रक्षक हैं । और हे स्वामिन् ! महाप्रलय के विधायक भी आप ही हैं । आपके न्याय, नियम, और नियन्त्रण में ही संसार के संयोग, वियोग आदि सब कार्य हो रहे हैं । आपके नियमों में बन्धे हुए ही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि ग्रह-उपग्रह गति कर रहे हैं । खेतियाँ पक रही हैं । आपकी व्यवस्था से ही जन्म-मरण का चक्कर चल रहा है । हे सर्वोपरि-नियामक ! हे सर्वोच्च-न्याय कारिन् ! आपको हमारा बारम्बार नमस्कार है ।

हे व्रतों के पालक पोषक देव ! हम भी व्रतों का अनुष्ठान करना चाहते हैं । हमें बल दो । सामर्थ्य प्रदान करो । हे सर्वरक्षक ! हे सबके जीवन दाता ! आपकी कृपा से हमारे व्रत पूर्ण हों । हम उत्तम आचरणों से युक्त होकर, आपकी पवित्र-सत्ता के प्रति हार्दिक अनुराग रखने वाले बनें । किसी भी अवस्था में हम आपको अपने हृदय से दूर न होने दें । आंखों से ओझल न होने दें ।

आपकी कृपा से हमारे मन के सब विकार दूर हों । चित्त की चंचलता हट जाये । मोह-माया के बन्धन कट जायें । आपकी विमल-ज्योति निरन्तर हमारा पथ आलोकित करती रहे । आपकी कृपा से हम निरन्तर उच्चतर जीवन की ओर अग्रसर होते रहें ।

हे ज्योतिर्मय ! सत्य और असत्य, कुछ मिले जुले से रूप में हमारे सामने आते हैं । सत्य और असत्य में भेद करना हमारे लिये कठिन हो जाता है । ढंग और ढोंग के अन्तर को इच्छा रखते हुए भी हम समझ नहीं पाते । हे दयानिधे ! हमने अपनी शक्ति भर यत्न किया है, परन्तु सत्य के शुद्ध रूप को देखने में हम समर्थ नहीं हो सके हैं । अब तो हमें एकमात्र आपकी कृपा के ही आश्रित होना पड़ रहा है । दया करो । हे पिताजी ! हमारी पुकार सुनो ।

हमें असत् से सत् की ओर ले चलो ।
अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो ।
मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो ।

वर्षा हो या तूफान, तैयार है जवान

वर्षा ऋतु में हिमालय की नदियाँ उफन पड़ती हैं, पहाड़ धसकने लगते हैं, चारों ओर कीचड़ हो जाती है और पर्वत घनी घास और पौधों से ढक जाते हैं। लेकिन घोर वर्षा और तूफान में भी हमारे जवान मस्त रहते हैं। मूसलाधार वर्षा, घने जंगलों से ढके दुर्लंघ्य पहाड़ और उफनते नदी-नाले जवानों की मश्क और ट्रेनिंग में बाधक नहीं हो पाते। बल्कि ये विघ्न बाधाएं जवानों को और प्रोत्साहित करती हैं।

बरसात से जवानों को यह समझने का मौका मिलता है कि लड़ाई के समय खराब मौसम का किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता हैं और दुश्मन पर अचानक धावा बोला जा सकता है। इसलिए इस समय भारी वर्षा में भी नेफा के अग्रिम क्षेत्र में हमारे जवान कड़ी मश्क और ट्रेनिंग में लगे हैं। पहाड़ों और जंगलों में उनकी गश्त निर्बाध चलती रहती है।

सीमा क्षेत्र में तैनात होने के कारण उसे हर स्थिति का सामना करने के लिये तैयार रहना पड़ता है, इसलिए उनका अस्त्राभ्यास निरन्तर चलता रहता है। मौसम की खराबी तथा क्षेत्र की दुर्गमता के कारण जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनका सामना करने के लिये भी हमारे जवान पूरी तरह तैयार रहते हैं। उन्हें आननफानन में बढ़ी हुई नदी पर बाँस या रस्से का पैदल जाने का और जीप गुजरने का पुल बनाना सिखाया जाता है। हमारे जवान ट्रेनिंग को भी मनोरंजन का साधन बना लेते हैं। गर्मी में नदी-नाले पार करने की ट्रेनिंग में वे नहाने और तैरने का भी आनन्द उठा लेते हैं।

मौसम के अनुसार ट्रेनिग का समय चाहे बदल जाए, परन्तु कार्यक्रम में कोई ढील नहीं आने पाती। मसलन, गर्मी में एक घंटा पहले काम शुरू हो जाता है, ताकि धूप तेज होने तक उनकी परेड, कवायद आदि पूरी हो जाए। बरसात में ढकी जगह में ट्रेनिंग चलती है।

जैसा कि एक सैनिक अधिकारी ने कहा, जिस तरह पहाड़ों के लोग सर्दी और मैदानों के लोग गर्मी बर्दाश्त कर लेते हैं, उसी तरह हमारे जवान भी अग्रिम क्षेत्रों के जलवायु और मौसम के अभ्यस्त हो जाते हैं। जवानों के मनोरंजन के लिये फुटबाल, बालीबाल जैसे खेल और मनफेर के लिए वाद-विवाद आदि की व्यवस्था है।

मौसम के कारण जवानों का अभ्यास नहीं रुकता, परन्तु कई प्रकार की कठिनाइयाँ तो उठानी ही पड़ती हैं। मसलन, चट्टानों, के धसकने से सड़कों के टूटने और नदियों में बाढ़ आने के कारण अग्रिम टूकड़ियों को रसद पहुंचाना कठिन हो जाता है। ऐसे मौके पर सीमा सड़क संगठन के जवान बुलडोजर से सड़कें साफ करते हैं। अगर आसमान साफ हुआ, तो वायु-सैनिक विमान से रसद पहुंचाते हैं। चाहे जैसे भी हो, अग्रिम क्षेत्र के जवानों को आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई बराबर होती है। हर टुकड़ी के पास आटा, चावल, अनाज, डिब्बा बन्द भोजन आदि का पर्याप्त स्टाक रहता है। हां, ताजी सब्जी कई दिनों तक नहीं मिल पाती। परन्तु वे इनके बिना भी खुशी-खुशी काम चला लेते हैं।

शूलों के मग चलना होगा !

रचयिता—योगेन्द्राय्य 'पुरुषार्थी'
गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

धैर्य कुसुम को सूंघ लिया अब,
शूलों के मग चलना होगा ॥
हर काँटा है एक चुनौती,
मन के सुन्दर स्वप्नों में।
भय आलस्य लाज को तज के,
अपना मार्ग बदलना होगा ॥
श्रेय वरण करना है यदि तो,
शूलों का आलिंगन कर लो।
सुख की किरण देखना चाहो,
दुःख दाहों में जलना होगा ॥
वेद काल का दर्शन चाहो,
जननी का दुःख भार संभालो।
आर्य राज्य को लाने में भी,
तुमको अभी पिघलना होगा ॥
काँटों का सिरमौर है जीवन,
खिलती यहाँ सुगंध सफलता।
वन्दन चरण युगल धोने को,
'पुरुषार्थी को चलना होगा ॥

पातंजलयोग-दर्शन का भाष्य

भाष्यकार—विविध प्रकार के ग्रन्थों के प्रणेता, डी० ए० वी० कालिज लाहौर के संस्कृतोपाध्याय
विद्यामूर्ति स्व० श्री पण्डित राजाराम जी शास्त्री

[गतांक से आगे]

संगति—योग का लक्षण, वृत्तियों का निरोध है। वृत्तियाँ तो जान लीं, अब उनके निरोध का उपाय बतलाते हैं—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१२॥

पदार्थ—(अभ्यास-वैराग्याभ्याम्) अभ्यास और वैराग्य से (तत्-निरोधः) उसका रोकना।

अन्वयार्थ—अभ्यास और वैराग्य से उनका निरोध होता है।

भाष्य—चित्त नदी है। इसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता रहता है। इसकी दो धारायें हैं। एक विषयों के मार्ग से बहती हुई संसार-सागर में जा मिलती है। दूसरी विवेक के मार्ग से बहती हुई कल्याण-सागर में जा मिलती है। पहली धारा तो जन्म के साथ ही खुल जाती है, पर दूसरी धारा को शास्त्र और आचार्यों के उपदेश खोलते हैं। फिर जब विषयों के स्रोत पर वैराग्य का बांध लगाकर अभ्यास द्वारा सारे प्रभाव को विवेक के स्रोत में डाल दिया जाता है, तब वह प्रबल-वेग से सारा प्रवाह कल्याण के सागर में जा पड़ता है और तनिक आगे बढ़कर निरोध के सागर में लीन हो जाता है। इस प्रकार यह अभ्यास और वैराग्य दोनों साधन इकठ्ठे मिलकर निरोध के साधन हैं। मन अत्यन्त चंचल है। पर ये दोनों मिलकर उसको साध लेते हैं। योग के उपदेश में अर्जुन के इस प्रश्न पर कि मन का रोकना वायु की न्याईं अत्यन्त दुष्कर है। श्री कृष्ण ने यही उत्तर दिया है—

असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येन च गृह्यते॥
असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मनः तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥
[गीता ६। ३५, ३६]

अर्थ—निसन्देह, हे अर्जुन! (महाबाहो!) मन दुर्निग्रह है और चंचल है, पर अभ्यास और वैराग्य से हे कौन्तेय! वश किया जाता है। मैं जानता हूं कि जिसका मन संयम में नहीं है उसके लिये योग दुष्प्राप्य है। पर जिसका मन वश में है, वह यत्न करता हुआ उपाय से इसको पा लेता है।

संगति—अब क्रम से अभ्यास और वैराग्य का वर्णन करते हैं।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१३॥

पदार्थ—(तत्र) उनमें से (स्थितौ) ठहरने में (यत्नः) प्रयत्न (अभ्यासः) अभ्यास।

अन्वयार्थ—उनमें से स्थिति के लिए प्रयत्न अभ्यास है।

भाष्य—वृत्तिरहित चित्त की जो अपने स्वरूप में स्थिति है, उसके सम्पादन करने के लिये श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा, (१।२०) और यम, नियम आदि अन्तरंग तथा बहिरंग साधनों का अनुष्ठान अभ्यास है। अभ्यास से कठिन कार्य भी आसान हो जाते हैं। इसलिए अभ्यास से मन भी वश में आ जाता है।

संगति—अभ्यास के लिए जिज्ञासु को धैर्य तथा उत्साह की आवश्यकता होती है। क्योंकि अनादि काल से वृत्तियों के विषय-भोग के संस्कार रहते हैं। इसके लिए कहते हैं—

स तु दीर्घ काल नैरन्तर्यसत्कारा सेवितो दृढ़भूमिः ॥१४॥

पदार्थ—(सः) वह (तु) पर (दीर्घकाल नैरन्तर्य-सत्कार-आसेवित) दीर्घकाल, लगातार और सत्कार से ठीक-ठीक अर्थात् बार-बार सेवन किया हुआ (दृढ़ भूमिः) दृढ़ अवस्था वाला।

अन्वयार्थ—पर वह (अभ्यास) दीर्घकाल,

लगातार, सत्कार से सेवन किया हुआ दृढ़ भूमि होता है।

भाष्य—व्युत्थान के संस्कार मनुष्य को बहिर्मुख करते हैं और अभ्यास अन्तर्मुख करता है। पर अभ्यास पक्का तब होता है, जब दीर्घकाल तक सेवन किया जाये। नहीं तो किया हुआ अभ्यास भी कुछ काल में शिथिल हो जाता है और वह भी तब, जब कि बीच-बीच में तोड़ न दिया जाये। तोड़ने से विशेष बने रहते हैं। और, जबतक अभ्यास सत्कार अर्थात् तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा के साथ सेवन नहीं होता, तब तक शिथिल रहता है। जब ये तीनों बातें मिलती हैं, तब अभ्यास दृढ़ भूमि होता है। तब फिर उसको व्युत्थान के संस्कार झट-पट नहीं दबा सकते।

संगति—अभ्यास का वर्णन करके, अब प्रथम दो प्रकार के वैराग्य में से प्रथम का वर्णन करते हैं—

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार
संज्ञा वैराग्यम् ॥१५॥

पदार्थ—(दृष्ट-आनुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य) दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में जिसको कोई तृष्णा नहीं है, उसका (वशीकार-संज्ञा-वैराग्यम्) वशीकार नामी वैराग्य है।

अन्वयार्थ—देखे और सुने हुए विषयों में जो वितृष्णा है, उसका (वैराग्य) वशीकार नामी वैराग्य है।

भाष्य—विषय दो प्रकार के होते हैं—दृष्ट और आनुश्रविक। दृष्ट वे हैं, जो इसी लोक में सबके लिए हैं। जैसे रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श, अन्न, पान, ऐश्वर्य इत्यादि। आनुश्रविक वे हैं, जिनको शास्त्र से जानते हैं। वे भी दो प्रकार के हैं—शरीरान्तर्वेद्य और अवस्थान्तर्वेद्य। शरीरान्तर्वेद्य-स्वर्ग, वैदेह्य प्रकृतिलयत्व [१।१६] आदि हैं। और अवस्थान्तर्वेद्य दिव्य गंध, रस आदि [१।३५] वा सिद्धियाँ [तृतीय पाद में] हैं। इन दोनों प्रकार के दिव्य, अदिव्य विषयों की उपस्थिति में भी जब चित्त ज्ञान के बल से इनके दोष [२।१५] देखता हुआ संग-दोष से रहित रहता है, न इनको ग्रहण करता है, न परे हटाता है, क्योंकि ग्रहण कराने वाला राग उसमें नहीं और परे हटाने वाला द्वेष भी उसमें नहीं रहा। जैसे कहा है—

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि,
त एव धीरा।

विकार का हेतु विद्यमान होने पर भी जिनके चित्त नहीं बदलते, वे ही धीर हैं। इस प्रकार उसका चित्त सब दशाओं में एक रस बना रहता है।

चित्त की ऐसी अवस्था ही वशीकार संज्ञा वैराग्य है। यह अपर वैराग्य है। पर वैराग्य अगले सूत्र में कहेंगे।

विषय का केवल त्याग देना वैराग्य नहीं, क्योंकि रोग आदि के कारण भी विषयों में अरुचि हो जाती हैं और उनका त्याग हो जाता है, पर वह वैराग्य नहीं। और, न उससे योग सिद्ध होता है। और, विषयों की अप्राप्ति मात्र भी वैराग्य नहीं। किन्तु विषयों में दोष देखने से जो रोग का घटना, और बिल्कुल हटना है, वही वैराग्य है।

वैराग्य की चार संज्ञा हैं—

१. यतमान-संज्ञा।

२. व्यतिरेक-संज्ञा।

३. एकेन्द्रिय-संज्ञा। और

४. वशीकार-संज्ञा।

१. राग-द्वेष आदि दोष इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त करते हैं, तो इन्द्रियों को उन-उन विषयों में प्रवृत्त न कर [illegible], इसके लिए प्रयत्न करना, अर्थात् वैराग्य के साधनों का अनुष्ठान करना, यतमान-संज्ञा वैर[illegible] है।

२. फिर ये-ये इन्द्रिय तो जीत लिये हैं और, ये अभी जीतने शेष हैं, इस प्रकार अलग-अलग करना

व्यतिरेक-संज्ञा वैराग्य है।

३. जब राग आदि दोष बाह्य इन्द्रियों को प्रवृत्त करने में तो असमर्थ हो गये हैं, पर मन में सूक्ष्म रूप से टिके हैं, जिससे फिर विषयों की सन्निधि में चित्त क्षुब्ध हो जाता है, जैसा कि सौभरि मुनि का हुआ, यह एकेन्द्रिय-संज्ञा वैराग्य है।

४. राग का सूक्ष्म रूप से भी निवृत्त हो जाना, दिव्य-अदिव्य विषयों के उपस्थित होने पर भी उपेक्षा बुद्धि बने रहना, यह तीनों संज्ञाओं से परे वशीकार,संज्ञा वैराग्य है।

पहली तीन अवस्थाओं का वैराग्य निरोध का हेतु नहीं, किन्तु यह चतुर्थ भूमि का वैराग्य ही निरोध का हेतु है। इसलिये निरोध के साधनों में इसी का वर्णन किया है। परन्तु यह अवस्था पहली अवस्थाओं को लांघकर ही प्राप्त होती है।

संगति—अपर-वैराग्य को कहकर, पर-वैराग्य कहते हैं—

तत परं पुरुष ख्याते र्गुण वैतृष्णयम् ॥१६॥

पदार्थ—(तत्) वह वैराग्य (परम) पर, सबसे ऊँचा (पुरुष-ख्याते) पुरुष के साक्षात्कार से (गुण-वैतृष्ण्यम्) गुणों में तृष्णा रहित होना।

अन्वयार्थ—पुरुष के साक्षात्कार से (विवेक ख्याति द्वारा सकल गुणों से तृष्णा रहित होना पर-वैराग्य है।

भाष्य—अपर-वैराग्य दिव्य-अदिव्य विषयों में वैराग्य है, तथा पर वैराग्य जहां तक गुणों का अधिकार है, उन सब में वैराग्य है। पहले तो पुरुष दृष्टानुश्रविक विषयों में दोष देखकर, उनसे विरक्त होता है। तब उसका चित्त विषयों में भटकता नहीं, किन्तु एकाग्र हो जाता है। यही सम्प्रज्ञात-समाधि है।

वह उसी अवस्था में चित्त और आत्मा के भेद को साक्षात् करता है। यही सत्य-पुरुषान्यता-ख्याति है। इस ख्याति में पुरुष का ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता है, त्यों-त्यों आत्मा की शुद्धि उत्तमोत्तम प्रतीत होती है। वह इसमें तृप्त हुआ सारे गुणों से विरक्त हो जाता है। अब वह एक बार इस विवेक-ख्याति को भी (जो गुणों की ही एक अवस्था है) परे हटाकर, अपने स्वरूप में स्थिति चाहता है। यही धर्म-मेघ-समाधि [४।२९ और ४।३१ में] है। यही पर-वैराग्य है।

इसके उदय होने पर पुरुष समझता है कि मैंने जो पाना था, पा लिया है। जो क्लेश काटने थे, काट दिये हैं। अब संसार का वह संक्रम सिलसिला टूट गया है, जिसके टूटे बिना मनुष्य जन्म कर मरता है और मरकर जन्मता है। यह ज्ञान की पराकाष्ठा ही पर-वैराग्य है। इसका ही अवश्यं-भावी फल कैवल्य (मुक्ति) है।

योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है, यह कह कर पहले वृत्तियों का निरूपण किया, फिर उनके रोकने के उपाय बतलाये। उपायों में से वैराग्य के दो भेद कहे हैं, अपर और पर। यह दोनों प्रकार का वैराग्य एक साथ ही नहीं हो जाता, किन्तु पहले अपर वैराग्य होता है। वैराग्य के दो प्रकार होने के कारण उसका फल—योग भी दो प्रकार का होता है, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।

जब अपर-वैराग्य होता है, तो राजस और तामस वृत्तियां रुक जाती हैं, पर सात्विक वृत्ति बनी रहती है। और, वह जहाँ टिकती है, वहीं एकाग्र होकर उसका साक्षात् कराती है। यही सम्प्रज्ञात-योग है। फिर जब इस योग के पीछे पर वैराग्य होता है, तो सारी वृत्तियाँ रुक जाती हैं। यही असम्प्रज्ञात-योग है। इन दोनों में से सम्प्रज्ञात पहले सिद्ध होता है, क्योंकि वह अपर-वैराग्य का फल है। इसलिए पहले सम्प्रज्ञात का स्वरूप और उसके भेद बतलाते हैं –

वितर्क विचाराऽनन्दाऽस्मिताऽनुगमात्
सम्प्रज्ञातः ॥१७॥

पदार्थ—(वितर्क-विचार-आनन्द-अस्मिता-अनु

गमात् ●) वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के सम्बन्ध में (सम्प्रज्ञातः) सम्प्रज्ञात ।

अन्वयार्थ—वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के अनुगम (सम्बन्ध) से सम्प्रज्ञात होता है ।

भाष्य—जिस प्रकार निशाना लगाने वाला पहले स्थूल लक्ष्य में निशाना लगाता है, फिर सूक्ष्म में, इसी प्रकार योगी भी पहले स्थूल वस्तु का साक्षात्कार करता है, फिर सूक्ष्म का ।

वितर्कानुगत—जब साधक किसी स्थूल विषय विराट् महाभूत, देह वा इन्द्रियों पर चित्त को ठहराता है, तो उसके वे सारे विशेष जो पहले कभी न देखे, न सुने, न अनुमान किये थे, अब उन सबको साक्षात् कर लेता है । यही वितर्कानुगत-सम्प्रज्ञात योग है ।

इसके सवितर्क और निर्वितर्क ये दो भेद आगे कहेंगे ।

विचारानुगत—जब चित्त इस प्रकार वस्तु के स्थूल आकार को साक्षात् कर लेता है । तब वस्तु के स्थूल आकार से उसकी दृष्टि आगे बढ़ती है । और पंच तन्मात्राओं के स्वरूप को साक्षात् करता है। वह इनके सारे विशेषों को प्रत्यक्ष देखता है । इसको देखकर फिर आगे बढ़ता है और तन्मात्राओं के कारण अहंकार का साक्षात् करता है । इसी प्रकार क्रम से महतत्व और प्रकृति को साक्षात् करता है । यह विचारानुगत-सम्प्रज्ञात-योग है । इसके सविचार और निर्विचार दो भेद आगे कहेगे ।

आनन्दानुगत—इन्द्रिय जो अस्मित की अपेक्षा से स्थूल हैं, उनमें चित्त को धारण करके, उनके सारे विशेषों को साक्षात् करना आन्दानुगत + सम्प्रज्ञात है ।

+आगे १।४१ में कहेंगे कि सम्प्रज्ञात-योग में योगी स्थूल भूतों से लेकर, प्रकृति पर्यन्त सब स्थूल सूक्ष्म विषय (ग्राह्य) को साक्षात् करता है । ज्ञान के साधनों (इन्द्रियों) का साक्षात् करता है और फिर ज्ञाता (अस्मिता) को साक्षात् करता है। उसके अनुसार ही यहाँ भी पहले सवितर्क में स्थूल विषयों और फिर सविचार में सूक्ष्म विषयों की प्रकृति तक साक्षात् कर लेता है, यह दर्शाया है। आगे सानन्द में उसी के अनुसार कहना उचित है । यह जानकर हमने सानन्द में इन्द्रियों को साक्षात् करता है, यह लिखा है । और, वाचस्पति आदि ने भी ऐसा ही माना है । आनन्द शब्द यहाँ इन्द्रियों के लिए है । इसमें यह भी युक्ति दी गई है कि इन्द्रिय प्रकाशशील हैं । यह सात्विक (सत्वगुण प्रधान) अहंकार से उत्पन्न हुए हैं । और सत्व सुख है । इसलिए इन्द्रिय भी सुख रूप हैं । पर आनन्द शब्द अन्यत्र कहीं इन्द्रियों के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसमें कोई प्रमाण नहीं । इसलिए विज्ञानभिक्षु ने यहाँ आनन्द से दूसरा ही अभिप्राय लिया है । वह यह है—

आनन्दानुगत—इस सूक्ष्मता के तारतम्य को साक्षात् करते हुए योगी का चित्त सत्व गुण के उद्रेक (बढ़ने) से आनन्द से भर जाता है । उस समय प्रकृति का विचार भी उसका विषय नहीं रहता, किन्तु आनन्द ही आनन्द उसका विषय रह जाता है । और, मैं सुखी हूँ, यही अनुभव होता है । यही आनन्दानुगत-सम्प्रज्ञात-योग है । जैसा कि गीता में है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं, स्थितश्चलति तत्वतः ॥
यं लब्धा चापरं लाभं, मन्यतो नाधिकं ततः ।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

● यहाँ विज्ञान भिक्षु की टीका को छोड़कर सर्वत्र रूपानुगमात् पाठ मिलता है । पर भाष्य में "वितर्क-विकलः स विचारः" इत्यादि पाठ देखने से और आद्य सूत्र के भाष्य में भी 'वितर्कानुगतो विचारानुगतः' इत्यादि ही प्रयोग होने से प्रतीत होता हैं कि रूप शब्द पीछे डाला गया है और इस पद के न होने से सूत्र में कोई त्रुटि नहीं आती ।

समाज-सेवा का अधिकारी कौन ?

लेखक—श्री प्रोफेसर नित्यानन्द जी पटेल एम० ए०
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग गार्डा कालिज, नवसारी (गुजरात)

ताज-महल होटल में बम्बई प्रदेश के कांग्रेस कार्यकर्ताओं को मीटिंग होने लगे, तो समाज-सेवा का शौक किसे न चढ़ेगा ? आजादी से पहले समाज-सेवकों को जब जेल जाना पड़ता था, गिने-चुने लोग ही आगे आते थे। आज बिना बुलाये ही समाज-सेवकों का जहां-तहां भीड़-भड़क्का है। सुख के दिनों में मित्र-मण्डल लम्बा-चौड़ा हो ही जाता है।

समाज सेवकों की भीड़

और, काम कुछ भी न हुआ, यह तो कैसे कहें ? हाँ, यह तो कहना ही होगा कि महात्मा गाँधी के अनुयायियों में सेवा की जो लगन थी, वही लगन आज के समाज-सेवकों मे होती, तो पिछले वर्षों में देश की काया पलट हो चुकी होती। काया जरा भी पलटी नहीं, यह कहने वाले को तो 'सिनिक' या निराशावादी ही कहा जायेगा। हाँ, यह सच है कि परिवर्तन की गति इतनी धीमी है कि हर किसी को थकान उत्पन्न होती है।

परीक्षा कड़ी है !

समाज-सेवकों की भरमार होते हुए भी प्रगति के अतिशय मंद होने का मुख्य कारण यही है कि सेवा के क्षेत्र में धक्का-मुक्की करने वाले लोग घुस आये हैं, जो सेवा के अधिकारी बिलकुल नहीं हैं। ऐसे लोग सत्ता पाकर अपना घर भरेंगे, या सेवा करेंगे ? अधिकारी अनधिकारी की जब कड़ी परीक्षा ही न हो, तब शासन-तन्त्र में सब ओर भ्रष्टाचार तो होगा ही। कितनों के पास कौड़ी नहीं थी। आज उन्होंने कितनी ही कारें खरीद लीं और कोठियां बना ली हैं। बैठे-बैठे यह हिसाब कयामत के दिन तक लगाते रहिये। ऐसे वैसे उपायों से नन्दा जी, दो वर्ष में तो क्या, बीस वर्ष में भी भ्रष्टाचार को दफना नहीं सकेंगे। ऐसी झूठी आशा कोई बना न बैठे, यही श्रेयस्कर है।

सदाचार समितियाँ, प्रांत-प्राँत में भले ही संगठित हों, भ्रष्टाचार का भस्मासुर तो अपने पाँव दिन-दिन खूब फैलाये चला जा रहा है। स्कूलों और कालिजों की परीक्षाओं में भी भस्मासुर के पाँव प्रविष्ट हो गये हैं। इससे अधिक भयंकर बात और क्या होगी ?

प्राचीन नालंदा यूनिवर्सिटी में दस हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। परन्तु इनमें से एक-एक विद्यार्थी को बुद्धि और हृदय की सम्पूर्ण परीक्षाओं के बाद ही यूनिवर्स्टी में प्रवेश मिलता था। परिणाम स्वरूप यूनिवर्स्टी का शिक्षण-स्तर अति उच्च था। आज उच्च-शिक्षण को सुविधायें खूब बढ़ा दी गईं। फिर भी शिक्षण-स्तर गिरता ही गया है। इसलिए कि जिस-जिसने फीस भरी, उसे ही यूनिवर्स्टी में परीक्षा किये बिना ही, भर लिया गया है। राजनीतिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार-भस्मासुर के दिन-ब-दिन बढ़ते जाने का भी यही मुख्य कारण है।

○

(पृष्ठ ६ की शेष)

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन,गुरुणापि विचाल्यते ॥
त विद्याद् दुःख सँयोग वियोगं योग संज्ञितम् ॥
[गीता ६। २१-२३]

जिस अवस्था में योगी उस परम सुख को जानता है जो बुद्धि से ही ग्रहण किया जाता है और इंद्रियों से अतीत है, उसमें स्थित हुआ योगी तत्व से फिसलता नहीं है। जिसको पाकर किसी दूसरे लाभ को उससे अधिक नहीं समझता और जिसमें स्थित हुआ भारी दुःख से भी नहीं हिलाया जाता। उस दुःखों के मेल से रहित अवस्था को योग नाम वाला जाने। (क्रमशः)

आर्य आयोग

एक उत्तम प्रस्ताव

श्रीमान् सम्पादक जी ! सादर नमस्ते,

निवेदन है कि "मधुर-लोक" ने जुलाई, सन् १९६६ में "आर्य-आयोग" की स्थापना का जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया है, वह बहुत उत्तम है। मैं उसका सच्चे हृदय से समर्थन करता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि "आर्य-आयोग" की स्थापना करने में बहुत-सी व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। फिर भी मैं अनुभव करता हूं कि जब आर्य समाज के हितैषी विद्वान् विचार करेंगे, तब वे सभी कठिनाइयों को दूर करने के यथोचित उपाय भी अवश्य ही खोज लेंगे। जिन लोगों का हलवा-माण्डा खतरे में पड़ जायेगा, वे तो "आर्य-आयोग" को स्थापना और उसके निर्णयों का विरोध करेंगे ही। इस विरोध की तो उपेक्षा ही करनी होगी।

'आर्य-आयोग की स्थापना और उसकी सफलता के लिए आर्य-जन-साधारण में से किसी नई शक्ति को आगे बढ़कर यह काम सम्भाल लेना चाहिये। क्योंकि इस समय कोई सर्वमान्य नेता या सभा-संस्था आर्य-जगत में मौजूद नहीं है। "आर्य-आयोग" के प्रस्ताव को विचारार्थ आर्य-जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये पक्षपात शून्य विचारकों, लेखकों और व्याख्यान-दाताओं को सद्भावना पूर्वक अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये। किसी को भड़काने या चिड़ाने वाला ढंग न हो। "आर्य-आयोग की स्थापना के सभी समर्थकों को चाहिये कि वे आर्य समाज के वैदिक, सार्वभौम और सार्व-कालिक एवं सर्वहितैषी मिशन को निरन्तर ही अपने सामने रखें।

"आर्य-आयोग' के कार्यों में आर्य-संन्यासी-दल भी अपना योग-दान देगा ही। यद्यपि इस समय आर्य-संन्यायी-दल की कोई रूप-रेखा नहीं है, कोई आशाप्रद व्यक्तित्व भी नहीं है। फिर भी समय आने पर सब कुछ हो जायेगा, इसमें शक नहीं।

मैं कोई निराशावाद का प्रचारक नहीं हूं। फिर भी मैं समझता हूँ कि "आर्य-आयोग" की स्थापना के द्वारा ही हम आर्य समाज में व्याप्त वर्तमान गतिरोध को समाप्त कर सकते हैं, मुकदमे-बाजियों, स्वार्थ-लीलाओं, पार्टी-परम्पराओं और बढ़ती हुई आर्थिक अपवित्रताओं को हटा सकते हैं और अशिव, अभद्र, अवांछनीय सभी दुरितों को अर्ध-चन्द्र देकर दूर कर सकते हैं। [शेष फिर]

आपका—

हर स्वरूप सारस्वत एम० ए०, एल० टी०
प्रधानाचार्य

'मधुर-लोक' का प्रथम विशेष अंक

मधुर-भजन पुष्पांजलि अंक

"मधुर-लोक" के सभी प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हम नवम्बर १९६६ में दिवाली के अवसर पर मधुर-भजन-पुष्पांजलि के रूप में विशेष अंक भेंट कर रहे हैं।

इस अंक में प्राचीन एवं नवीन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गायकों, कवियों तथा भजनोपदेशकों के उत्तम और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भजन जलूसों, उपासनाओं, सत्संग-प्रसंगों, संस्कारों एवं सार्वजनिक अवसरों पर गाने के लिए संग्रहीत होंगे।

यदि आप भी अपनी पसन्द का कोई भजन इस पुष्पांजलि में छपवाना चाहते हैं तो तुरन्त भेजें।

यह विशेष-अंक पुस्तक रूप में छपेगा। पृष्ठ संख्या १६० होगी। इसका मूल्य १.५० रुपये और डाक व्यय पृथक् होगा।

"मधुर-लोक" के नियमित सदस्यों या ग्राहकों से कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं लिया जायेगा। जो संस्थाएँ या व्यक्ति अभी तक ग्राहक नहीं बने हैं, वे शीघ्र ही ४) रु० मनीआर्डर से भेज कर इस विशेष अंक को प्राप्त कर सकते हैं।

—सम्पादक

—श्री ज्ञानी

अनधिकार चेष्टा

१. जब भारत के एक विजयी प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ताशकन्द में शहीद हुए थे, तब शहादत की घटना के दो-चार दिन बाद ही पुराने पंजाब और नये हरयाने के एक नगर में एक रोमांचकारी एवं अत्यन्त अवांछनीय घटना-क्रम घटित हुआ था। उस क्रम का संक्षिप्त विवरण पाठकों की सेवा में पेश किया जा रहा है, इसलिये कि पाठक सावधान हो जायें और कभी भी किसी प्रकार की अनधिकार-चेष्टा न करें। नगर का नाम और सम्बन्धित व्यक्तियों के असली नाम यहाँ प्रगट नहीं होंगे अनिष्ट की आशंका है। ज्ञानी के शब्द-बाण और कलम-कृपाण तो लोक-हितार्थ ही समर्पित हैं।

२. पूर्ण एक लाला है। घर का मकान है। अनाज का आढ़त की दुकान है। गुजारा खरा है। और अभिमान बहुत। संसार में ऐसे लोग बहुत कम, कोई-कोई, कहीं-कहीं, कभी-कभी ही होते हैं, जो वैभव सम्पन्न भी हों और विनम्र भी। पूर्ण तो पूरा उदण्ड है।

ओछा नर ऊपर चढ़े, क्यों न रहीम इतराये?
प्यादे से फर्जी बना, टेढ़ा-टेढ़ा जाये।।

३. केशव एक बाइसिकल-मिस्तरी है। वह पूर्ण के मकान में किरायेदार है। केशव की दुकान पर पुलिस वालों के बाइसिकलों की मरम्मत बना पैसे के ही होता है, जैसा कि भारत के सभी नगरों का दस्तूर है। प्रत्येक पुलिस वाला जब कभी भी अपने बाइसिकल की मरम्मत करवाके चलने लगता है, तब चलते-चलते दुकानदार से कह देता है कि कभी कोई काम हो तब बतलाना। मतलब इस कथन का यह होता है कि पुलिस वाले दुकानदार को यह विश्वास दिला जाते हैं कि मरम्मत-कार्य के पैसों का बदला वे भी कभी न कभी किसी की मरम्मत करके चुका ही देंगे।

४. पूर्ण और केशव आपस में लड़े। बिल्ली और चूहे, साँप तथा नेवले और आग एवं पानी के समान ही मालिक मकान तथा किरायेदार का बैर भी प्रसिद्ध है ही। लड़ाई के बाद केशव ने अपने पुलसिया-यारों से मदद मांगी। यारों को इन्कार करने की जरूरत ही क्या थी। उन्हें तो केशव के अहसानों का बदला भी चुकाना था और सरकार को अपनी कारगुजारी भी दिखानी थी। मित्र-धर्म की मर्यादा को भी सुरक्षित रखना था।

जे न मित्र दुख होयहिं दुखारी।
तिन्हिं विलोकत पातक भारी।।

५. यारों ने पूर्ण को बुलाया। मारा, पीटा, धमकाया, बन्द किया, जमानत पर छोड़ दिया। पूर्ण की बातों को सुनने से उन्होंने "बको मत" कह कर इन्कार कर दिया।

६. बलवन्त एक पंसारी है। चार बेटों का बाप, आर्य समाज का उत्साही और स्वाध्यायशील सदस्य। वह समझदार भी है एवं सनकी और सिरड़ी भी, जैसा कि एक कट्टर सिद्धान्तवादी होने के नाते उसे होना भी चाहिये। बलवन्त पूर्ण का रिश्तेदार भी है, हिमायती भी। बलवन्त का बड़ा भाई किसी वकील का मुन्शी है। पंसारी बन गया तो क्या हुआ? दिमाग तो बलवन्त का भी शक्की, झक्की और कानूनी है।

७. बलवन्त पूर्ण का हिमायती बनकर थाने में गया। थाना शहर से बाहर है। सायंकाल का समय था। छोटा थानेदार तब्दील होकर किसी दूसरे कस्बे में जाने वाला था। थाने में जब बलवन्त पहुँचा, तब छोटे थानेदार की विदाई का पारस्परिक-प्रशंसा समारोह और पुलिस-भोज सम्पन्न हो रहा था। बलवन्त को घड़घड़ाते हुए वहाँ जाना ऐसा हुआ, जैसे दाल-भात में मूसल चन्द। अत्यन्त अवांछनीय।

८. सुसज्जित लालपरी वहाँ मौजूद थी और वह बोतलों में से, गिलासों में होकर हलक के रास्ते पुलिस वालों के पेट में जा रही थी। प्लेटों में माँस, मछली, मिठाइयां और खट्टे, मीठे, नमकीन एवं चरपरे के भेद से बहुत से खाने-पीने के सामान और फल-फूल आदि-आदि भी मौजूद थे। यद्यपि ऐसी-ऐसी चीजों पर पुलिस वाले कभी-कभार ही अपनी गांठ का पैसा खर्च किया करते हैं; फिर भी ज्ञानी का अनुमान है कि उस दिन वे पदार्थ, वहाँ खरीद कर ही लाये गये होंगे, किसी से छीन-झपट या डांट-डपटकर नहीं। पुलिस की उधार और नकद में कोई भेद नहीं होता।

९. उस पारस्परिक-प्रशंसा-समारोह और पुलिस-भोज को देखकर बलवन्त अपने आपको भी भूल गया, अपने उद्देश्य को भी। उसके तन-बदन में ज्वाला भड़क उठी। वह बहकने लगा—

"आप लोगों को शर्म नहीं आती। सम्पूर्ण देश में प्रधान-मन्त्री श्री लालबहादुर जी शास्त्री की मौत का शोक मनाया जा रहा है और सरकार के नौकर होने पर भी आप लोग यहाँ शराब-कबाब की दावतें उडा रहे हैं और जशन मना रहे हैं। आज चार-पांच दिन ही तो हुए हैं, हमारे महान् प्रधान मन्त्री जी को मौत को।" आदि-आदि।

१०. यह बलवन्त की सख्त गलती थी। गलती का मजा उसे चखना पड़ा। ऐसा कि वह और उसके घर वाले जीते जी भूलेंगे नहीं।

कबिरा जिह्वा बावरी, कह गई आल-पताल।
आप तो कह भीतर रही, जूते खाये कपाल॥

११. बलवन्त को समझना चाहिये था कि प्रधान-मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के शोक के सिलसिले में जब कुद्रत ने बच्चे पैदा करने बन्द नहीं किये और भूख-प्यास के कानून भी नहीं बदले, लोगों के खान-पान भी चलते रहे हैं और लालबहादुर की चिता के पास बैठे हुए तथा-कथित बड़े लोगों में, लालबहादुर की कुरसी को हथियाने के लिये धूम-धड़ाके एवं सफाई और निर्लज्जता के साथ, आपस में जूते भी चल रहे हैं, तब पुलिस वाले ही अपना मौज-मजा किरकिरा क्यों करें? बलवन्त को ठण्डे दिमाग से सोच-समझ कर, उनको, अपनी और अपने बाल-बच्चों की तरफ देखकर, तथा अपनी औकात को पहिचान कर ही अपना मुंह खोलना वाजिब था। जैसा कि कहा भी है—

पहले बात को तोलो।
फिर मुँह से बोलो॥

और—

मधुर-वचन है औषधि, कटुक-वचन हैं तीर।
कर्ण-द्वार ह्वै संचरे, साले सकल शरीर॥

एवमेव —

कुद्रत को नापसन्द है, सख्ती जुबान में।
पैदा हुई न इसलिए हड्डी जुबान में॥

१२. हुक्म के बन्दे एक सिपाही ने पूछा:—

"तू कौन है? भाई!"

१३. "हम आर्य हैं।" बलवन्त बोला। उसके शब्दों में अनावश्यक अकड़ थी।

१४. थानेदार ने कहा—"इसे एक तरफ बैठा दो।" सिपाही ने कन्धा दबाकर बलवन्त को धरती पर बैठा दिया। बलवन्त का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। थाने का रुआब अब उस पर छा गया। वापिस जाना भी अब उसके बस में न था। बोलना भी कठिन था।

१५. जाने वाले को मुबारकबाद देकर और उससे बदले में धन्यवाद लेकर, पुलिस-भोज को समाप्त किया गया। शराब-कबाब और गर्मागर्म मिर्च मसालेदार पदार्थों ने पेट में पहुंचकर पुलिस वालों को कोई नया चमत्कार दिखलाने के लिए विवश कर दिया। मदारी के जमूरे की तरह बलवन्त थाने के मैदान में बैठा ही था। अब वहाँ चमत्कार होने लगा।

१६. एक सिपाही ने आगे बढ़कर बलवन्त के

हाथ में से उसका मोटा डंडा छीन लिया। फिर उसने वह पूरे जोर से बलवन्त के मुंह पर दे मारा। गाल फट गया। खून बहने लगा। दूसरी चोट बलवन्त के सिर पर पड़ी। सिर भी फटा। बलवन्त तड़पा। चिल्लाया—"हाये मार दिया। हाये मार दिया।" तीन-चार जोरदार चोटें टाँगों पर। फिर कुछ चोटें कमर पर। जब बलवन्त को होश आया, तब उसने अपने आपको हवालात में बंद पाया।

१७. आधी रात को पुलिस के सूत्रों से सूचना पाकर, बलवंत के बेटे उसे जमानत पर छुड़ा लाये। रात भर बलवंत लोगों को अपनी पुलिस-मार-कथा सुनाता और हाये-दुहाई मचाता रहा। दूसरे दिन डाक्टर से यथोचित मरहम-पट्टी करवा कर, और चोटें गिनवाकर, प्रमाण पत्र लेकर पुलिस के विरुद्ध मुकदमा चलाने की सभी आरम्भिक विधियां पूरी कर ली गईं।

१८. अपनी फीस लेने के बाद डाक्टर ने बिना फीस का काम शुरू किया। अब वह बिना माँगे ही परामर्श देने लगा। बोला—

"पुलिस के साथ झगड़ा बढ़ाना ठीक नहीं है।"

१९. डाक्टर की बात सुनकर बलवन्त के निश्चय में कुछ कमजोरी आई। फिर भी वह वकील के पास गया। वकील को वह अपना खास वकील समझता है। उसे वह खाली दुआ-सलाम से ही नहीं; अपितु झगड़ालु लोगों और लेन-देन-दारों के मुकदमे दिलवा-दिलवा कर सदा ही मोटा लाभ पहुंचाता रहा है। उसने सोचा—"पहली बार ही मेरा अपना काम पड़ा है। वकील थोड़ी फीस में ही मान जायेगा। मुकदमे के अन्य सब खर्च तो अधिक नहीं होते।"

२०. वकील ने मोटी फीस मांगी। बोला—"लड़ाई पुलिस के साथ है। अब इस नगर में या तो वे ही रहेंगे, या मैं ही रहूँगा। सब पुलिस वालों को कैद करवा दूंगा। सबकी नौकरियां छुड़वा दूँगा। सबको मज़ा चखा दूंगा। अब देखना, जल्दी ही कई पुलिस वालों को मोअत्तल किया जायेगा, बाकी सब यहाँ से तब्दील कर दिये जायेंगे। यह भी हो सकता है कि पुलिस मुझे कुछ गुण्डों से पिटवा दे, किसी झूठे मुकदमे में फंसा दे, मेरे घर में चोरी करवा दे, या मुझे कतल ही करवा दे। खैर, कोई बात नहीं। जो होगा, मैं देख लूँगा। वकीलों की बाबत किसी शायर ने जो कहा है वह गलत नहीं। कि—

पैदा हुए वकील तो शैतान ने कहा।
लो मैं भी अब तो साहिबे औलाद हो गया॥

मगर मैं कोई कच्चा लोभ नहीं कर सकता। फीस में कोई कमी मैं नहीं करूँगा। बहुत संगीन मुकदमा है। पुलिस वालों की कैद करवाना कोई आसान काम नहीं है। मैंने अपने वकालत के उस्ताद के सामने यह कसम खाई थी कि मैं कभी भी अपनी फीस कम नहीं करूँगा। कम फीस वाले मुकदमे को न तो कोई वकील पूरी ईमानदारी से लड़ता है, न लड़ ही सकता है। ज्यादा फीस का अर्थ है, जीत और कम फीस के मतलब है हार। हाँ, ऐसा हो सकता है कि आधी फीस और पूरा मुंशियाना अब दे दिया जाय। बाकी आधी फीस महीना-बीस दिन बाद दे देना।

२१. वकील की लच्छेदार तकरीर सुनकर बलवन्त ने मुकदमा करने का विचार छोड़ दिया। बोला—"अब भगवान के दरबार में ही मेरा इन्साफ होगा। मौका आने पर मैं भी पुलिस वालों को सबक सिखा दूँगा।" उसकी बात पर न कोई बोला, न हँसा।

२२. अदालत से आया सम्मन। फिर जमानत हुई। सड़क पर झगड़ा-फिसाद करने और बद-अमनी फैलाने का मुकदमा बलवंत पर चला। पुलिस ने कथन किया—

"कल्लू भंगी और बलवंत सड़क पर आपस में

झगड़ा करके बद-अमनी फैला रहे थे। हमने दोनों को मार-पीट से बचाया और हटाया। गवाह मौजूद हैं।"

२३. कल्लू बोला—"बलवंत ने अपने पैसे मांगे। गाली दी। झगड़ा हुआ। पहले इसने मुझे मारा। फिर मैंने भी इसे मारा। दरोगा जी और सिपाहियों ने आकर बीच-बचाव करवा दिया।"

२४. गवाहों ने पुलिस और कल्लू की बातों का समर्थन किया। बलवंत की बातों को किसी ने सुना नहीं। इसकी जरूरत भी क्या थी?

२५. अदालत ने दोनों को एक-एक साल की नेक-चलनी की जमानत देने, या एक-एक साल तक जेल में रहने का प्रस्ताव सुनाया। इस पर नगर के कुछ प्रभावशाली लोगों ने बलवंत और कल्लू का आपस में राजीनामा करवा कर, उनकी मुकदमेबाजी का ड्रापसीन कर दिया।

२६. सच है—

सच बोलना भी जुर्म है, झूठों के राज में।
सच्चों को यहाँ फाँसी पै लटकाया जायेगा ॥

क्या आप सर्वप्रिय हैं ?

मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि लोग उसे आदर की दृष्टि से देखें, और वह जनता में सर्वप्रिय हो ।

परन्तु सर्वप्रिय कोई विरला ही मनुष्य होता है। बहुत थोड़े मनुष्य जान सकते हैं कि वे सर्वप्रिय हैं भी, या नहीं। बहुत से लोगों को भ्रम ही बना रहता है कि वे सर्वप्रिय तथा भद्र पुरुष हैं, परन्तु वास्तव में उन्हें कोई भी पसन्द नहीं करता। विवशता और लाचारी के बिना कोई उनके पास तक भी नहीं फटकता।

नीचे कुछ प्रश्न दिये जाते हैं, आप शुद्ध हृदय से और न्यायपूर्वक अपने नम्बर स्वयं ही निश्चित करके उन्हें गिने। २५० नम्बरों में से कम से कम १५० नम्बर पाने वाला सर्वप्रियता की कसौटी पर पूरा उतर सकता है। यदि आप इससे कम नम्बर प्राप्त करें तो अपने स्वभाव को बदलने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करें। इस प्रकार आप भी कुछ समयान्तर में अधिक नम्बर प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे । यह अपना स्वभाव परखने की एक बढ़िया कसौटी है। शीघ्र ही अपने जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन पायेंगे।

१. क्या आप जो प्रण करेंगे या वचन देंगे, उससे कदापि पीछे न हटेंगे ? ५

२. आप हठी तो नहीं हैं ? ४

३. आपको लोग स्वार्थी और अपना काम निकालने वाला तो नहीं समझते ? ४

४. आपको अपने धन, अथवा अपनी शक्ति, पदवी, विद्या या अन्य किसी बात का अभिमान तो नहीं है ? ४

५. यदि आप पुरुष हैं तो स्त्रियों को देखकर, और स्त्री हैं तो युवा पुरुषों को देखकर, आपके मन में बुरे विचार तो नहीं उठते ? ५

६. आप दूसरों पर बल प्रयोग करने, या उनका हक मार लेने का यत्न तो नहीं करते ? ४

७, आप में झूठ बोल कर या चतुराई से अपना स्वार्थ सिद्ध करने का दोष तो नहीं है ? ५

८. क्या आप क्रोध करने से बचते हैं ? ५

९. क्या आप सादगी को पसन्द करते हैं ? फैशन के गुलाम तो नहीं ? ५

१०. आप इधर की बात उधर और उधर को बात इधर तो नहीं किया करते ? ५

११, क्या आपके नौकर, बालक तथा परिजन आपको देखकर प्रसन्न होते हैं, या आपको देखकर उनकी दशा ऐसी हो जाती है, जैसे बिल्ली को देखकर चूहे की ? ५

१२. आपकी पत्नी, बच्चे और छोटे भाई-बहन आपकी निकटता में प्रसन्न रहते हैं, या अप्रसन्न ? क्या आप हँसमुख हैं ? ५

१३. क्या आप अपना और दूसरों का समय गप्पों में नष्ट करना बुरा समझते हैं ? क्या आपको लगातार बातें करते जाने का व्यसन तो नहीं ? ५

१४. आपको लोग 'कोरा बातूनी' तो नहीं समझते ? आप में बहाना बनाने की आदत तो नहीं ? ५

१५. क्या आप दूसरों से माँगने, या परिचितों और रिश्तेदारों का एहसान लेने, अथवा उनमें रियायत माँगने को बुरा समझते हैं ? ५

१६. आप ऋणी (कर्जदार) तो नहीं ? ५

१७. क्या आप परिश्रमी और साहसी हैं ? आलसी और सुख-जीवी तो नहीं हैं ? ४

१८. क्या आप दूसरों के झमेलों में पड़ने से बचे रहते हैं ? ४

१९. यदि आप बड़ी आयु के हैं, तो क्या आप नौजवान बहू-बेटियों और बेटों के नए युग के विचारों को सहन कर सकते हैं ? या आप छोटी आयु के हैं तो क्या आप बड़ी आयु के लोगों के पुराने विचारों को धैर्य से सुनते हैं

और सहन करते हैं ? ५

२०. क्या आप असत्यको ग्रहण करने और सत्य को त्यागने पर शीघ्र राजी हो जाते हैं ? ४

२१. क्या आप दूसरों के सुधार की चेष्टा में, या किसी दूसरे को अपने विचार के अनुकूल बनाने के यत्न में इस बात का ध्यान रखते हैं कि किसी प्रकार की कटुता न आने पाये ? ४

२२. क्या आप लड़ाई-झगड़ों से दूर रहने का यत्न करते हैं ? ५

२३. क्या आप सच्चाई पर होते हुए भी, अदालत (न्यायालय) में जाने से बचने मे अपनी भलाई समझते हैं ? ५

२४. क्या आप परिचितों और अपरिचितों की भूलें उन्हें धैर्य पूर्वक समझाते है ? ४

२५. क्या आप इस सिद्धान्त का पालन करते हैं कि "बराबर ही से कीजिये, प्रीति, व्याह और बैर ?" ४

२६. किसी विषय पर वाद-विवाद करने से आपस में द्वेष उत्पन्न हो जाता है । इसलिए क्या आप वाद-विवाद की कटुता से बचने का यत्न करते हैं ? ४

२७. क्या आप छोटों और नौकरों को जिनका व्यवहार आपको रुचिकर नहीं, बार-बार झिड़कते तो नहीं रहते ? ४

२८. क्या आप में अपने मन की बात कहने का साहस है, क्या आप में बुराई का सामना करने की शक्ति है ? ४

२९. आप में दूसरों की खुशामद या झोली उठाने का, अथवा उनके गलत होने पर भी हाँ में हाँ मिलाने का दोष तो नहीं ? ४

३०. आप में किसी मनुष्य की पीठ पीछे बुराई करने का व्यसन तो नहीं ? ५

३१. क्या आप अपनी व्यक्तिगत विपत्ति ऐसे मनुष्यों के सामने कहने में संकोच करते हैं जो आपकी कोई सहायता कर ही नहीं सकते ? ४

३२. क्या आप किसी सभा में ऐसे स्थान पर तो नहीं बैठते, जो स्थान आपकी योग्यता के उपयुक्त न हो, या जहाँ पर आपका बैठना दूसरों को बुरा लगता हो ? ४

३३. क्या आप हमेशा अपने कपड़े साफ-सुथरे रखते हैं ? ४

३४. आपको लोग बहुत कंजूस तो नहीं समझते ? ४

३५. आप तम्बाकू तो नहीं पीते ? ४

३६. आप शराब तो नहीं पीते ? ५

३७. क्या आप प्रत्येक प्रकार के जुए, सट्टे और चोरबाजारी से अथवा घूस (रिश्वत) लेने से दूर भागते हैं ? ५

३८. आप ताश, शतरंज इत्यादि देखने में, अथवा पढ़ते रहने में अपना समय नष्ट नहीं करते ? ५

३९. क्या आप प्रतिदिन आध्यात्मिक और बौद्धिक उन्नति लाने वाली पुस्तकों का अध्ययन करते हैं ? ५

४०. क्या आप प्रतिदिन भ्रमण या व्यायाम करते हैं ? और अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखते हैं ? ५

४१. आपको खाने पीने का 'चस्का' तो नहीं ? ५

४२. आपको सिनेमा देखने और रेडियो के गाने सुनते रहने का चस्का तो नहीं ? ५

४३. क्या आप दूसरों के अपराध क्षमा करते हैं ? ५

४४. क्या आप इस बात का ध्यान रखते हैं कि आपके जीवन में ऐसा कोई दिन व्यतीत न हो, जिस दिन आपने किसी की भलाई न की हो ? ५

४५. क्या आप अपने माता-पिता और अपने से बड़ों को प्रसन्न रखते हैं, और उनका उचित आदर करते हैं ? ५

४६. क्या आप अपने पड़ोसियों के साथ आदर

और प्रेम का व्यवहार करते हैं ? ५

४७. क्या आप अपनी सन्तान की उन्नति का विशेष ध्यान रखते हैं ? ५

४८. क्या आप प्रतिदिन जगत् पिता परमात्मा का अपने धर्म और सिद्धान्त के अनुसार पूजन-पाठन करते हैं ? ५

४९. क्या आप सदैव अपने देश और जाति की भलाई के लिए कुछ समय सभा, सोसायटी, समाज आदि को देते हैं ? ५

५०. क्या आप प्रति मास अपनी आय में से कम से कम दस प्रतिशत दान करते हैं ? ५

५१. अपने धर्म और जाति से प्रेम रखते हुए, क्या आप दूसरे धर्म और दूसरी जाति वालों से घृणा तो नहीं करते ? ५

५२. क्या आपकी कमाई पवित्र है ? अर्थात् आप जो बेचते हैं उसमें मिलावट नहीं करते, नकली माल नहीं बेचते। नौकरी पेशा हैं, तो घूस या कमीशन नहीं लेते, मालिक का पैसा नहीं मारतें। यदि मजदूर-पेशा या क्लर्क या अफसर हैं, तो पूरे का पूरा समय अपने काम में जुटे रहते हैं ? ७

५३. पूजा, पाठ, मन्दिर जाना, दान पुण्य करना आदि कर्म 'विना कमाई की पवित्रता' के निष्फल और ढोंग मात्र हैं। इस कसौटी पर अपनी धार्मिकता परखें। ७

—राजपाल सिंह शास्त्री संचालक व सम्पादक मधुर लोक।

पी एच० डी०

रचनाकार—श्री ओमप्रकाश "आदित्य"

मैं पी-एच० डी०
मैंने थीसस लिखकर छोड़ा
दौड़ रहा हूं काव्य-जगत में
मेरे अश्वमेध का घोड़ा
एक हजार छः सौ नौ पृष्ठ
भाव सरल भाषा अति क्लिष्ट
जगह-जगह फुट-नोट दिये हैं
बड़े-बड़े कवि, महाकवि,
आलोचक, रोचक, प्रत्यालोचक।
बाँके भट, उद्भट, सम्पादक
'कोट' किये हैं
पोथे के पहले पन्ने पर
अपना पूरा चित्र दिया है
अध्यक्षों के नाम समर्पित
कर यह पोथा
मैंने काम पवित्र किया है
इस पोथे को जो पढ़ता है
सिर धुनता है
क्या गुनता है ?
क्या चुनता है ?
अपना-अपना कोण
दृष्टि है अपनी-अपनी
तुलसीदास ने ठीक कहा है
"जा की रही भावना जैसी"
पाठक की ऐसी की तैसी
ठीक भावना नहीं,
समझ में क्या आयेगा ?
लेखक का क्या दोष ?
लिखेगा, छपवायेगा
अच्छा बुरा नहीं है कुछ भी
आँखों का है दोष
ऊँच-नीच का पाठक भागी
लेखक है निर्दोष
मुझे कौन सा लिखने का धन्धा
करना है ?
मेरे दादा-परदादा थे
सट्टे के सौदागर
लाखों जोड़ गये हैं
मेरे पूज्य पिता की खातिर
छोड़ गये है
मैं ही हूं संतान
पिता जी की इकलौती
आई एक हिलोर,
सीप से बिछुड़ा मोती
पैसा होगा पास
नाम खुद धो जायेगा
लक्ष्मी का वरदान
दाग सब धो जायेगा
कौन देखता काम ?
नाम की महिमा सारी
नकली हल्दी-हींग बेचकर
नाम कमा लेता पंसारी

भीड़ का प्रतिदान

लेखक—श्री खुशीलाल शर्मा, ज्वालापुर, सहारनपुर

"बहन, यह मुन्नी थाम लो, इसकी मां इसी ही डिब्बे में सफर कर रही है, उसे रास्ते में सम्हाल देना" विनोद ने खिड़की के मार्ग से अन्दर बैठी हुए बुर्केधारी नारी को मुन्नी हस्तान्तरित करते हुए यह वाक्य कहा ही था कि गाड़ी ने अतिम सीटी दे दी और इंजिन ने करवट लेकर छक... छक की ध्वनि के साथ आगे चलना आरम्भ किया। रजिया ने आश्चर्य चकित होकर बुर्का ऊपर उठा कर बाहर की ओर देखना चाहा, गाड़ी स्टेशन की सीमा पार कर चुकी थी। बड़ी विचित्र समस्या बन गई रजिया के लिए। इतने बड़े डिब्बा में कहां ढूँढे वह मुन्नी की वास्तविक माँ को। फिर मुन्नी की माँ का नाम भी तो पता नहीं। गाड़ी में यात्रियों की भीड़ का तो कहना ही क्या। लोग एक दूसरे से मानो सपट रहे हों। रजिया सोच रही है—बड़ा ही मूर्ख नौजवान था वो। सोचा तो इतना भी नहीं कि मुन्नी का क्या दशा होगी, यदि उसकी मां मुझे न मिल सके। कहीं नाजायज औलाद तो नहीं जो चलती गाड़ी मेरे हाथों में सौंप कर चलता बना है। आजकल किसी के चरित्र का क्या बिश्वास ? समय की हवा ही कुछ ऐसी बदल चुकी है। कुछ ऐसे ही विचारों ने उसका मस्तिष्क में मंथन शुरू किया। किन्तु डोर तो तभी सुलझे जब उसका सिरा मिले।

इधर सावित्री को अत्यधिक भीड़ के कारण बैठने का स्थान अभी तक नहीं मिल पाया था। रेल का डिब्बा खचाखच भरा हुआ था। वह यह जानती थी कि इसी हावड़ा एक्सप्रेस में प्रायः भीड़ की भरमार रहती है किन्तु कल तक ही लखनऊ पहुंच जाना भी उसके लिए अत्यधिक आवश्यक है। आज सुबह ही उसके भाई उमेश का टेलीग्राम प्राप्त हुआ था कि वह भारत सरकार की ओर से छात्रवृति लेकर विदेश में विशेष अध्ययनार्थ शीघ्र रवाना हो जायेगा।

मुन्नी को अपने पास न पाकर सावित्री का ममत्व ज्वारभाटा की तरह उतार चढ़ाव की स्थिति में था। वह सोचती रही मुन्नी अब शीघ्र सम्भवतः प्राप्त न हो सकेगी। संसार में विभिन्न तरह के व्यक्ति होते हैं, न जाने किसी यात्री को स्टेशन पर मुझे देने के लिए सम्हाल दी गई हो और बहुत सम्भव है किसी अगले स्टेशन पर वह उतर जाए, मुन्नी को साथ ही लेकर चलता बने।

गाड़ी अपना मार्ग तय करती गयी। सावित्री और रजिया अपनी-अपनी शकाओं के रोग से दुःखी हैं, उनकी समस्याएं ज्यों की त्यों अटकी हुई हैं। रजिया अब धर्म संकट में पड़ गई कि कर्तव्य मूढ़ा की स्थिति में उलझी हुई है।

स्वयं को अनायास संकट में डालकर भी हम कभी-कभी अपने कर्तव्य को निभाने का बोझ उठा लेते हैं, बड़े उत्साहित भी होते हैं और युक्तियों से सूझ लिया करते ,थे। ऐसे समय हमारी सहायता कोई अदृश्य शक्ति करती है। उस समय सावित्री मुन्नी एवं बैठने के लिए सीट की तलाश में थी जब उसने सामने ही काले बुर्के के निकट थोड़ा सा खाली स्थान देखा। मन ही मन किन्तु शंकावश वहाँ बैठने की मूक आशा व्यक्त की तभी कोई संकेत सामने से उंगली के माध्यम से प्राप्त हुआ, यह निमंत्रणमुक्त संकेत रजिया का था। सावित्री निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गई और भर्राई हुई आवाज से बोली "धन्यवाद बहन।" वह चिंता में पूर्ववत डूबी रही। कितनी विडम्बना है कि साथ ही मुन्नी बुर्के के बीच में सो रही है किन्तु सावित्री

की दृष्टि से फिर भी ओझल है, दोनों मां-बेटी का विछोह इतने निकट होते हुए भी बना हुआ है।

रजिया ने अब मौन तोड़ने में पहल की—'क्या नाम है तुम्हारा बहन।'

सावित्री ने लम्बी सांस लेते हुए कहा—"मुझे सावित्री कहते हैं।" "मुझे रजिया कहते हैं" रजिया ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा—

"कहाँ जा रही हो बहन! बड़ी उदास दिखाई दे रही हो, कहीं ससुराल तो नहीं जा रही हो।" ससुराल का प्रसंग लाने से पूर्व उसने माँग जो सिर के बालों को दो भागों में विभाजित कर रही थी, देख चुकी थी। वह यह भली भांति जानती है कि हिन्दू नारी का मांग विवाहित होने का सुलभ चिन्ह है, किन्तु यह उसे मालूम नहीं कि हिन्दू नारियाँ ससुराल अकेले नहीं जाया करती। बेचारी अज्ञानवश कह गई।

सावित्री ने अपना मुख रजिया की तरफ कर उसके सम्पूर्ण हाव भाव अच्छी तरह से देखे और फिर माथे पर दाँया हाथ चटक कर खेदपूर्ण अवस्था में कहा—'क्या पूछती हो बहन, मेरी उदासी के विषय में, जिसको कहूं वह ही मेरी मूर्खता का मजाक उड़ाएगा। मुझ अभागिन का तो आज संसार लुट गया।"

सावित्री कुछ आगे भी सम्भवतः कहती किन्तु रजिया ने इसी मध्य बात काट ली और सन्देहयुक्त होकर बोली—"कोई मूल्यवान वस्तु चोरी हो गई क्या?"

"नहीं बहन, चोरी हुई नहीं चोरी हम स्वयं करा बैठे हैं।" सावित्री ने कहा।

"उसका तो फिर शोक ही मनाना व्यर्थ है। यदि कोई अपनी फालतू चीज को लुटवा दे अथवा फेंक दे, उसके लिए दुःखी होना मूर्खता है।"

सहयात्री के उत्तर से सावित्री तनिक विचलित हुई और उसकी आँखों में आँसू भर आये मुन्नी की याद में। अपने दुःख की कथा किस प्रकार से व्यक्त करे दूसरों के सामने। कथा के लिए उसका माध्यम अवश्य ही चाहिए।

संकट के समय हम बहुधा लड़खड़ा जाया करते हैं। गम्भीर संकट के समय हमारी बुद्धि भी ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाती। ऐसे समय में दूसरों से सहानुभूति के शब्दों के अतिरिक्त अन्य कोई वार्ता सुनना भी असहाय हो जाता है। फिर सावित्री को ही ऐसी बातें क्यों भाएँ। सावित्री ने साहस बटोरते हुए कांपती हुई आवाज में कहा—"बहन रजिया, बात यह नहीं जो तुम समझ बैठी हो। मेरी दो वर्ष की मुन्नी यात्रा के समय गुम हो गई है। मेरे जीवन का तो वह एक ही रतन थी जो हर समय मेरे गले से चिपकी रहती थी। पहली बार ही इतनी देर तक वह मुझसे अलग हुई है।"

"मुन्नी इसी गाड़ी में यात्रा के समय गुम हो गई।" यह शब्द रजिया के कान में बिजली के करन्ट की भाँति लगे। वह एक बार तो ठिठक सी गई, इसके बाद दो-तीन वाक्य सावित्री ने और

भी कहे किन्तु रजिया को कुछ खबर ही नहीं कि और आगे क्या बात कही गई है। उसके लिए अब कठिन न था मुन्नी के वास्तविक संरक्षक का पता लगाने का। मुन्नी वास्तविक में सावित्रि की ही है, निश्चित ही।

रजिया को विभिन्न कल्पनाओं और शंकाओं ने भ्रम के जाल में फंसाना आरम्भ किया—मुन्नी सावित्री की ही है निस्संदेह, किंतु मैं इतनी देर तक इस विषय में मूक क्यों रही। पूछताछ ही करने का प्रयत्न न किया न यह रहस्य खोलने का प्रयास किया। अब यदि सावित्री मुझ पर दोष लगा दे मुन्नी की चोरी का। मैं इसी दोष के कारण पुलिस के हवाले भी की जा सकती हूं। किन्तु क्यों? मैंने मुन्नी को चुराया थोड़ा ही है, बल्कि सावित्री का अनाड़ी पति चापलूसी से मेरी गोद में डाल गया है। दोष उसी को लगना चाहिए, मैंने तो उसके साथ भलाई की ही है। मेरे ऊपर दोष लगाने का किसी को निश्चय ही अधिकार नहीं है। मुन्नी को लौटाने से पूर्व वह सावित्री को कुछ सबक भी पढ़ाना चाहती थी कि भविष्य में इस गलती की पुनरावृत्ति न होने पावे। रजिया ने बड़ी युक्ति से रहस्य खोलना आरम्भ किया।

"सावित्री जी, मुन्नी थी कैसे रंग में? तोतली बोली में कुछ टूट-फूट कर तो कह लेती होगी।"

"नहीं बहन, उसकी मोहक भाषा मेरे सिवाय और किसी को समझ में नहीं आ सकती। रंग गेहूंए में थी और मुख मानों चाँद का सा था।"

यह हुलिया सावित्री ने रजिया को सम्बोधित करते हुए कातर स्वर से कहा। कुछ समय दोनों चुप्पी में रहे। रजिया को अब चुप्पी का वातावरण अब न सुहा रहा था बोली—"अच्छा बहन! अगर

गौ रक्षा और मनुष्य रक्षा

एक गौ-रक्षिणी सभा के उपदेशक अपने कार्य में सहयोग प्राप्त करने के लिये श्री स्वामी विवेकानंद जी महाराज के पास आये। स्वामी जी ने पूछा—

"आपकी सभा का उद्देश्य क्या है?"

उपदेशक जी ने उत्तर दिया—"गौओं को कसाइयों के हाथ से बचाना।"

"सभा की आमदनी का साधन क्या है?"

"धनिकों द्वारा दान।"

"मध्य भारत में अभी जो अकाल पड़ा है, उसके लिए आपकी सभा क्या कर रही है?"

"हमारी सभा का उद्देश्य तो गो-रक्षा मात्र है। वे लोग अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं।"

स्वामीजी गम्भीर होकर बोले—

'मुझे ऐसी सभा से कोई सहानुभूति नहीं है, जो मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं की रक्षा को ही अपना धर्म समझती है। आपके समान तो कोई भी कह सकता है—"गौवें अपने कर्मों का फल भोग रही हैं।"

—"साधु सोमतीर्थ"

स्वीकार करो तो एक बात पूछ लूं ।"

सावित्री ने स्वीकृति देते हुए कहा—"क्यों नहीं, पूछो बहन ।"

रजिया—"बहन, तुम्हारा रतन जैसा रतन यदि मैं दे दूँ तो तुम प्रसन्न हो जाओगी न ! तुम मेरा कहना मानो और मेरी गोद में सोई हुई मुन्ना तुम ले लो । यह मुन्नी खुदावंद करीम ने मेरे पास भिजवाई है और मैं प्रसन्नता के साथ तुम्हें सौंपना चाहती हूं । बड़ी सुन्दर है यह मुन्नी भी । तुम्हारी मुन्नी के समान चांद सा मुखड़ा लिए हुए है ।"

"इस मुन्नी को पूर्ववत असावधानी से न गुम कर देना ।" एक कड़ी शर्त लगाते हुए रजिया ने दोबारा कहा ।

सावित्री इस प्रकार की पहेलियों में मिश्रित बातों को सुनकर आश्चर्य में पड़ गई—क्या विचित्र औरत है यह भी । अपनी गोद खाली कर मेरी गोद आखिरकार क्यों भरना चाहती है ? कहीं नाजायज सन्तान तो नहीं किसी की, न जाने क्यों इतनी परेशान हो रही है, सोए हुए शिशु से । क्या उत्तर दूँ संगनि की बातों का । कहीं छल तो नहीं करना चाहती मेरे साथ । भला मैं क्या करूँगी दूसरे के बच्चे को लेकर ? बड़ी मूर्ख नारी दिखाई पड़ती है ।

सावित्री ने शीघ्र ही अवसर पाकर हाथ का पंजा हिलाते हुए कहा, "न बहन, तुम्हारा बहुत-बहुत धन्यवाद । मैं तुम्हारी भेंट स्वीकार करने में असमर्थ हूं । अपना जख्म भरने के लिए दूसरे का गोश्त नहीं काटना चाहती । किसी को ज्योति बुझाकर ज्योति जलाना नीति नहीं । तुम्हारी मुन्नी तुम्हारे ही पास रहे । तुम्हारी सहानुभूति के लिए पुनः मैं आभार प्रदर्शित करती हूं ।"

रजिया ने स्वय को गम्भीर बनाते हुए कहा—"बहन, मुन्नी के वियोग में मैं तुम्हें दुःखी नहीं देख सकती हूं । न जाने क्यों मुझे तुमसे सहानुभूति हो रही है । मैं मुसलमान हूं तो क्या हुआ, ईश्वर ने तो इंसान ही पैदा किये हैं, उसकी नजरों में सभी बराबर हैं वे चाहे हिन्दू, सिख, ईसाई अथवा मुसलमान हों । जातियों के बटवारे हमने स्वयं कर लिए हैं, किसी के माथे पर उसकी जाति नहीं लिखी रहती । जातपात का बन्धन समाज के ही व्यक्तियों की देन है । फिर, यह तो नवजात बच्ची ही है, जातिए संस्कार से बिलकुल अलग । मैं तुमसे फिर आग्रह करती हूं कि तुम अपनी मुन्नी की तरह समझ कर इस बुर्के के अन्दर सोई मुन्नी को ग्रहण कर लो ।"

पहेलियाँ युक्त नाटकीय दृश्य रजिया जानबूझ कर बनाती जा रही है । सावित्री शंका में पड़ गई, कहीं ऐसा तो नहीं मुन्नी स्टेशन पर रजिया को दे दी गई हो । किन्तु यदि ऐसा होता तो इतनी वार्ता की आवश्यकता ही न पड़ती ।

स्टेशन, "बरेली ।" रजिया को इसी स्टेशन पर उतर जाना है । वह यहाँ पर नर्सिंग ट्रेनिंग पा

भ्रान्ति का कारण

लेखक—श्री ए० जी० गार्डिनर

अनुवादक—प्रोफेसर चन्द्रदत्त पांडेय

हम अपनी विशेष रुचि, वृत्ति, व्यवसाय और पूर्व ग्रहों का चश्मा पहिने हुए जीवन के अन्दर प्रवेश करते हैं । हम अपने ही मानदण्ड से अपने पड़ौसी को नापा करते हैं । दूसरों का मूल्य निर्धारण करनेके लिए हम अपने ही बनाये हुए वैयक्तिक गणित के नियमों का सहारा लेते रहते हैं । रागात्मक दृष्टि से ही वस्तुओं को देखने का हमें अभ्यास हो गया है । निरपेक्ष भाव से किसी वस्तु को देखने का हम कभी भी प्रयत्न नहीं करते । हम वैसा ही देखते हैं, जैसा कि देख सकते हैं, न कि वह जिसे वास्तव में देखना चाहिये । तब आश्चर्य ही क्या जो सतरंगी आवरण में छिपे हुए सत्य के सम्बन्ध में हमारी भ्रान्त कल्पनाओं का अन्त ही नहीं होता ।

रही हैं। छुट्टियाँ बिताने के लिए वह अपने घर गई थी और संयोगवश एक विचित्र समस्या का शिकार नगीना स्टेशन पर बन गई। प्लेट फार्म पर गाड़ी रुक गई किन्तु रजिया के हृदय की धड़कन अधिक तेज होने लगी। किन्तु चिन्ता क्यों हो। पढ़ी-लिखी नवयुवती, संयम की देवी, कठिनाइयों को हँसते-हँसते पार करने वाली इस विकट समस्या को क्यों न सुलझा सके। सीट से उठते हुए सावित्री को सम्बोधित करते हुए कहने लगी—"अच्छा बहन सावित्री, मैं इसी स्टेशन पर उतर रही हूं। बहुत बातें हुई आपसे, क्षमा करना मुझसे कुछ भूल हो गई हो। बड़ी देर तक किसी की अमानत मेरे पास रही अब और अधिक देर तक रखने का साहस नहीं पड़ता।

तुम ठीक कहती थी बहन कि पराई चीज तो पराई ही होती है चाहे दूसरे को कितनी ही क्यों न प्रिय लगती है।"

सावित्री ने बीच में टोकते हुए कहा—'आखिर तुम कहना क्या चाहती हो, बहन, मैं तुम्हारी बातों को समझी नहीं। जो भी बात है स्पष्ट क्यों नहीं कह देती।"

"स्पष्ट सुनना ही चाहती हो, सावित्री!"

"हाँ।"

"तो सुनो, यह मुन्नी तुम अपनी गोद में ले लो। मेरी गोद में कोई आदमी सम्भवतः नवयुवक ही था, डाल गया है।" यह कहते हुए उसने बुर्के से बाहर मुन्नी को निकालते हुए सावित्री की गोद में डाल दी और (विदा) बाहर जाने की आज्ञा चाही। मुन्नी भी नींद से अब आँख खोल चुकी थी।

मुन्नी को दखकर सावित्री के पलक जहाँ थे वहीं रुके रहे।

"मेरी प्यारी मुन्नी, मेरी अपनी मुन्नी" कहते हुए खुशी से झूम उठी। अपने हृदय के टुकड़े को पाकर क्यों न झूमें। सामने खड़ी हुई रजिया का अभिवादन करते हुए लिपट गई और दोनों को प्रेमाश्रुओं की धाराएं बह निकली।

यात्री का अर्थ

लेखक—श्री पंडित विजय कुमार पुजारी

वार्षिक निरीक्षण करने के लिए श्री माथुर साहब इन्स्पैक्टर आफ स्कूल एक देहाती स्कूल में पधारे। आदेश मिलने पर चौथी श्रेणी के एक विद्यार्थी ने अपनी पाठ-माला का एक पाठ पढ़कर सुनाया। उस पाठ में यात्री शब्द कई बार आया था। इन्स्पैक्टर साहब ने पूछा—

"यात्री का अर्थ बताओ ?"

विद्यार्थी को 'यात्री' शब्द का अर्थ मालूम था। परन्तु यात्री शब्द का कोई दूसरा पर्यायवाची शब्द वह नहीं जानता था। इस लिए वह सोच में पड़ गया। फिर कुछ सोचकर बोला—

'जो बहुत अधिक यात्रा करता है, उसे यात्री कहते है।'

इन्स्पैक्टर—स्कूलों का निरीक्षण करने के लिए मैं भी बहुत अधिक यात्रा किया करता हूँ। मुझे बारम्बार एक गाँव से दूसरे गाँव में जाना पड़ता है। क्या तुम मुझको भी यात्री कह सकते हो ?

विद्यार्थी इस सवाल को सुनकर पहिले तो कुछ घबरा गया। फिर बोला—

"नहीं जी आपको यात्री नहीं कह सकते। यात्री का अर्थ है, बहुत यात्रा करने वाला सज्जन मनुष्य।"

बम्बई में हिटलर

छुट्टी का दिन था, दोपहर का समय। जोरदार वर्षा प्रातःकाल से ही हो रही थी। सब लोग खिड़कियां और दरवाजे बन्द करके अपने घरों में बैठे थे।

इतने में सड़क पर कोई बहुत जोर से चिल्लाने लगा—

हिटलर ! हिटलर !! हिटलर !!!

यह सुनते ही सड़क के दोनों तरफ द्वार और खिड़कियां खटाखट खुल गये। सैंकड़ों की संख्या में देखने के लिये स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बूढ़ झांकने लगे। एक मनुष्य हाथ ठेले में बैंगन और प्याज भरे लिये जा रहा था। उसके एक हाथ में छाता था। दूसरे हाथ से वह ठेले को धकेल रहा था। और चिल्लाता जा रहा था—

हिटलर ! हिटलर !! हिटलर !!!

एक बाबू ने झुंझलाहट भरे स्वर में पुकार कर पूछा—

"अरे गधे ! क्या हिटलर-हिटलर चिल्लाता है ? कहाँ है हिटलर ?"

विनम्रता पूर्वक ठेले वाले ने उत्तर दिया—

"बाबूजी ! मैं पेट के लिये फेरी लगा रहा हूं। यदि मैं प्याज और बैंगन कहकर पुकारूँगा, तो कौन मेरी आवाज पर ध्यान देगा ? और इस हवा तथा वर्षा में आप जैसे श्रीमानों के द्वार कैसे खुलेंगे ?"

मेरी धर्म प्रचार यात्रा

सब आर्य सज्जनों को विदित हो कि मैंने स्वतंत्र रूप में अपनी धर्म-प्रचार-यात्रा आरम्भ कर रखी है। विगत पैंतीस वर्षों में मैंने देखा है कि शिक्षित और धर्म-प्रेमी जनता मेरी सेवा को विशेष रूप से पसन्द करती है। मेरा यत्न एक-एक नगर में पांच-पांच, सात-सात दिन रहने और दोनों समय सत्संग लगाने का होता है। यदि कोई सज्जन या समाज मुझे धर्म-प्रचार के लिए अपने नगर में बुलाना चाहें, तो वे पत्र-व्यवहार करके, तिथियों का निश्चय करने की कृपा करें। मैं किसी सभा, संस्था, यज्ञशाला या पुस्तक आदि के लिए किसी से किसी प्रकार का चंदा नहीं माँगता, विशेष भोजन या दक्षिणा के लिए झगड़ा नहीं करता, किसी प्रकार की फूट नहीं फैलाता। निर्वाचनों और दलबंदियों से मेरा सम्बन्ध नहीं है। जो प्रचार का उत्तम प्रबन्ध कर सकें, वे ही बुलाने की कृपा करें।

जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"
आर्यसमाज मंदिर, सीताराम बाजार, देहली-६

जीवन की मधु-शाला

श्री पण्डित शान्तिस्वरूप शर्मा गांधी नगर, देहली-३२

जीवन की इस मधु-शाला में,
पाप-पुण्य मैं क्या जानूं ?
इन्द्रिय घोड़े दौड़ रहे हैं,
इन्हें रोकना क्या जानूं ?

जो कुछ भी पीने को मिलता,
गट-गट मैं पी जाता हूँ।
जो कुछ भी खाने को मिलता,
झट-पट मैं खा जाता हूँ।

क्यों मैंने यह जीवन पाया ?
हाय, अभी तक नहीं जाना।
रंग-रंगीले जग-मग में फंस,
साकी प्रभुवर नहीं पहचाना ॥

अगणित देख लिये मदिरालय,
हारे चख चख कर हाला।
देख लिये पण्डित मौला ने,
देख लिये मोटे लाला ॥

सुन्दर से सुन्दरतम साकी,
बढ़िया से बढ़िया प्याला।
पीते-पीते हार गया हूँ,
जला रही जग की ज्वाला ॥

जग के नाना विध पन्थों ने,
बना दिया मुझको मतवाला।
इसी लिये पीने को आतुर,
हूँ ज्ञानामृत का प्याला ॥

जग मेरे पीछे-पीछे है,
मैं चाहूँ इसको टाला।
खो देता है पाने वाला,
पा जाता खोने वाला ॥

बड़े नाज नखरे से मैंने,
जीवन-भर इसको पाला।
विषय-वासना मुझे काटते,
ज्यों काटे विषधर काला ॥

लाल-लाल ये आंखें कैसी ?
यम के दूत दिखाते हैं,
नहीं बचाता कोई मुझको
छोड़ सभी भग जाते हैं ॥

शान्त हुआ है अब तन घट भी,
जिह्वा है छाला-छाला ॥
पा जाऊँ प्रभु सच्चा साकी,
पीकर प्याला-तजकर हाला ॥

उस प्रभुवर की मीठी-सी छवी
चन्द्र-सूर्य दिखलाते हैं।
उस रसधर, लीलामय के गुण,
जड़-जगम सब गाते हैं ॥

देखो उसके रंग अनोखे,
फूलों में मुसकाता है वह।
पीलो, आओ, पीने वालो !
मधु-घट यहां लुटाता है वह ॥

जिसने जीवन-धन को अपना
जीवन सौंपा, सब कुछ पाया।
जो मोह-ममता में फंस बैठा,
उसके कुछ भी हाथ न आया ॥

बलिदानों के इस मेले में,
पीकर प्रेमामृत का प्याला।
अपना जीवन सफल बना ले
जपकर ओम् नाम की माला ॥ ●
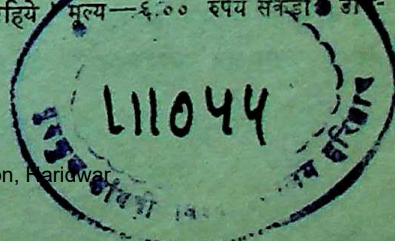
आवश्यक अवश्य बोलिये !

श्री हरिकृष्णदास गुप्त "हरि" देहली

मौन की महिमा महान है। सद्ग्रन्थों ने··· सत्-पुरुषों ने मुक्त-कण्ठ से इसे स्वीकार किया है। वाक्-कला-विशारद कवियों ने भी दिल खोलकर इसकी बड़ाई के गीत गाये हैं। पर इसका यह मतलब नहीं कि एक सिरे से सदैव मौन-ही-मौन रहा जाय, बोल का गला उम्र भर के लिए घोट दिया जाय। कहीं ऐसा किया गया तो जिस मतलब को लेकर मौन रखा जाता है—उसे सराहा जाता है, वह मतलब ही खब्त होकर रह जायेगा।

मौन को महिमान्वित करने का श्रेय अधिकतर वाचलता को है। लगभग हम सभी प्रायः जन्मतः वाचाल होते हैं। खूब बोलना, अनापशनाप बोलना, व्यर्थ बोलना हमारी घुट्टी में मिला हुआ होता है। सब जानते हैं, बहुत अधिक एवं निरर्थक बोलने से वाणी का सौंदर्य, तेज, प्रखरता और प्रभाव नष्ट हो जाता है। मौन रहकर यह नष्ट सामग्री पुनः संचित की जाती है। उसमें वृद्धि की जाती है। यही मौन की उपयोगिता है। यही उसकी महिमा का रहस्य है। अब यदि मौन-मौन ही रहा जाय, आवश्यकता पड़ने पर भी बोलने के नाम पर स्वप्न में भी जिह्वा न हिलाई जाय, तो मौन द्वारा अर्जित-संचित वाणी का तेज, सौंदर्य प्रखरता एवं कारगरता किस काम आयेगी ? व्यर्थ पड़े-पड़े उसे जंग ही लगेगा कि कुछ और होगा ?

चाहिए यह कि वाचालता से तो एक दम किनाराकशी की ही जाय, किन्तु साथ-ही-साथ मौन-साधना भी उसी सीमा तक हो जिस सीमा तक वह उपयोगी रह सके। आंख मींच कर मौन के पीछे पड़े रहकर उसकी उपयोगिता नष्ट न की जाय, वरन जब आवश्यक हो, तो अवश्य बोलकर मौन-कृपा से प्राप्त वाणी की विशेषताओं के प्रसाद से अपना-पराया सभी का हित,साधन किया जाय। इस तरह हमारे बोल-सौन्दर्य से जगत वंचित नहीं रहेगा। एकान्त मौन के कारण हम आवश्यक कार्यों के सम्पादन में अपंगता की अनुभूति नहीं करेंगे। उचित मौन रखने के कारण मौन की महिमा से तो हम महिमान्वित होंगे ही।

जो बात कहनी थी, कही जा चुकी है। पर एक बात और कहनी होगी अन्यथा भ्रममें पड़ जाने का अन्देशा है। वह यह कि यह जो कुछ कहा गया है, साधारण मौन को केवल वाक् इन्द्रिय-संयम रूपी मौन को लेकर कहा गया है। एक और उच्च स्तरीय मौन होता है। उसे दृष्टि में रखकर कुछ नहीं कहा गया। कहने की आवश्यकता ही नहीं रहने देता वह तो। बोल का अंकुश मात्र होने के स्थान पर वह मौन तो स्वयं बोल की···आवश्यक बोल का समन्दर है। सर्वांगाधिपति मन के द्वारा सीधे जन-जन के मन ही से बोलने वालों को जिह्वा की क्या जरूरत पड़ सकती है। ऐसे मौन का आराधक तो जो आवश्यक है, उसे वाणी की अपेक्षा भी अधिक पूर्णता, सुगमता एवं सुचारुता से बिना जीभ हिलाये ही बोलता रहकर साथ-साथ सुदृढ़ अपना जीवन-लक्ष्य साधता रहता है, अपने व्यक्तित्व से जगत् को प्रभावित कर उसे भी सत्पथ पर अग्रसर करता रहता है।

तो निष्कर्ष यह निकला कि उच्च-स्तरीय मौन के आराधकों की बात छोड़कर जो साधारण मौन के साधक हैं उन्हें चाहिए कि वे आवश्यक अवश्य बोलें। इसी में उनका, उनके साथ जगत् का (तत्वतः दोनों एक जो हैं।) हित सन्निहित है।

जीवनोपयोगी साहित्य

पुस्तक	मूल्य
तत्व ज्ञान	३.००
घोर घने जगल में	२.००
सचित्र रस-शास्त्र	१२.००
वैदिक-प्रवचन	२.२५
ईश्वर-दर्शन	१.५०
दृष्टान्त-मंजरी	२.००
यमनियम-प्रदीप	१.५०
उर्मिल-मंगल	०.५०
मातृ-मन्दिर	०.५०
शिक्षा-बावनी	०.७५
महर्षि-दयानन्द	०.५०
कुलियात आर्य मुसाफिर	६.००
श्रुति-सुधा	०.२०
वैदिक-प्रार्थना	१.५०
वैदिक-युद्धवाद	१.००
वैदिक-प्रवचन माधुरी	१.००
विचित्र जीवन १०१	८.००
अपने-अपने मुंह से	२.००
कर्म और भोग	१.००
धर्मवीर पं० लेखराम	१.२५
मेजिनी, (महात्मा)	१.००
महात्मा, मार्टिन लूथर	१.००
आर्य शिक्षावली	०.६३
कृषि-विज्ञान	०.७५
आगे बढ़ो	१. ०
नैतिक जीवन	२.५०
देशभक्त बच्चे	१.५०
हम क्या चाहते हैं	१.५०
विश्व शान्ति का सन्देश	२.५०
कर्म योग	२.०
भक्ति योग	२.००
भक्ति और वेदान्त	२.००
पाठशाला के हीरे	१.५०

पुस्तक	मूल्य
प्रभु दर्शन	२.५०
महामंत्र	१.००
संध्या माता	०.५०
चलते पुर्जे	२.००
जीवन में खेलो	२.००
विदेशों में एक साल	२.२५
मनोविज्ञान शिव संकल्प	३.५०
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२.५०
संस्कृतांकुर	१.२५
छात्रोपयोगी विचारमाला	०.२५
वैदिक-धर्म-परिचय	०.६५
ब्रह्मचर्य-साधन के १० भाग	४.४५
स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	१.२५
संस्कृत वाङ्मयका सं० परिचय	०.५०
हम संस्कृत क्यों पढ़ें ?	०.३७
हितैषी-गीता	०.७५
श्रुति सूक्ति शती	०.२०
आसनों के व्यायाम	०.६०
नित्यकर्म विधि	०.२५
वैदिक मनुस्मृति	४.५०
आर्य सिद्धान्त दीप	१.२५
बनो लाल अनमोल	२.००
ओंकार भजन माला प्रति सैकड़ा	६.००
आयुर्वेदीय द्रव्य गुण विज्ञान	१०.००
भारतीय शिष्टाचार	०.७५
हमारे स्वामी	०.७५
संस्कार विधि	१.५०
पाक भारती	६.००
योग दर्शन	४.००
वेदान्त दर्शन	४.५०
मीमांसा दर्शन	६.००
सन्तति निग्रह	१.२५
वेद और विज्ञान	०.७०

पुस्तक	मूल्य
प्रभु भक्ति	१.५०
भक्त और भगवान	१.००
मधुर सामान्य-ज्ञान	०.७५
संस्कार चन्द्रिका (प्रथम भाग)	४.००
संस्कार चन्द्रिका (द्वितीय भाग)	३.५०
स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा	०.२०
हित की बातें	०.१५
दन्त-रक्षा	०.२०
बन लो हीरे	१.००
ब्रह्मचर्यामृत	०.२०
आत्मानन्द लेखमाला	१.२५
मधुर संस्कृत निबन्ध माला	१.२५
मधुर हिन्दी निबन्ध माला	०.८०
बाल शिष्टाचार	१.५०
विरजानन्द चरित	१.५०
भोज-प्रबन्ध	२.५०
चाणक्य-नीति	१.२५
विदुर-नीति	१.५०
पुष्पावली	०.५०
उपदेश-मंजरी	२.५०
सत्यार्थ प्रकाश	२.५०
कर्त्तव्य-दर्पण	१.२५
रण-भेरी	०.२५
उपनिषदों का सन्देश	१.२५
आनन्द गायत्री कथा	०.७०
आनन्द भगवतकथा	००.६०
मृत्यु और परलोक	१.२५
चरित्र निर्माण	३.१५
संध्या पद्धति मीमांसा	५.००
वैशेषिक दर्शन	३.५०
सांख्य दर्शन	२.००
न्याय दर्शन	३.२५

मधुर-प्रकाशन, आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली-६

राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक ने श्री महामाया प्रिंटर्स, देहली में छपवाकर -मधुरलोक कार्यालय, सीताराम बाजार, देहली से प्रकाशित किया ।

Competition Review.

Sept. 1984.